सूर- विनय-पत्रिका

श्री सूरदासजी रचित
सूर-विनय पत्रिका
सरल भावार्थ सहित
अनुवादक
सुदर्शनसिंह

नम्र निवेदन

बहुत दिनोंसे प्रेमियोंकी माँग थी कि गीताप्रेस सूर-साहित्य प्रकाशित करे। कहा जाता है कि सूरदासजीने सवा लाख पद गाये थे। सूर-सारावलीमें इस भावका एक दोहा भी है; किंतु बहुत खोज करनेपर भी सूरदासजीके पदोंका इतना बड़ा कोई संग्रह कहीं नहीं मिला। नाथद्वारा काँकरोलीके 'विद्यामन्दिर' में सूर-सागरकी कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ हैं; किंतु उनमें भी पद कुछ सहस्र ही हैं। पूरा सूरसागर उपलब्ध ही नहीं।

जब सूरसागर पूरा उपलब्ध नहीं है, तब जो पद प्रचलित प्रतियोंमें प्राप्त है, उन्हींका आधार रह जाता है। प्रचलित पदोंका संग्रह सहज ही मिल सकता है। परंतु, जहाँतक पता है, अभीतक सूरदासजीके पदोंकी कहींसे भी कोई टीका नहीं छपी है, जब कि उनके अनेक पद विभिन्न परीक्षाओंके लिये भी स्वीकृत हैं। यह सब बातें ध्यानमें रखकर यह निश्चय किया गया कि उपलब्ध पदोंमेंसे चुने हुए एक-एक विषयके पदोंके संग्रह सरल भावार्थके साथ छापे जायँ। इससे उन पदोंके अर्थको हृदयङ्गम करनेमें सर्व-साधारणको सुविधा होगी। ऐसे नौ संग्रह प्रकाशित करनेका विचार किया गया है। जिनमें पहलेमें 'विनय' के पद, दूसरेमें 'रामचरित्र' और शेष सात संग्रह 'भगवान् श्रीकृष्णकी लीला' के होंगे।

'सूर-विनय-पत्रिका' नामसे यह पहला संग्रह आपके सामने है। इसमें वैराग्य, संसारकी अनित्यता, विनय, प्रबोध तथा चेतावनीके

सुन्दर-सुन्दर पद हैं, जो उपलब्ध 'सूरसागर' की प्रतियोंसे ही चुने गये हैं और किंचित् संशोधनके साथ प्रायः उन्हींके अनुसार पाठ भी रखा गया है। हमारे अनुवादक महोदयने भरसक प्रयत्न किया है कि पदोंका पूरा भाव स्पष्ट हो जाय, परंतु मनुष्यका ज्ञान अल्प है, त्रुटियोंका होना सहज है। अतः पदोंके पाठ और अर्थमें जो त्रुटियाँ रही हैं, उनके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। त्रुटियोंकी सूचना यदि पाठक महोदय कृपापूर्वक देंगे तो उन्हें आगेके संस्करणमें सुधारनेका प्रयत्न किया जायगा।

आशा है महान् प्रेमी भक्त श्रीसूरदासजीके विनयके पदोंका यह संग्रह सबके हृदयमें भगवद्भक्तिका पावन भाव जाग्रत् करनेमें सहायक होगा और पाठक इसे पाकर प्रसन्न होंगे।

विनीत—

प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

सूर-विनय-पत्रिकाकी पद-सूची

पद | पद-संख्या

सूरदास के श्याम

|| श्रीहरिः ||

सूर-विनय-पत्रिका

रागबिलावल

[१]

चरन-कमल बंदौ हरि-राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ ॥

सर्वेश्वर श्रीहरिके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ । जिनकी कृपासे पंगु (दोनों पैरसे लँगड़ा) भी पर्वतको पार करनेमें समर्थ हो जाता है, (जिनकी कृपासे) अंधेको सब कुछ दीखने लगता है, (जिनके अनुग्रहसे) बहिरा सुनने लगता है और गूँगा फिरसे बोलने लगता है, (जिनकी कृपासे) अत्यन्त कंगाल भी सिरपर छत्र धारण करके चलनेवाला नरेश हो जाता है, सूरदासजी कहते हैं कि (मैं अपने) उस करुणामय स्वामीके चरणोंकी बार-बार वन्दना करता हूँ ।

राग केदारौ

[२]

बंदौ चरन-सरोज तिहारे ।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे ॥

जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे॥
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी, बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे॥
जे पद-पदुम रमत बृंदावन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे॥
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल, दूत भए सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे॥

प्राण-प्यारे त्रिभंगसुन्दर कमलदललोचन श्यामसुन्दर ! मैं आपके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ। (प्रभो आपके) जो चरणकमल भगवान् शंकरके सदा (परम) धन हैं, (जिन्हें) सिन्धुसुता लक्ष्मीजी अपने हृदयसे कभी दूर नहीं करतीं, (अपने) पिता हिरण्यकशिपुके क्रोधसे कष्ट पाते हुए भी प्रह्लादजीने जिन पादपद्मोंको मन, वचन और कर्मसे सम्हाल रखा (घोर कष्टमें भी जिनको वे भूले नहीं), जिन पदकमलोंके स्पर्शसे पवित्र हुआ जल (पादोदक) ही भगवती गङ्गा हैं, जिनका दर्शन करनेसे ही महान् पाप भी नष्ट हो जाते हैं, जिन चरणोंको स्पर्श करके ऋषि-पत्नी अहल्या तथा दैत्यराज बलि, राजा नृग, व्याध एवं (दूसरे भी) बहुत-से पतित मुक्त हो गये, जो चरण-कमल वृन्दावनमें विचरण करते थे, (जिन्हें) कालियनागके सिरपर (आपने) धरा और (जिन चरणोंसे व्रजमें चलकर) अगणित शत्रुओंका संहार किया, जिन चरणकमलोंका स्पर्श पाकर व्रज-गोपियोंने (उनपर अपना) सर्वस्व न्योछावर कर दिया तथा घर-पुत्रादिकोंको भी विस्मृत हो गयीं, जिन चरणकमलोंसे (आप) पाण्डवदलमें घूमते रहे, उनके दूत बने तथा उनके सब काम बनाये, सूरदासजी कहते हैं कि (हे श्यामसुन्दर !) आपके वही चरणकमल हमारे (आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक) तीनों तापोंको तथा समस्त दुःखोंको हरण करनेवाले हैं।

राग कान्हरो

[३]

अविगत-गति कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूँगें मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै ।
सब-बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन-पद गावै ॥

जो जाना न जा सके ऐसे अनुभवरूप (ब्रह्मतत्त्व) की गति—उसका स्वरूप कुछ कहते नहीं बनता (वह तो अवर्णनीय है)। जैसे गूँगा मनुष्य मीठे फलके रसको हृदयमें ही अनुभव करता है। (उसका वर्णन नहीं कर पाता, वैसे ही वह आत्मतत्त्व) परम स्वादमय (आनन्दस्वरूप) है, सर्वदा सबमें एकरस है तथा अपार तुष्टि देता है, (लेकिन) मन तथा वाणीके लिये सदा अगम्य है। इन्द्रियाँ उसे पा नहीं सकतीं। इसे जो प्राप्त कर चुका है, वही जानता है। (जहाँतक वर्णनकी बात है) रूपरेखा-रहित (निराकार), निर्गुण, जातिरहित (सर्वभेदशून्य), युक्तियोंसे अप्राप्य उस परमतत्त्वमें कोई सहारा न होनेसे (वाणी) कैसे दौड़े (कैसे उसका वर्णन करे)? अतः उस (निर्गुणतत्त्व) को सब प्रकारसे अगम्य जानकर सूरदासजी कहते हैं कि मैं तो (उस परमात्मतत्त्वके) सगुण स्वरूपकी लीलाका गान करता हूँ।

राग मारू

[४]

वासुदेव की बड़ी बड़ाई ।
जगत-पिता, जगदीस, जगत-गुरु
निज भक्तनि की सहत ढिठाई ॥

भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर,
बोले बचन सकल सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए,
यह गति काहू देव न पाई॥
बिनु बदलैं उपकार करत हैं,
स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन,
ता कौं मिले भरत की नाई॥
बकी कपट करि मारन आई,
सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु,
ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं॥

भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्णचन्द्र) का यही तो महान् बड़प्पन है कि वे जगत्के पिता, त्रिभुवनके स्वामी एवं त्रिलोकीके परमगुरु होनेपर भी अपने भक्तोंकी धृष्टताको सह लेते हैं। (पाद-प्रहार करनेपर भी) महर्षि भृगुके चरणोंका चिह्न (प्रभुने) अपने हृदयपर धारण किया और उनसे सबको सुख देनेवाले (विनम्र) वचन ही कहे। भगवान् शंकर और ब्रह्माजी तो (महर्षि भृगुको) मारने ही दौड़े थे। यह (दयामय क्षमाशीलताकी) गति किसी देवताने नहीं पायी है। (दयामय श्यामसुन्दर) बिना बदला चाहे ही उपकार करते हैं, बिना स्वार्थकी मित्रता करते हैं। रावण शत्रु था; किंतु (उस) शत्रुके भाई विभीषणसे (अपने सगे भाई) भरतके समान मिले। बकी (पूतना) राक्षसी कपट करके (सुन्दर नारी-रूप बनाकर दूध पिलानेके बहाने) मारने आयी थी; किंतु उसे श्यामसुन्दरने वैकुण्ठ भेजा। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी श्रीयदुकुलनाथ ऐसे (दयाधाम) हैं कि बिना कुछ दिये ही (सबको सब कुछ) देते रहते हैं।

राग धनाश्री

[५]

करनी करुना-सिंधु की, मुख कहत न आवै।
कपट हेतु परसैं बकी, जननी गति पावै॥
बेद-उपनिषद जासु कौं, निरगुनहिं बतावै।
सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै॥
उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै।
कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै॥
जरासंध बंदी कटैं नृप-कुल जस गावै।
अस्मय-तन गौतम-तिया कौ साप नसावै॥
लच्छा-गृह तैं काढ़ि कैं पांडव गृह ल्यावै।
जैसैं गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि धावै॥
बरुन-पास तैं ब्रजपतिहिं छन माहिं छुड़ावै।
दुखित गयंदहिं जानि कै आपुन उठि धावै॥
कलि मैं नामा प्रगट ताकि छानि छवावै।
सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै॥

करुणासागर प्रभुके (दयापूर्ण) कार्योंका वर्णन नहीं किया जा सकता। (मारनेको आकर) कपट-प्रेमसे (दूध पिलानेका बहाना करके) पूतनाने उनका स्पर्श किया और उसे माताकी गति प्राप्त हुई। वेद और उपनिषद् जिन्हें निर्गुण बतलाते हैं (प्रेम-परवश वही प्रभु) सगुण स्वरूप धारण करके व्रजराजनन्दजीके घरमें अपनेको रस्सीसे बँधवा लेते हैं। महाराज उग्रसेनकी विपत्ति (उन्हें जेलमें पड़ा) सुन-सुनकर विलाप करते हैं, कंसको मारकर उन्हें राजा बनाते हैं और फिर स्वयं उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। (मगधराज) जरासन्धकी कैदमें पड़े राजाओंकी कैद छुड़ाते हैं, अतः उन राजाओंके कुल-जन प्रभुका यशोगान करते हैं। गौतम ऋषिकी पत्नी

अहल्याका शरीर पत्थरका हो गया था (श्रीरामरूपसे पद-रज देकर) उनका शाप नष्ट करते हैं। जैसे गाय अपने बछड़ेका स्मरण होते ही दौड़ पड़ती है, वैसे ही लाक्षागृहसे पाण्डवोंको बचाकर उन्हें घर ले आये। (पाण्डवोंकी विपत्ति सुनकर हस्तिनापुर दौड़े गये और उनका पता लगाकर उन्हें पुनः हस्तिनापुरमें प्रतिष्ठित किया।) वरुण-पाशमें पड़े व्रजपति श्रीनन्दजीको क्षणभरमें छुड़ा लाये। गजराजको दुखी जानकर स्वयं दौड़ पड़े। कलियुगमें भक्त नामदेवजी हुए, जिनका छप्पर प्रभुने छवाया। सूरदासजी कहते हैं—(प्रभु तो ऐसे दयामय हैं; किन्तु मैं असमर्थ हूँ। अतः) कोई मेरी भी प्रार्थना उन प्रभुतक पहुँचा दे।

राग मारू

[६]

ऐसी को करी अरु भक्त काजैं।
जसी जगदीस जिय धरी लाजैं॥
हिरनकस्यप बढ़्यौ उदय अरु अस्त लौं,
हठी प्रहलाद चित चरन लायौ।
भीर के परे तैं धीर सवहिनि तजी,
खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ॥
ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यौ पातालकौं,
काल कैं त्रास मुख नाम आयौ।
छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ,
पवन के गवन तैं अधिक धायौ॥
कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं,
पांडु की बधू जस नैंकु गायौ।
लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी,
बढ़्यौ तन-चीर नहिं अंत पायौ॥

रार कै जोर तैं सोर घरनी कियौ,
चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ।
जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए,
इंद्र के विभव तैं अधिक बाढ़ौ॥
सक्र कौ दान-बलि-मान ग्वारिन लियौ,
गह्यौ गिरि पानि, जस जगत छायौ।
यहै जिय जानि कैं अंध भव त्रास तैं,
सूर कामी-कुटिल सरन आयौ॥

भक्तकी लज्जा रखनेके लिये जगदीश्वर जितनी कृपा हृदयमें रखते हैं; वैसी कृपा दूसरे किसीने कहाँ की है ? दैत्यराज हिरण्यकशिपुका प्रभाव उदयाचलसे अस्ताचलतक (पूरे विश्वमें) फैला हुआ था। (उसके विपरीत) प्रह्लादजीने हठपूर्वक प्रभुके चरणोंमें चित्त लगाया। (जब प्रह्लादपर) संकट पड़ा तब सभी (देवादिकों) ने धैर्य छोड़ दिया; लेकिन भगवान्‌ने खंभेसे प्रकट होकर अपने भक्तकी रक्षा कर ली। जब गजराजको ग्राह (मगर) ने पकड़ लिया और पाताल (पानीके भीतर) खींच ले चला तो मृत्युके भयसे (गजराजने) भगवन्नाम लेकर पुकारा। (गजराजकी पुकार सुनकर) श्यामसुन्दर अपने सुखमय धाम तथा गरुड़को भी छोड़कर दौड़ पड़े एवं वायुवेगसे भी अधिक गतिसे दौड़ते हुए (गजराजके उद्धारको) पहुँचे। सभाके मध्यमें कौरवोंने क्रोधपूर्वक जब केश पकड़ा (और वस्त्र खींचकर नंगा करना चाहा), तब पाण्डवोंकी महारानी द्रौपदीने (श्रीद्वारिकानाथका) कुछ यशोगान करके उन्हें पुकारा। द्रौपदी लज्जा बचानेकी चिन्तामें थी—उसकी लज्जा लूटनेकी तैयारी हो रही थी; किंतु (श्रीकृष्णकी कृपासे उसका) वस्त्र इतना बढ़ गया कि (दुःशासन उस वस्त्रका) अन्त ही नहीं पा सका। आग्रह करके, बलपूर्वक बार-बार कहकर पत्नीने भेजा था, इससे विप्रवर सुदामाके द्वारिका आकर (द्वारिकेशके) द्वारपर खड़े हुए। श्यामसुन्दर हाथ

जोड़कर उनसे मिले, छीनकर उनके लाये चावल खाये और उन्हें इतना ऐश्वर्य दिया कि इन्द्रके वैभवसे भी वह वैभव महान् था। व्रजके गोपोंने जब इन्द्रको उपहार देना बंद कर दिया (और गोवर्धनकी पूजा की तो इन्द्रने क्रुद्ध होकर प्रलय-वर्षा प्रारम्भ कर दी तब) श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्धन-को हाथपर उठा लिया, यह उनका यश जगत्‌में प्रसिद्ध हो गया। सूरदासजी कहते हैं कि (भगवान्‌का) यह दयालु-स्वभाव जानकर ही संसारके भयसे भीत यह कामी तथा कुटिल अंधा (उनकी) शरणमें आया है।

राग रामकली

[७]

का न कियौ जन-हित जदुराई।
प्रथम कह्यौ जो वचन दयारत,
तिहिं बस गोकुल गाइ चराई॥
भक्तबछल बपु धरि नरकेहरि,
दनुज दह्यौ, उर दरि, सुरसाँई।
बलि बल देखि, अदिति-सुत-कारन,
त्रिपद ब्याज तिहुँपुर फिरि आई॥
एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन
और अनंत कथा स्तुति गाई।
सूर दीन प्रभु-प्रगट-बिरद सुनि
अजहुँ दयाल पतत सिर नाई॥

श्रीयदुनाथने भक्तोंके लिये क्या-क्या नहीं किया ? दयापरवश होकर पहले (द्रोण और धराको) जो वचन दिये थे, उसके वश होकर (नन्द-नन्दन बने और) गोकुलमें गायें चरायीं। देवताओंके भी स्वामी भक्तवत्सल प्रभुने नृसिंहरूप धारण करके दैत्यराज हिरण्यकशिपुका हृदय

फाड़कर उसे मार डाला। दैत्यराज बलिका पराक्रम देखकर देवमाता अदितिके पुत्र देवताओंका भला करनेके लिये तीन पैर पृथ्वी माँगनेके बहाने (बलिसे) तीनों लोक लेकर देवताओंको लौटा दिया। इसी प्रकार (दया-परवश होकर ही) गजेन्द्रोद्धारकी लीला हुई। (भगवान्‌की कृपा एवं भक्तवत्सलताकी) और भी अनन्त कथाएँ हैं; जिनका वेद गान करते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुका यह प्रत्यक्ष सुयश सुनकर यह दीन उस दयामयके सम्मुख मस्तक टेके अब भी पड़ा है।

[८]

जहाँ जहाँ सुमिरे हरि जिहिं बिधि,
तहँ तैसैं उठि धाए (हो)।
दीन-बंधु हरि, भक्त-कृपानिधि,
बेद-पुराननि गाये (हो)॥
सुत कुबेर के मत्त-मगन भए,
बिषै-रस नैननि छाए (हो)।
मुनि सराप तैं भए जमलतरु,
तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)॥
पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत,
ताके तंदुल खाए (हो)।
संपति दै वाकी पतिनी कौं,
मन-अभिलाष पुराए (हो)॥
जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर,
तब हरि कौं उर ध्याए (हो)।
गरुड़ छाँड़ि, आतुर ह्वै धाए,
सो ततकाल छुड़ाए (हो)॥

कलानिधान, सकल-गुन-सागर,
गुरु धौं कहा पढ़ाए (हो)।
तिहि उपकार मृतक सुत जाँचे,
सो जमपुर तें ल्याए (हो)॥
तुम मो-से अपराधी माधव,
केतिक स्वर्ग पठाए (हो)।
सूरदास प्रभु भक्त-बछल तुम,
पावन-नाम कहाए (हो)॥

जहाँ-जहाँ जिस भावसे भक्तोंने श्रीहरिका स्मरण किया, वहाँ उसी भावके अनुरूप प्रभु दौड़कर (अविलम्ब) पहुँचे। श्रीहरि दीनबन्धु हैं, भक्तोंके लिये कृपामय हैं, यह वेदों तथा पुराणोंमें कहा गया है। कुबेरके पुत्र (नलकूबर-मणिग्रीव) मदमत्त और प्रमादी हो गये थे, विषयकी मदान्धता उनके नेत्रोंमें छा रही थी। देवर्षि नारदजीके शापसे वे यमलार्जुन (जुड़े हुए दो अर्जुन वृक्ष) हुए थे, उनके उद्धारके लिये श्रीकृष्ण स्वयं (ऊखलमें) बँधे। विप्र सुदामाके वस्त्र मैले थे, वे अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे, (उनकी) यह दशा देखकर श्यामसुन्दरने उनके चावल खाये और उनकी पत्नीको (अपार) सम्पत्ति देकर उसकी हार्दिक अभिलाषा पूर्ण कर दी। जब जलके भीतर ग्राहने गजराजको पकड़ा, तब गजराजने हृदयमें श्रीहरिका ध्यान किया। प्रभु गरुड़को भी छोड़कर आतुर होकर दौड़े और तत्काल गजराजको (ग्राहसे) छुड़ाया। वे (श्यामसुन्दर) स्वयं ही समस्त कलाओंके निधान, सम्पूर्ण गुणोंके सागर हैं। भला, गुरु सान्दीपनि उन्हें क्या शिक्षा दे सकते थे; किंतु पढ़ानेके उपकारके बदले गुरुदक्षिणाके रूपमें अपना मरा हुआ पुत्र माँगा, अतः श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोकसे लाकर वह (उनका पुत्र उन्हें) दिया। सूरदासजी कहते हैं, प्रभो! आप भक्तवत्सल हैं, आपका नाम पतितपावन कहलाता है, हे माधव! आपने मेरे-जैसे पता नहीं कितने अपराधियोंको स्वर्ग भेजा है। (अतः मेरा भी आप उद्धार करें।)

राग धनाश्री

[९]

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ ॥
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान ।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान ॥
वदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं ।
विमुख भए अकृपा न निमिषहू, फिरि चितयौं तौ तैसैं ॥
भक्त-विरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ॥

प्रभुका एक स्वभाव देखो । (इस स्वभावपर ध्यान दो) वे श्रीहरि सर्वेश्वर होकर भी अत्यन्त गम्भीर उदारताके सागर तथा अपने जनोंकी दशा समझनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । वे भगवान् अपने भक्तके तृण-समान (तुच्छ) गुणको सुमेरुपर्वतके समान (महान्) मानते हैं और उसके अपराधोंके समुद्रको एक बूँदके समान भी बड़े संकोचसे मानते हैं । सम्मुख होनेपर श्रीहरिका जैसा प्रसन्न कमलमुख मैं देखता हूँ, विमुख होनेपर भी एक निमेषके लिये भी उनमें अकृपा नहीं आती और फिर सम्मुख होनेपर (उनका कमलमुख) वैसे ही प्रसन्न दीखता है । वे करुनामय भक्तके विरहसे कातर होकर (भक्तोंके) पीछे लगे घूमते हैं । सूरदासजी कहते हैं—ऐसे (दयामय) स्वामीको जो पीठ देते हैं (उनसे विमुख होते हैं) वे भाग्यहीन हैं ।

राग नट

[१०]

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं ।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै,
तिहिं बिधि राखत मन कौं ॥

भूख भए भोजन जु उदर कौं,
तृषा तोय, पट तन कौं।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत-सँग,
औचट गुनि गृह वन कौं॥
परम उदार, चतुर चिंतामनि,
कोटि कुबेर निधन कौं।
राखत है जनकी परतिज्ञा,
हाथ पसारत कन कौं॥
संकट परैं तुरत उठि धावत,
परम सुभट निज पन कौं।
कोटिक करै एक नहिं मानै,
सूर महा कृतघ्न कौं॥

श्रीहरिके समान भक्तोंका कोई दूसरा (उदार) स्वामी नहीं है। जिस-जिस प्रकारसे सेवक सुखी होते हैं, उसी प्रकारसे प्रभु उसके मनको रखते हैं (उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं)। भूखे होनेपर पेटके लिये भोजन, प्यास लगनेपर जल और शरीर ढकनेको वस्त्र वे देते हैं। जैसे गाय बछड़ेके साथ लगी फिरती है, (चरते समय) वनमें भी (बछड़ेकी यादसे) घर जानेके लिये (बार-बार) उसका चित्त उचाट करता है (ऐसे ही प्रभु भी सदा भक्तका ध्यान रखते हैं)। वे परम उदार, चतुरचूडामणि हैं तथा निर्धनको करोड़ों कुबेरोंकी सम्पत्ति देनेवाले हैं; किंतु अपने भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हैं और (उसकी प्रेमपूर्ण) एक कणकी (तुच्छ) भेंटके लिये भी हाथ फैलाते हैं (माँगकर वह उपहार लेते हैं)। (भक्तपर) संकट पड़ते ही तुरंत उठकर दौड़ते हैं। अपने प्रण (भक्तवत्सलता) के पालनमें वे परम सुभट सदा दक्ष हैं। सूरदासजी कहते हैं, प्रभु तो इस प्रकार करोड़ों उपकार करते हैं; किंतु जीव उनमें एक भी नहीं मानता; भला, ऐसा कृतघ्न और कौन होगा।

राग धनाश्री

[११]

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई ।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं अवसर आनि तिरीछौ होई ॥
ग्राह गहे गजपति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ ।
तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट दास कैं आयौ ॥
दुर्बासा कौ साप निवारयौ, अंबरीष-पति राखी ।
ब्रह्मलोक-परजंत फिरयौ तहँ देव-मुनी-जन साखी ॥
लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ, उबारे ।
सूरदास-प्रभु अपने जनके नाना त्रास निवारे ॥

श्रीहरिके समान (प्राणियोंका) दूसरा कोई मित्र (हमने) नहीं देखा । विपत्तिके समय स्मरण करते ही (प्रभु) तत्काल आड़े आते हैं (सहायक होते हैं) । ग्राहने जब गजराजको पकड़ा, तब (भगवान्) वैकुण्ठ छोड़कर, लक्ष्मीजीको छोड़कर और गरुड़को भी छोड़कर हाथमें चक्र लेकर दौड़े तथा अपने भक्तके पास आये । दुर्वासाके शापको दूर करके अम्बरीषकी मर्यादा-रक्षा की । (इसके तो) सभी देवता और मुनिगण साक्षी हैं कि दुर्वासाजी ब्रह्मलोकतक (भागते) फिरे थे । प्रभुने लाक्षागृहमें जलते हुए पाण्डवोंको बुद्धिबल देकर बचाया । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीने अपने भक्तोंके नाना प्रकारके भयोंको (सदा ही) दूर किया है ।

[१२]

राम भक्तवत्सल निज बानौं ।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिं, रंक, होइ कै रानौं ॥
सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं ।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं ?

प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृस्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ॥
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौ।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत, कौन-कौन अरगानौ॥
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ॥
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ।
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद पुरानौ॥

भक्तवत्सलता तो श्रीरामका अपना स्वरूप ही है। चाहे कोई दरिद्र हो या नरेश, प्रभु उसकी जाति, गोत्र, कुल, यश आदि किसीकी गणना नहीं करते। प्रभो! मैं तो अज्ञानी हूँ, अतः यह नहीं जानता कि शिव और ब्रह्मादि देवता किस जातिके हैं; लेकिन यह नियम है कि जहाँ अहंकार होता है, वहाँ आप नहीं रहते; फिर आपने उस अहंताका (ब्रह्मादि देवोंके देवत्वरूप अभिमानका) भी क्यों सम्मान किया? (देवताओंमें अहंकार होनेपर भी उनकी बार-बार) रक्षा की। प्रह्लादजी यद्यपि दानवकुलमें उत्पन्न हुए थे; किंतु उनके लिये तो खंभेसे प्रकट होकर आपने दर्शन दिया। श्रीराघवेन्द्र रघुकुलमें उत्पन्न हुए और श्रीकृष्णचन्द्रने सदाके लिये गोकुलको अपना निवास बनाया (वे व्रज छोड़कर एक पद भी कहीं नहीं जाते)। (इस प्रकार देवता, दैत्य और मनुष्य सभी प्रभुके कृपापात्र हुए) मैं बारंबार वर्णन करता हूँ, किंतु भक्तोंकी महिमाका (पूरा) वर्णन तो हो ही नहीं सकता। ध्रुव क्षत्रिय थे, विदुर दासी-पुत्र थे; किंतु कहाँ किसीमें झगड़ा हुआ। (प्रभुने कहाँ कोई भेद-भाव किया।) युग-युगसे (भगवान्‌का) यह सुयश चला आ रहा है कि (वे) अपने भक्तोंके हाथ बिके हुए हैं। श्रीश्यामसुन्दरने (युधिष्ठिरके) राजसूय यज्ञमें अपने हाथमें जल लेकर (विप्रोंके) चरण धोये। सूरदासजी कहते हैं कि जिह्वा तो एक है और श्यामसुन्दरके गुण अपार हैं; उनका कहाँतक वर्णन हो सकता है। वेद-पुराण साक्षी हैं कि (उन परम) प्रभुकी महिमा अपार है।

राग बिलावल

[१३]

काहू के कुल तन न विचारत ।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत ॥
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत ।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत ॥
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ व्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-प्रन पारत ॥

(भगवान्) किसका जन्म किस कुलमें हुआ, यह नहीं सोचते। वे अविज्ञात-गति हैं, अतः उनका स्वभाव कुछ कहा नहीं जाता। वे तो व्याध और अजामिल (जैसे पापियों) का भी उद्धार करते हैं। भला, विदुरजीकी क्या जाति-पाँति (वे तो दासी-पुत्र थे) लेकिन राजा दुर्योधन-के अभिमान एवं राजमदको चूर्ण करके श्रीकृष्णचन्द्र विदुरके ही घर पधारे और उनके घर माँगकर भोजन किया। (स्वयं भी) जन्मसे गोपाल हैं और कर्मसे भी चित्तचोर कहे जाते हैं—जन्म-कर्म दोनोंसे बड़े नहीं हैं और हीन-दीन लोगोंसे व्यवहार भी करते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी-का यही स्वभाव है कि भक्तवत्सल होनेकी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं।

राग सारंग

[१४]

गोबिंद प्रीति सबनि की मानत ।
जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अन्तर की गति जानत ॥
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई ।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत भाई ॥
संतत भक्त मीत हितकारी स्याम बिदुर कैं आए ।
प्रेम-बिकल, अति आनँद उर धरि, कदली-छिकुला खाए ॥

कौरव-काज चले रिषि सापन, साक-पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए॥

गोविन्द सबके प्रेमको स्वीकार करते हैं। भक्तजन जिस-जिस भावसे (उनकी) सेवा करते हैं, (वे) सबके हृदयके भावको जानते हैं (उस) भावके अनुरूप व्यवहार करते हैं। शबरीने कडुवे बेर छोड़ दिये और चख चखकर मीठे बेर अंचलमें भरकर ले आयी। श्रीरामने (बेरोंके) जूठे होनेकी कोई शंका नहीं की; बल्कि बड़े सद्भावसे उन्हें खाया। सर्वकालसे भक्तोंके सुहृद् एवं मित्र श्यामसुन्दर विदुरके घर आये और प्रेमविह्वल होकर हृदयमें आनन्द-पुलकित होते हुए केलेके छिलके खाये। (दुर्वासा) ऋषि कौरवोंकी भलाईके लिये (पाण्डवोंको) शाप देने (वनमें) गये थे; किंतु शाकका पत्ता खाकर प्रभुने उन्हें तृप्त कर दिया। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु तो करुणानिधान हैं। प्रत्येक युगोंमें उन्होंने भक्तोंकी उन्नति की है।

राग रामकली

[१५]

सरन गए को को न उबारयौ।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ॥
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरबासा कौ क्रोध निवारयौ।
ग्वालनि हेत धरयौ गोवर्धन, प्रकट इन्द्र कौ गर्व प्रहारयौ॥
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारयौ।
नरहरि रूप धरयौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ॥
ग्राह ग्रसत गज कौ जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारयौ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछारयौ॥

(प्रभुने) शरणागत होनेपर किसका उद्धार नहीं किया। जब-जब संतोंपर संकट पड़ा, (प्रभुने अपना) सुदर्शन चक्र वहीं सम्हाल लिया। अम्बरीषपर कृपा हुई और प्रभुने दुर्वासाका क्रोध दूर किया। (व्रजके) गोपोंकी रक्षाके लिये गोवर्धन पर्वत उठाया और इन्द्रके गर्वको सबके सम्मुख दूर किया। भक्त प्रह्लादपर कृपा करके करुणामय प्रभुने नरसिंह-

रूप धारण किया, खंभेको फाड़कर वे प्रकट हुए और एक क्षणमें नखोंसे हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़कर उसे मार दिया । गजराजको ग्राहने पकड़ लिया था और वह जलमें डूब रहा था, प्रभुका नाम लेते ही उसका दुःख प्रभुने दूर कर दिया । (भक्तोंके कष्ट दूर करनेके लिये) रंगभूमि (अखाड़े) में कंसको श्यामसुन्दरने पछाड़ दिया । सूरदासजी कहते हैं— उन श्यामसुन्दरके विना दूसरा कौन (इस प्रकार) भक्त-रक्षण कर सकता है ।

राग केदारौ

[१६]

जन की और कौन पति राखै ?
जाति-पाँति-कुल-कानि न मानत, वेद-पुराननि साखै ॥
जिहिं कुल राज द्वारिका कीन्हौं, सो कुल साप तैं नास्यौ ।
सोइ मुनि अंबरीष कैं कारन तीनि भुवन भ्रमि त्रास्यौ ॥
जाकौ चरनोदक शिव सिर धरि, तीनि लोक हितकारी ।
सोइ प्रभु पांडु-सुतनि के कारन निज कर चरन पखारी ॥
बारह बरस बसुदेव-देवकिहि कंस महा दुख दीन्हौ ।
तिन प्रभु प्रहलादहिं सुमिरत हीं नरहरि-रूप जु कीन्हौ ॥
जग जानत जदुनाथ, जिते जन निज-भुज-स्रम-सुख पायौ ।
ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ ॥

(भगवान्के अतिरिक्त) भक्तोंकी लज्जा दूसरा कौन बचा सकता है । वेद और पुराण इस बातके साक्षी हैं कि प्रभु जाति-पाँति एवं कुलकी महत्ता नहीं मानते । जिस यदुकुल (में अवतार लेकर आपने) द्वारिकामें राज्य किया, वह कुल (ऋषियोंके) शापसे नष्ट हो गया । लेकिन वही (यदुकुलको शाप देनेवाले) ऋषि अम्बरीष (से विरोध करने) के कारण तीनों लोकोंमें (चक्रके भयसे) त्रस्त घूमते फिरे । जिन (प्रभु) का त्रिभुवन हितकारी चरणोदक (गङ्गाजी) भगवान् शंकर अपने मस्तकपर

धारण करते हैं, वही प्रभु पाण्डवोंके लिये (राजसूय यज्ञमें) अपने हाथसे (विप्रोंके) चरण धोते थे । वसुदेव और देवकी (श्यामके पिता-माता थे तो भी उन) को कंसने बारह वर्षतक महान् कष्ट दिये, किंतु उन्हीं प्रभुने प्रह्लादके स्मरण करते ही नृसिंहरूप धारण कर लिया (और प्रह्लादका कष्ट दूर किया) । संसार जानता है कि श्रीयदुनाथने अपने कितने भक्तोंको स्वयं अपनी भुजाओंको श्रमित करके सुखी किया है । सूरदासजी कहते हैं कि ऐसा कौन है जिसका उद्धार उन प्रभुकी शरण लेनेसे न हुआ हो ।

[१७]

जब जब दीननि कठिन परी ।
जानत हौं, करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी ॥
सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी ।
सुमिरत पट कौ कोट बढ़्यौ, तब, दुख-सागर उबरी ॥
ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबार्‌यौ, टेरत जरी जरी ।
बिपति-काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी ॥
करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ त्रिभुवन-भूख हरी ।
पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी ॥
तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब बिपति परी ।
महा मोह मैं पर्‌यौ सूर प्रभु, काहैं सुधि बिसरी ? ॥

(मैं) जानता हूँ कि जब-जब दीनजनोंपर कोई कठिनाई आयी, तभी करुणामय प्रभुने भक्तकी कठिनाई सुगम कर दी । सभाके बीचमें दुष्ट दुःशासन द्रौपदीको पकड़ लाया, लेकिन द्रौपदीके भगवान्का स्मरण करते ही उसकी साड़ी वस्त्रके अम्बारके रूपमें बढ़ गयी, (फलतः) वह दुःखके समुद्रसे पार हो गयी । (उत्तरा) 'जली ! जली !' चिल्लाती श्रीकृष्णचन्द्रको पुकार रही थी, प्रभुने (अश्वत्थामाके) ब्रह्मबाणसे उसके गर्भकी रक्षा की । वनमें (दुर्वासा मुनिके भोजन करने आनेपर) पाण्डवोंकी रानी द्रौपदीजी

विपत्तिमें पड़ गयी थीं, किंतु उस समय श्यामसुन्दरने कृपा करके (पाण्डवों तथा ऋषि आदि सबके भोजनरूप) यज्ञसे बचा शाकका पत्ता खाकर तीनों लोकोंकी भूख मिटा दी और द्रौपदीकी रक्षा कर ली। पैदल दौड़कर ग्राहसे गजराजको (प्रभुने) बचाया। (इस प्रकार) जब-जब भक्तोंपर विपत्ति पड़ी; तब-तब भगवान्‌ने उनकी रक्षा की। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! मैं महामोहमें पड़ा हूँ, मेरी ही सुधि (आप) क्यों भूल गये हैं ?

राग रामकली

[१८]

और न काहुहिं जन की पीर।
जब जब दीन दुखी भयौ, तब तब कृपा करी बलबीर॥
गज बल-हीन बिलोकि दसौ दिसि, तब हरि-सरन पर्‌यौ।
करुनासिंधु, दयाल, दरस दै, सब संताप हर्‌यौ॥
गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हौ।
मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हें, मृतक बिप्र-सुत दीन्हौ॥
श्रीनृसिंह बपु धर्‌यौ असुर हति, भक्त-बचन प्रतिपार्‌यौ।
सुमिरत नाम, द्रुपद-तनया कौ पट अनेक बिस्तार्‌यौ॥
मुनि-मद मेटि दास-ब्रत राख्यौ, अंबरीष-हितकारी।
लाखा-गृह तैं, सत्रु-सैन तैं पाण्डव-बिपति निवारी॥
बरुन-पास ब्रजपति मुकरायौ दावानल-दुख टार्‌यौ।
गृह आने बसुदेव-देवकी, कंस महा खल मार्‌यौ॥
सो श्रीपति जुग-जुग सुमिरन-बस, बेद बिमल जस गावै।
असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै ?॥

दूसरे किसीको भक्तके दुःखसे दुःख नहीं होता, लेकिन जब-जब दीन दुखी हुए तब-तब (उनपर) बल्वीर श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा की है। गजराज बलहीन हो गया था, चारों ओर (सहायताकी आशासे) देखकर अन्तमें

(सर्वत्रसे निराश होकर) भगवान्‌की शरणमें आया । दयामय करुणासागर प्रभुने उसे दर्शन दिया और उसका सब कष्ट मिटा दिया । (व्रजके) गोपी-गोप, गोएँ और बछड़ोंकी रक्षाके लिये सात दिनतक गोवर्धन पर्वत हाथपर उठाये रहे । जरासन्धको मारकर राजाओंको उसके कारागारसे छुड़ाया । सान्दीपनि मुनिको उनका मरा हुआ पुत्र लाकर दिया । नृसिंहरूप धारण करके दैत्य हिरण्यकशिपुका वध किया और अपने भक्त प्रह्लादके वचन (कि भगवान् सर्वव्यापक हैं) की रक्षा की । द्रौपदीजीके नाम लेकर पुकारते ही उनके वस्त्रको अपरिमित बढ़ा दिया । अम्बरीषका कल्याण करनेके लिये मुनि दुर्वासाके घमंडको नष्ट करके अपने भक्त (अम्बरीष) के व्रतकी रक्षा की । लाक्षागृहमें जलनेसे, शत्रुओंकी सेनासे तथा अन्य विपत्तियोंसे भी पाण्डवोंको बचाया । व्रजराज श्रीनन्दजीको वरुणपाशसे छुड़ाया । दावानल (पान करके व्रज) का दुःख दूर किया । अत्यन्त दुष्ट कंसको मारकर श्रीवसुदेव-देवकीको (कारागारसे) घर ले आये । ऐसे परमप्रभु श्रीपति स्मरणके वशमें हैं । वेद उनके निर्मल यशका गान करते हैं । सूरदासजी कहते हैं—मैं भी उस अशरणशरणसे (शरण देनेकी) याचना करता हूँ । मेरी याद प्रभुको कौन करावेगा ? (प्रभु स्वयं सर्वज्ञ हैं, उन्हें भला दूसरा कोई क्या याद दिलावेगा ।)

राग केदारौ

[१९]

ठकुरायत गिरिधर की साँची ।
कौरव जीति जुधिष्ठिर-राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची ॥
ब्रह्म रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू भँग की आँची ।
रावन सौ नृप जात न जान्यौ, माया विषम सीस पर नाँची ॥
गुरु-सुत आनि दिए जमपुर तैं, विप्रसुदामा कियौ अजाची ।
दुस्सासन कटि-बसन-छुड़ावत, सुमिरत नाम द्रौपदी बाँची ॥
हरि-चरनारविंद तजि लागत अनत कहूँ, तिन की मति काँची ।
सूरदास भगवंत भजत जे, तिन की लीक चहूँ जुग खाँची ॥

स्वामी होना तो श्रीगिरिधरका ही सच्चा है । कौरवोंको पराजित करके युधिष्ठिरको (उन्होंने) सम्राट् बना दिया; यह कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल गयी । ब्रह्मा और रुद्र भी जिस कालसे डरते रहते हैं, वह काल (भगवान्‌के) भ्रूभंग (टेढ़ी भौंहों) के तापसे भीत रहता है । रावणके समान (प्रतापी) राजा (जगत्‌में) उत्पन्न हुआ नहीं जाना गया, किंतु विषम मायारूपी मृत्यु उसके सिर भी सवार हुई (भगवान्‌से विमुख होते ही वह भी मारा गया) । (प्रभुने दूसरी ओर) गुरु सान्दीपनिके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर उन्हें दिया और सुदामा-जैसे (कंगाल) ब्राह्मणको अयाचक (ऐश्वर्यसम्पन्न) कर दिया । दुःशासन द्रौपदीकी पहनी साड़ी खींच लेना चाहता था; किन्तु भगवान्‌का नामस्मरण करनेसे द्रौपदीकी (लज्जाकी) रक्षा हो गयी । (अतः) जो श्रीहरिके चरणारविन्दोंको छोड़कर और कहीं भी लगते हैं, उनकी बुद्धि कच्ची है (वे विचारहीन हैं) सूरदासजी कहते हैं कि जो भगवान्‌का भजन करते हैं, उनका सुयश चारों युगोंमें अमिट रहता है ।

राग मलार

[२०]

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक ॥
कहा बिदुरकी जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक ।
कहा पांडव कैं घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-बाहक ॥
कहा सुदामा कैं धन हो ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरतके दुख-दाहक ॥

श्यामसुन्दर गरीबोंको भी चाहनेवाले हैं । हमारे वे स्वामी दीनोंके नाथ हैं और प्रीतिके सच्चे निर्वाहकर्ता हैं । भला विदुरकी जाति-पाँति और कुल क्या था ? लेकिन श्रीकृष्ण तो प्रेमपूर्ण प्यारके लालायित रहनेवाले हैं । पाण्डवोंके पास ही कौन-सी प्रभुता थी ? किन्तु श्यामसुन्दर अर्जुनके

रथके सारथि बने। सुदामाके पास कहाँकी सम्पत्ति थी ? पर द्वारिकानाथ प्रेमके सच्चे चाहनेवाले ठहरे। सूरदासजी कहते हैं—इसलिये अरे सठ ! आर्तके दुःखोंको भस्म करनेवाले उन श्रीहरिका भजन कर।

राग कान्हरौ

[२१]

जैसैं तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ॥
जहँ-जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ-तहँ आपु जनायौ।
भक्ति-हेतु प्रहलाद उबार्‌यौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ॥
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ॥

(दयामय प्रभु !) आपने जैसे गजराजका पैर छुड़ाया, अपने उस भक्तको दुखी जानकर पैदल ही दौड़ पड़े, (वैसे ही) जहाँ-जहाँ भी भक्तोंपर संकट पड़ा, वहाँ-वहाँ आपने अपनी कृपा प्रत्यक्ष की। भक्त प्रह्लादपर प्रेम करके उन्हें बचा लिया और द्रौपदीकी साड़ी बढ़ा दी। विदुरजीका प्रेम जानकर श्रीहरि उनके घर गये तथा (उन कृपामयने) नामदेवजीका घर छाया। सूरदासजी कहते हैं—(इसी प्रकार) दरिद्र ब्राह्मण सुदामाकी दरिद्रता भी (प्रभुने) नष्ट की।

राग रामकली

[२२]

नाथ अनाथनि ही के संगी।
दीनदयाल, परम करुनामय, जनहित हरि बहु-रंगी॥
पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी।
स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़यौ बसन उमंगी॥

*

कहा बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मंगी।
कहा कूबरी सील-रूप-गुन ? बस भए स्याम त्रिभंगी॥
ग्राह गह्यौ गज बल बिनु ब्याकुल, बिकल गात, गति लंगी।
धाइ चक्र लै ताहि उबार्‍यौ, मार्‍यौ ग्राह बिहंगी॥
कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन-पद परतंगी।
सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी॥

जगन्नायक भगवान् अनाथोंके ही साथी हैं। (वे) दीनदयाल परमदयामय श्रीहरि भक्तोंकी भलाईके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। पाण्डवोंकी महारानी द्रौपदीको कुरुराज दुर्योधनने सभामें बुलाकर नंगी करना चाहा; किंतु (द्रौपदीकी पुकार तथा विपत्ति) कानमें पड़ते ही श्रीकृष्णचन्द्र दयाकी मानो नदी बन गये (करुणाका प्रवाह उमड़ पड़ा)। द्रौपदीका वस्त्र अपार बढ़ गया। विदुरजीकी जाति या वर्ण क्या ? (वे उच्च वर्ण एवं श्रेष्ठ जातिके तो हैं नहीं) किंतु उनके यहाँ पहुँच (श्यामने) माँगकर शाक खाया। कुब्जामें कौन-सा सुन्दर रूप, उत्तम शील या श्रेष्ठ गुण थे, जिससे त्रिभंगसुन्दर श्रीकृष्ण उसके वश हो गये। गजराजको ग्राहने पकड़ लिया था, बलहीन होकर गजराज व्याकुल हो रहा था, उसका शरीर पीड़ासे विकल था और बाहर निकलनेकी शक्ति मारी गयी थी (वह थक चुका था,) लेकिन गरुड़ासन प्रभु चक्र लेकर दौड़े और ग्राहको मारकर उसका उद्धार किया। सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिने अपने पावन चरणोंमें विश्वास करनेवाले कितने लोगोंका उद्धार किया—यह कहाँतक कहूँ ? (यह तो वर्णनमें आ ही नहीं सकता) यह अधम कामी भी प्रभुका यह सुयश कानोंसे सुनकर ही गर्जता है। (प्रभुकी पतित-पावनतापर विश्वास करके ही निश्चिन्त है।)

[२३]

जे जन सरन भजे बनवारी ।
ते ते राखि लिये जग-जीवन, जहँ-जहँ बिपति परी तहँ टारी ॥
संकट तैं प्रहलाद उधार्‌यौ, हिरनाकसिप-उदर नख फारी ।
अंबर हरत द्रुपद-तनया की, दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी ॥
राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं कर नख पर गोवर्धन धारी ।
सूरदास प्रभु सब सुख सागर, दीनानाथ, मुकुंद मुरारी ॥

जिन-जिन लोगोंने वनमाली श्रीकृष्णचन्द्रकी शरण ली, उन सबकी जगत्‌के जीवनस्वरूप प्रभुने रक्षा की । जहाँ-जहाँ उनपर विपत्ति पड़ी, वहीं उस विपत्तिको दूर किया । हिरण्यकशिपुके हृदयको नखोंसे फाड़कर (भगवान्‌ने) प्रह्लादको संकटसे बचा लिया । दुष्ट कौरव बीच सभामें द्रौपदीका वस्त्र खींच रहे थे, वहाँ (उसकी) लज्जा-रक्षा की । गोकुलको बहुत विघ्नोंसे बचाया, (उसकी रक्षाके लिये ही) नखपर गोवर्धन धारण किया । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी मुरारी मुकुन्द (कहलानेवाले) दीनानाथ सभी सुखोंके सागर हैं ।

राग केदारौ

[२४]

है हरि-भजन कौ परमान ।
नीच पावैं ऊँच पदवी, बाजते नीसान ॥
भजन कौ परताप ऐसौ, जल तरै पाषान ।
अजामिल अरु भीलि, गनिका, चढ़े जात बिमान ॥
चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान ।
भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी, रामके दीवान ॥
निगम जाकौ सुजस गावत, सुजस संत सुजान ।
सूर हरि की सरन आयौ, राखि लै भगवान ॥

यह भगवान्‌के भजनकी महिमा है कि नीच (पुरुष) भी (भजन करके) उच्च पद प्राप्त कर लेता है। उसके यशका डंका बजता है। भजनका ऐसा प्रताप है कि पानीमें पत्थर तैर गये। (भजनके प्रतापसे) अजामिल, भील और गणिका विमानमें बैठकर (वैकुण्ठ) गये। सभी तारे चलते हैं, चन्द्रमा और सूर्य भी चलते हैं; किंतु श्रीरामकी भक्तिमें मग्न भक्त ध्रुवको अटल स्थान प्राप्त है। जिनके यशको वेद गाते हैं और चतुर संतजन सुनते हैं, इन श्रीहरिकी शरणमें यह 'सूरदास' आया है। हे भगवन् ! मुझे अपनी शरणमें रख लो।

राग परज

[२५]

स्याम-भजन बिनु कौन बड़ाई ?
बल, बिद्या, धन, धाम, रूप, गुन और सकल मिथ्या सौं जाई॥
अंबरीष, प्रहलाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई।
गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई॥
मानी हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा हैं सौ भाई।
पांडव-पाँच भजे प्रभु-चरननि, रनहि जिताए हैं यदुराई॥
राज-रवनि सुमिरे पति कारन असुर-बंदि तें दिए छुड़ाई।
अति आनंद सूर तिहिं औसर, कीरति निगम कोटि मुख गाई॥

श्यामसुन्दरके भजन बिना (मनुष्यता और) बड़प्पन क्या ? बल, विद्या, धन, घर, रूप और गुण—ये सब तो झूठे सौदे हैं। राजा अम्बरीष, प्रह्लादजी, राजा बलि—इन लोगोंने (भजनसे ही) अत्यन्त ऊँचा पद प्राप्त किया। (श्रीरामने) हाथमें धनुष लेकर युद्धमें (त्रिभुवनविजयी) रावणको जीता और लंकामें भक्त विभीषणके प्रभुत्वकी घोषणा हो गयी। भगवान्‌से विमुख होनेके कारण उस दुर्योधनको पराजित होना पड़ा, जिसके सौ भाई शूरमा थे; किंतु पाण्डव पाँच होनेपर भी प्रभुके चरणोंका भजन करते थे, अतः श्रीयदुनाथने युद्धमें उन्हें विजयी बनाया। (भौमासुरके

यहाँ बंदिनी) राजकुमारियोंने (श्रीकृष्णचन्द्रको) पतिरूपसे पानेकी इच्छासे स्मरण किया, भगवान्ने उनको असुरकी कैदसे छुड़ाया। सूरदासजी कहते हैं—उस समय (उन सोलह सहस्र राजकन्याओंका पाणिग्रहण-संस्कार जब हुआ) बड़ा ही आनन्द बढ़ा। वेद करोड़ों मुखसे (नाना प्रकारसे) प्रभुके (भक्त-भयहरण) यशका गान करते हैं।

राग विहागरौ

[२६]

कहा गुन बरनौं स्याम, तिहारे।
कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका, सब के काज सँवारे॥
जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिषिपति पतित बिचारे।
भिल्लिनिके फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे॥
कोमल कर गोवर्धन धार्‌यौ जब हुते नंद-दुलारे।
दधि मिस आपु बँधायो दाँवरि सुत कुबेर के तारे॥
गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे।
अब मोसौं अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे!
कहँ न सहाय करी भक्तनि की, पांडव जरत उबारे।
सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे॥

श्यामसुन्दर! मैं तुम्हारे गुणोंका कहाँतक वर्णन करूँ। कुब्जा, विदुर, दीन ब्राह्मण सुदामा तथा गणिका—सभीके काम तुमने सँभाले (सबकी रक्षा की)। (दण्डकारण्यमें) श्रेष्ठ ऋषियोंके यज्ञभागको तो प्रेमसे स्वीकार नहीं किया (उनके आश्रममें नहीं गये), उन्हें (शबरीका तिरस्कार करनेके कारण) पतित समझ लिया और भीलनी शबरीके खट्टे-मीठे और कड़वे फल भी बड़े प्रेमसे खाये। (व्रजमें) जब नन्दनन्दनके रूपमें थे, तभी अपने कोमल करपर गोवर्धन पर्वत धारण किया। (मटकी फोड़कर) दही फैलानेके बहाने स्वयं रस्सीसे अपनेको बँधवाया और (यमलार्जुन बने) कुबेरके पुत्रोंका

उद्धार किया। गजेन्द्रका उद्धार करनेके लिये त्रिभुवननाथ गरुड़को छोड़कर पैदल उसके पास दौड़े गये। पाण्डवोंको (लाक्षागृहमें) जलनेसे बचाया। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! आपने भक्तोंकी सहायता कहाँ नहीं की, जहाँ-कहीं दीनोंपर विपत्ति पड़ी, वहीं उनके विघ्न आपने दूर किये। हे अधमोंके उद्धार करनेवाले ! अब मुझसे ही (मेरे ही उद्धारमें) आलस्य कर रहे हो ? (मेरा भी उद्धार करो।)

राग सारंग

[२७]

भक्तनि हित तुम कहा न कियौ ?
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही, अंबरीष-व्रत राखि लियौ ॥
जन प्रहलाद-प्रतिज्ञा पुरई, सखा विप्र-दारिद्र हर्यौ।
अंबर हरत द्रौपदी राखी, ब्रह्म इंद्र कौ मान नयौ ॥
पांडव कौ दूतत्व कियो पुनि, उग्रसेन कौं राज दयौ।
राखी पैज भक्त भीषम की, पारथ कौ सारथी भयौ ॥
दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के, नारद-साप-निवृत्त कियौ।
करि बल-बिगत उबारि दुष्ट तैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ ॥
गोतम की पतिनी तुम तारी, देव, दवानल कौं अँचयौ।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हरि, बलिद्वारैं दरबान भयौ ॥

(प्रभो !) भक्तोंके मङ्गलके लिये आपने क्या नहीं किया ? परीक्षित्‌की गर्भमें ही रक्षा की, अम्बरीषका व्रत रखा, भक्त प्रह्लादकी प्रतिज्ञा पूर्ण की; अपने मित्र ब्राह्मण सुदामाकी दरिद्रता दूर की, द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, तब उसकी लाज बचायी, ब्रह्मा और इन्द्रका गर्व दूर किया, पाण्डवोंका दूतत्व किया, उग्रसेनको राज्य दिया, भीष्मकी प्रतिज्ञा पूर्ण की, अर्जुनके सारथि बने, कुबेरके (यमलार्जुन बने) पुत्रोंको दुखी जानकर देवर्षि नारदका शाप छुड़ाया; ग्राहसे पकड़े जानेके कारण बलहीन हुए

गजराजको दुष्ट ग्राहसे छुड़ाकर वैकुण्ठधाम भेज दिया, हे देव ! तुमने ऋषि गौतमकी पत्नी अहल्याका उद्धार किया, (व्रजमें) दावानलका पान किया। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी श्रीहरि भक्तवत्सल हैं, वे तो बलिके द्वारपर (सुतललोकमें) द्वारपालतक बन गये हैं।

राग धनाश्री

[२८]

ऐसेहि जनम बहुत बौरायौ।
बिमुख भयौ हरि-चरन-कमल तजि, मन संतोष न आयौ॥
जब जब प्रगट भयौ जल थल मैं, तब तब बहु बपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-बस, अतिहिं किए अघ भारे॥
नृग, कपि, बिप्र, गीध, गनिका, गज, कंस-केसि-खल तारे।
अघ, बक, वृषभ, बकी, धेनुक हति, भव-जल-निधि तैं उबारे॥
संखचूड़, मुष्टिक, प्रलंब अरु तृनावर्त संहारे।
गज-चानूर हते, दव नास्यो, ब्याल मथ्यौ, भयहारे॥
जन दुख जानि जमलद्रुम भंजन, अति आतुर ह्वै धाए।
गिरि कर धारि इन्द्र-मद मद्यौं दासनि सुख उपजाए॥
रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी।
बढ़ै दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा-माँझ पति राखी॥
मृतक जिवाइ दिए गुरु के सुत, ब्याध परम गति पाई।
नंद बरुन-बंधन-भय-मोचन, सूर पतित सरनाई॥

इसी प्रकार (जैसे इस जन्ममें हूँ) मैं बहुत जन्मोंमें पागल बना रहा हूँ। श्रीहरिके चरणकमलोंका त्याग करके (प्रभुसे) विमुख बना रहा, अतः मनमें संतोषवृत्ति नहीं आयी, जब-जब जल या पृथ्वीमें मेरा जन्म हुआ, तब-तब वहाँ मुझे अनेकों शरीर धारण करने पड़े (कई-कई जन्म हुए)। उन सब जन्मोंमें काम, क्रोध, मद, लोभ तथा मोहके वश होकर मैंने बहुत

अधिक महापाप किये। (लेकिन मेरे स्वामी दयामय हैं। उन) प्रभुने राजा नृग, कपि, सुदामा ब्राह्मण, गीध जटायु, गणिका, गजराज तथा कंस एवं केशी-जैसे दुष्टोंको भी मुक्त किया है। अघासुर, बकासुर, वृषभासुर, पूतना, धेनुकासुरको मारकर प्रभुने भवसागरसे पार कर दिया। शंखचूड, मुष्टिक, प्रलम्बासुर और तृणावर्तका उन्होंने संहार किया। हाथी कुवल्यापीड एवं चाणूरको मारा, दावानलका पान किया और कालिय नागको नाथकर व्रजके भयको दूर किया। यमलार्जुनको गिरानेवाले प्रभु अपने भक्त (व्रजवासी-गण) के दुःखको समझकर अत्यन्त शीघ्रतासे दौड़े और गोवर्धनको हाथपर उठाकर इन्द्रके गर्वको नष्ट कर दिया एवं अपने सेवकों (गोपों) को सुखी किया। शत्रु दुःशासनके द्वारा केश पकड़े जानेपर जब द्रौपदीने 'शरण ! शरण !' कहकर पुकार की तब उनके वस्त्रका ढेर आकाशतक बढ़ गया, प्रभुने सभाके मध्य (नंगी होनेसे बचाकर) उसकी लज्जा रख ली। गुरु सान्दीपनिके मरे हुए पुत्रको भी जिला दिया (यमलोकसे ला दिया) और (तो क्या चरणमें बाण मारनेवाले) व्याधने भी (प्रभुकृपासे) परमगति प्राप्त की। (अतः) सूरदासजी कहते हैं—पतित (होनेपर भी) मैं उन नन्दबाबाको वरुणके पाशसे छुड़ानेवाले भयहारी प्रभुकी शरणमें हूँ।

[२९]

तातैं जानि भजे बनवारी। सरनागत की ताप निवारी॥
जन-प्रह्लाद-प्रतिज्ञा पारी। हिरनकसिपुकी देह बिदारी॥
ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी। अंबरीष की दुर्गति टारी॥
द्रुपद-सुता जब प्रकट पुकारी। गहत चीर हरि-नाम उबारी॥
गज, गनिका, गौतम-तिय तारी। सूरदास सठ, सरन तुम्हारी॥

यह समझकर वनमाली श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करना चाहिये कि वे शरणागतके संतापको दूर करनेवाले हैं। हिरण्यकशिपुका शरीर फाड़कर अपने भक्त प्रह्लादकी प्रतिज्ञा उन्होंने पूर्ण की। उन श्रीमुरारिने ध्रुवको अभय-पद दिया और अम्बरीषकी दुर्गति (विपत्ति) दूर कर दी। द्रौपदीने

जब दुःशासनके द्वारा खींचनेके लिये साड़ी पकड़ी जानेपर उच्च स्वरसे हरिनाम लेकर पुकारा तब (भगवान्ने) उसको (उसकी लज्जा) बचा लिया । गजराज, गणिका और गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको भी (भगवान्ने) मुक्त किया । सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! यह शठ भी आपकी शरण है । (इसका भी उद्धार करें ।)

राग गौरी

[३०]

मोहन के मुख ऊपर वारी ।
देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार ता तैं बलिहारी ॥
ब्रह्मा बाल बछरुआ हरि गयौ, सो ततछन सारिखे सँवारी ॥
कीन्हौं कोप इंद्र बरषारितु, लीला लाल गोवर्धन धारी ॥
राखी लाज समाज माहिं जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी ॥
तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ॥

मोहनके मुखपर मैं न्योछावर हूँ । उस मुखकी झाँकी नेत्रोंसे करनेपर सब प्रकार आनन्द होता है, अतः बार-बार मैं बलि जाता हूँ । ब्रह्माजीने गोपबालकों और बछड़ोंका हरण कर लिया, अतः श्यामसुन्दरने तत्काल वैसे ही (बालक और बछड़े) बना दिये । इन्द्रने क्रोध करके (कार्तिकमें भी) वर्षाऋतु बना दी (घनघोर प्रलयवृष्टि प्रारम्भ की), लेकिन गोपाललालने खेलमें ही गोवर्धन पर्वत उठा लिया (और व्रजकी वर्षासे रक्षा कर दी) । द्रौपदीने जब 'हे नाथ ! हे यदुनाथ !' कहकर पुकार की तो कौरवोंकी सभामें उसकी लज्जा बचायी । सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दर तीनों लोकोंके त्रयताप नष्ट करनेवाले तथा अपने भक्तोंको सुख देनेवाले हैं ।

राग सोरठ

[३१]

गोबिंद गाढ़े दिन के मीत ।
गज अरु ब्रज, प्रह्लाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत ॥

लाखागृह पांडवनि उबारे, साक-पत्र मुख नाए।
अंबरीष-हित शाप निवारे, व्याकुल चले पराए॥
नृप-कन्या कौ व्रत प्रतिपार्‌यौ, कपट वेष इक धार्‌यौ।
ता मैं प्रगट भए श्रीपतिजू, अरि-गन गर्व प्रहार्‌यौ॥
कोटि छयानवै नृप-सेना सब जरासंध बँध छोरे।
ऐसे जन परतिज्ञा राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे॥
गुरु-बांधव-हित मिले सुदामहि तंदुल-पुनि-पुनि जाँचत।
भगत विरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्व-बल नासत॥
संकट-हरन-चरन हरि प्रगटे, वेद विदित जस गावै।
सूरदास ऐसे प्रभु तजि कै, घर घर देव मनावै॥

गोविन्द विपत्ति-समयके मित्र हैं। गजराज, व्रजके लोग, प्रह्लाद और द्रौपदी (ने विपत्तिमें भगवान्‌का स्मरण किया और) स्मरण करते ही निश्चिन्त हो गये (विपत्ति दूर हो गयी)। लाक्षागृहसे (प्रभुने) पाण्डवोंको बचाया (और उनकी दुर्वासासे रक्षाके लिये) शाकका एक पत्ता मुखमें डाला। अम्बरीषके लिये (दुर्वासाका) शाप दूर किया। (उलटे) दुर्वासाको ही (चक्रके भयसे) व्याकुल होकर भागते फिरना पड़ा। राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजीके व्रतकी रक्षा की, श्रीपति श्रीकृष्णचन्द्र एक कपटवेश (विवाहमें दर्शकरूप) धारण करके कुण्डिनपुरमें प्रकट हुए (पहुँचे) और (रुक्मिणीजीका हरण करके) समस्त शत्रु नरेशोंके गर्वको चूर्ण कर दिया। जरासन्धके यहाँ कारागारमें पड़े छयानवे करोड़ नृप-सेना (इतने अधिक नरेश कि राजाओंकी ही एक सेना हो गयी थी।) को बन्धनसे मुक्त किया। इसी प्रकार प्रभु अपने भक्तोंकी प्रतिज्ञा रखते हैं, महाभारत-युद्धमें इस बातको उन्होंने प्रत्यक्ष दिखला दिया। गुरुभाई होनेके कारण सुदामासे (प्रभु) मिले और बार-बार चिउड़े माँगे (न देनेपर छीनकर खाया।) (वे दयामय) भक्त-वियोगके लिये अत्यन्त कातर रहते हैं (भक्तका वियोग होना सह

नहीं पाते) और असुरोंके बलके गर्वको नष्ट करते हैं। जिनके श्रीचरण ही समस्त कष्टोंके नाशक हैं, वे श्रीहरि (पृथ्वीपर भक्तरक्षण एवं दुष्ट-दर्प-दलनके लिये) अवतार धारण करते हैं। वेदोंमें उनके सुयशका स्पष्ट गान है। सूरदासजी कहते हैं—ऐसे (दयाधाम) प्रभुको छोड़कर (अज्ञानी लोग) अपने घरोंमें अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, (यह कितने खेदकी बात है)।

राग आसावरी—तिताला

[३२]

प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ।
पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ॥
जब गजराज ग्राह सौं अटक्यो, बली बहुत दुख पायौ॥
नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायौ॥
दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहि बसन बढ़ायौ॥
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैं, चरन सरन हौं आयौ॥

हे प्रभु ! आपकी (भक्तोंके योग-क्षेम-रक्षाकी) वाणीपर विश्वास करना ही सच्चा है। (आप-जैसे) भरण-पोषण कर्ता विश्वप्रतिपालक स्वामीके होते जो चिन्ता करे वह कच्चा (अधूरा भक्त) है। जब गजराज बलवान् ग्राहद्वारा पकड़ लिया गया तो उसे बहुत दुःख भोगना पड़ा; किंतु (जैसे ही उसने भगवान्‌का नाम लिया) नाम लेते तत्काल ही श्रीहरि गरुड़को भी छोड़कर दौड़े और उसे (ग्राहसे) छुड़ा दिया। जब दुःशासनने द्रौपदीका वस्त्र पकड़ा, उसी समय प्रभुने वस्त्रको बढ़ा दिया। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! आप भक्त-वत्सल हैं। मैं आपके श्रीचरणोंकी शरण आया हूँ।

राग सारंग

[३३]

काहु कैं वैर कहा सरै।
ताकी सरवरि करै सो झूठौ, जाहि गुपाल बड़ौ करै॥
ससि-सन्मुख जो धूरि उड़ावै, उलटि ताहि कैं मुख परै।
चिरिया कहा समुद्र उलीचै, पवन कहा परबत टरै?
जाकी कृपा पतित ह्वै पावन, पग परसत पाहन तरै।
सूर केस नहिं टार सकै कोउ, दाँत पीसि जो जग मरै॥

किसीके भी शत्रुता करनेसे हो क्या सकता है। जिसे गोपाल बड़ा बनाते हैं, उससे जो स्पर्धा करता है, उसका गर्व झूठा है। जो चन्द्रमाकी ओर धूलि उड़ावेगा, लौटकर उसीके मुखपर वह (धूलि) पड़ेगी! पक्षी कहीं समुद्र उलीच सकता है या वायुसे पर्वत कहीं इधर-उधर हो सकता है? सूरदासजी कहते हैं—जिनकी कृपासे पतित भी पावन हो जाते हैं, जिनके चरणके स्पर्शसे पत्थर (अहल्या) मुक्त हो जाता है (वे यदि अनुकूल हैं तो) चाहे सारा संसार दाँत पीसकर (क्रोध करके) मर जाय, एक बाल भी नहीं हटा सकता। (पूरा विश्व भी विपक्षमें होकर कोई हानि नहीं कर सकता।)

[३४]

हरि के जन सब तैं अधिकारी।
ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिन की सेवा कछु न सुधारी॥
जाँचक पैं जाँचक कहा जाँचै? जौ जाँचै तौ रसना हारी।
गनिका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री॥
तिन की साखि देखि, हिरनाकुस कुटुँब-सहित भइ ख्वारी।
जन प्रहलाद प्रतिज्ञा पाली, कियौ विभीषन राजा भारी॥

सिला तरी जल माहिं सेत बँधि, बलि वह चरन अहिल्या तारी।
जे रघुनाथ सरन तकि आए, तिन की सकल आपदा टारी॥
जिहि गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत भारी॥

श्रीहरिके भक्त ही सबसे उत्तम अधिकारी हैं। ब्रह्मा और शंकरजीसे बड़ा भला कौन होगा ? किंतु उनकी सेवासे भी कुछ नहीं बना। एक भिक्षुकसे भला, दूसरा भिक्षुक क्या याचना करे और यदि याचना करनेकी भूल करे ही तो उसकी जीभ थकेगी (उसे कोई लाभ तो होना नहीं है)। जिसके कुलमें कोई पिता नहीं है, ऐसा गणिकाका पुत्र शोभा नहीं पाता। उन ब्रह्मा-शिव आदिकी 'साख' (क्षमता) देखी गयी कि (उनका उपासक होकर भी) हिरण्यकशिपुका कुलसहित विनाश हुआ। किंतु (भगवान्ने) भक्त प्रह्लादकी प्रतिज्ञा पूर्ण की। विभीषणको (लंकाका) महान् राजा बना दिया। जलमें (प्रभुके प्रतापसे) शिलाएँ तैरने लगीं और (समुद्रपर) पुल बँध गया। मैं तो उन चरणोंकी बलिहारी हूँ, जिन्होंने अहल्याको तार दिया। जो कोई भी श्रीरघुनाथजी-की शरणमें आये, (प्रभुने) उनकी समस्त विपत्ति दूर कर दी। सूरदासजी कहते हैं—जिन गोविन्दने ध्रुवको अचल पद दिया, जिसकी सूर्य-चन्द्र (भी) प्रदक्षिणा करते हैं, उन श्रीभगवान्‌का भजन न किया तो पृथ्वीका और (गर्भ-धारणके समय) माताका भारी बोझ क्यों बना ? (भजन न करनेवाला तो माताका और पृथ्वीका भार ही है।)

[३५]

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ, सुंदर सोइ, जिहि पर कृपा करै॥
कौन बिभीषन रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ौ रावन तैं, गर्बहिं-गर्ब गरै॥

रंकव कौन सुदामाहू तैं, आप समान करै।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै॥
कौन विरक्त अधिक नारद तैं, निस-दिन भ्रमत फिरै।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौं काम छरै॥
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पति पाइ तरै।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम वियोग भरै॥
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिं रस रसिक ढरै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै॥

दीनोंके नाथ जिसपर अनुकूल हों, जिसपर कृपा करें, वही कुलीन है, वही बड़ा है और वही सुन्दर है। विभीषण कौन था? एक गरीब राक्षस ही तो था। किंतु श्रीरामने हँसकर उसके सिरपर छत्र रख दिया (उसे राजा बना दिया)। रावणसे महान् राजा कौन होगा? किंतु वह अपने गर्व-ही-गर्वमें नष्ट हो गया। सुदामासे बड़ा दरिद्र कौन होगा, पर उन्हें (श्यामसुन्दरने) अपने समान (वैभवशाली) बना दिया। अजामिलसे अधिक अधम कौन होगा? पर (स्वयं) यमराजको उसके पास जाते भय लगता था। देवर्षि नारदसे बड़ा विरक्त कौन हो सकता है? फिर भी वे रात-दिन घूमते ही रहते हैं (कहीं टिक नहीं पाते)। शंकरजीसे बड़ा कोई योगी हो नहीं सकता! किंतु कामदेव उनसे भी छल कर गया (वे भी मोहिनीरूपसे मुग्ध हुए)। कुब्जासे अधिक कुरूप कौन हो सकता है? पर वह श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करके मुक्त हो गयी और श्रीसीताजीसे अधिक सुन्दरी कौन (नारी) होगी? किंतु जन्मभर उन्हें वियोग-दुःख ही भोगना पड़ा। सूरदासजी कहते हैं—उस रसिक श्यामसुन्दरकी गति और विचार कोई नहीं जानता कि वह किस रस (भाव) से द्रवित होता है। किंतु भगवान्‌का भजन किये बिना तो (जीव) बार-बार (माताके उदरमें आकर) जठर-ज्वालामें जलता ही रहता है (भजन न करनेसे बार-बार जन्म लेना ही पड़ता है)।

[३६]

जाकौं दीनानाथ निवाजैं।
भव-सागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय-निसाने बाजैं॥
विप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं, अर्जुन रन मैं गाजैं।
लंका राज बिभीषन राजैं, ध्रुव आकास बिराजैं॥
मारि कंस-केसी मथुरा मैं, मेट्यौ सबै दुराजैं।
उग्रसेन-सिर छत्र धर्‍यौ है, दानव दस दिसि भाजैं॥
अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंध-सुत लाजैं।
सूरदास प्रभु महा भक्ति तैं, जाति-अजातिहि साजैं॥

जिसपर दीनानाथ प्रभु कृपा करते हैं, वह कभी भी संसार-सागरमें नहीं गिरता। उसकी निर्भयताकी दुन्दुभि बजा करती है। (प्रभुने) विप्रवर सुदामाको अटूट सम्पत्तियाँ दे दीं, महाभारतके युद्धमें अर्जुन गर्जते रहे (विजयी हुए), विभीषण लंकाके राजसिंहासनपर सुशोभित हुए, ध्रुवजीको आकाशमें (अचल) पद प्राप्त हुआ, केशी, कंस आदि (असुरोंको) मारकर मथुरामें सारी दुर्व्यवस्था नष्ट कर दी, उग्रसेनके सिरपर छत्र धारण कराया (उन्हें राजा बना दिया), राक्षस वहाँसे दसों दिशाओंमें भाग गये, वस्त्र खींचे जानेके समय द्रौपदीकी लज्जा बचा ली, उलटे वहाँ अंधे राजा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको ही (साड़ी खींचनेमें भी असमर्थ होनेके कारण) लज्जित होना पड़ा! सूरदासजी कहते हैं कि हमारे स्वामी केवल महान् भक्तिसे (प्रसन्न होकर) उत्तम और निम्न—सभी जातिके भक्तोंको श्रेष्ठ बना देते हैं।

राग देवगंधारी

(३७)

जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै॥

हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै ।
अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत, अविचल राज करै ॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै ।
दुरजोधन कौ मान भंग करि, बसन प्रवाह भरै ॥
जौ सुरपति कोप्यौ व्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै ।
व्रज-जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै ॥
जाकौ बिरद है गर्ब-प्रहारी, सो कैसैं बिसरै ?
सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गएँ उबरै ॥

जिसको मनमोहन श्रीकृष्णचन्द्र स्वीकार कर लें, उससे चाहे सारा संसार शत्रुता गाँठ ले, फिर भी उसके सिरका एक बालतक नहीं टूट सकता । दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी प्रहार करनेकी शक्ति ही मन्द पड़ गयी (उसके सारे वार खाली गये), परंतु प्रह्लादजी तनिक भी भयभीत नहीं हुए । (भगवान्‌की कृपासे) उत्तानपादके पुत्र ध्रुवजी (ध्रुवलोकमें) आजतक अविचल राज्य कर रहे हैं । जब दुःशासन वस्त्र खींचने लगा, तब (प्रभुने) द्रौपदीकी लज्जा बचा ली, उसका वस्त्र जल-प्रवाहके समान अपार करके दुर्योधनके अभिमानको नष्ट कर दिया । इन्द्रने जब व्रजपर क्रोध किया, तब उनके क्रोधसे कुछ भी नहीं हुआ । श्रीनन्दनन्दनने (गोवर्धन) उठाकर व्रजजनोंकी रक्षा कर ली, जिससे उनका सुयश गिरिधर नामके रूपमें विख्यात हो गया । सूरदासजी कहते हैं—जिसका यश ही गर्वहारी है, उसे कैसे भूला जाय ? अतः उन भगवान्‌का भजन करो । उनकी शरणमें जानेसे ही उद्धार होता है ।

राग केदारौ

[३८]

जाकौं हरि अंगीकार कियौ ।
ताके कोटि विघन हरि हरि कै, अभै प्रताप दियौ ॥

दुरबासा अँबरीष सतायौ, सो हरि-सरन गयौ।
परतिज्ञा राखी मनमोहन, फिरि तापैं पठयौ॥
बहुत सासना दई प्रहलादहि, ताहि निसंक कियौ।
निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ॥
मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ।
सूरदास-प्रभु भक्तबछल हैं, उपमा कौं न बियौ॥

श्रीहरिने जिन्हें स्वीकार कर लिया (अपना मान लिया), उनके करोड़ों विघ्नोंको दूर करके श्रीहरिने उन्हें अभय और प्रतापशाली बना दिया। दुर्वासाजीने अम्बरीषको सताया (अम्बरीषको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न की)। राजा अम्बरीषने श्रीहरिकी शरण ली। मनमोहन श्यामसुन्दरने (भक्तकी) प्रतिज्ञा रखी और (चक्रके भयसे भागते) दुर्वासाजीको फिर (शरण लेनेके लिये) अम्बरीषके ही पास भेजा। (हिरण्यकशिपुने) प्रह्लादजीको अनेक दारुण कष्ट दिये; पर प्रभुने वहीं खंभेसे प्रकट होकर अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा कर ली तथा (सदाके लिये) उन्हें निःशंक (निर्भय) बना दिया। (व्रजके) सारे सखा (कालियह्रदका) विषैला जल पीकर मृतक हो चुके थे, उन्हें (श्रीकृष्णचन्द्रने) जीवित कर दिया। सूरदासजी कहते हैं—प्रभु भक्तवत्सल हैं। उनकी उपमाके लिये दूसरा कोई उत्पन्न हुआ ही नहीं।

राग बिलावल

[३९]

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी॥
अर्थ-धर्म अरु काम-मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी॥

कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी-अपनी ।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी ॥
आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-सँताप की काटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम कौं, तिन सौं हरि सौं सदा बनी ॥

जिसके स्वामी श्रीराम हैं, उसे कमी क्या है ? वे सुखनिधान प्रभु अपने संकल्पमात्रसे सभी मनोरथोंको पूर्ण कर देनेवाले हैं । उनकी उदारताकी उमंग अपार है । वे परम उदार अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्रदान करते हैं । इन्द्रके समान देवराज जिसके सेवक हैं, (उस प्रभुकी तुलनामें) बेचारे मनुष्यकी उदारता कितनी । जो (सभी वस्तुओंको) 'अपनी-अपनी' कहता फिरता है (सबमें ममता बाँधे है), ऐसे कृपण (मनुष्य) की सम्पत्तिकी क्या गणना की जाय । वह न तो उसका उपभोग कर सकता है, न व्यय करना जानता है । जैसे सर्पके सिरपर मणि रहती है (वैसे ही उसकी सम्पत्ति भी उसके लिये भाररूप ही है) । दुःख और संताप (तीनों तापों) का बन्धन काटकर (मनुष्यको) आनन्दमें मग्न होकर श्रीरामका गुणगान ही करना चाहिये । सूरदासजी कहते हैं कि जो श्रीरामका भजन करते हैं, उनमें और श्रीहरिमें सदा प्रेम रहता है ।

[४०]

हरि के जन की अति ठकुराई ।
महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई ॥
निरभय देह राज-गढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाहु ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ये भए चोर तैं साहु ॥
दृढ़ बिस्वास कियौ सिंहासन, तापर बैठे भूप ।
हरि-जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप ॥
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेम-रस, ताहि कैं रँग रातौ ।
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचातौ ॥
अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म-मोक्ष सिर नावैं ।
बुद्धि-बिबेक बिचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावैं ॥

अष्ट महासिधि द्वार ठाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हे।
छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे॥
माया, काल, कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै।
सूरदास यह सकल समग्री, प्रभु-प्रताप पहिचानै॥

श्रीहरिके भक्तोंका स्वामित्व महान् है। बड़े-बड़े महाराजा, ऋषि-श्रेष्ठ एवं मुनिराज भी (भक्तके प्रभुत्वको) देखकर लज्जित हो जाते हैं। भयरहित शरीर ही उसका राजभवन है, (भगवान्‌के गुणोंके) चिन्तनमें उत्साह ही उसकी प्रजा हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह (आदि जो लुटेरे थे) ये अब चोरसे (हानिकारी होनेके बदले) साहु (साधु, विनीत-आज्ञाकारी) हो गये हैं, दृढ़ विश्वासको सिंहासन बनाकर उसपर वह (भक्त) राजा होकर बैठा है। भगवान्‌के सुयशका निर्मल और परम अनुपम छत्र उसके सिरपर शोभायमान है। (उसने) श्रीहरिके चरणारविन्दके प्रेमरूपी मकरन्दका पान किया है और उसीके नशेमें छका रहता है। ज्ञान उसका मन्त्री है; किंतु उसे अवसर नहीं मिलता, अपनी बात कहनेमें उसे संकोच लगता है। अर्थ और काम—ये दोनों दरवाजेपर (सेवाके अवसरकी प्रतीक्षामें) खड़े रहते हैं तथा धर्म और मोक्ष मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं; किंतु बुद्धि और विचाररूपी दो विचित्र द्वारपाल उसके द्वारपर (सदा सजग) रहते हैं, जिनके कारण ये चारों पुरुषार्थ उसके पास आनेका कभी अवसर ही नहीं पाते। आठों महासिद्धियाँ हाथ जोड़े, डरती हुई द्वारपर खड़ी रहती हैं; परंतु छड़ीदारके रूपमें खड़ा बड़ा विनोदी वैराग्य उन्हें झिड़ककर बाहर ही किये रहता है। (भगवद्भक्तिकी) यह रसमय रीति जो जानता है, उसे माया या काल कोई प्रभावित नहीं कर पाता। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान्‌के प्रतापसे ही (भक्त) इस सब सामग्रीको पहचानता है (उसका वास्तविक मूल्य समझता है)!

[४१]

तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार।
जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार॥

किंकिनि नूपुर पाट पटंबर, मानौ लिये फिरैं घर-बार।
मानुष-जनम पोत नकली ज्यौं, मानत भजन बिना बिस्तार॥
कलिमल दूरि करन के काज, तुम लीन्हौ जग मैं अवतार।
सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु, जैसें सूकर-स्वान-सियार॥

(प्रभो !) आपका भजन ही समस्त शोभा है। जो कोई आपके चरणकमलोंसे प्रेम करता है, मानो उसने हृदयको अमूल्य हारसे भूषित कर लिया तथा किङ्किणी, नूपुर, रेशमी पीताम्बर एवं (दिव्य) भवन भी मानो वह साथ ही लिये घूमता है। मनुष्यका जन्म और उसका सब वैभव-विस्तार भजनके बिना (भक्त) जैसे नकली 'पोत' हो ऐसा मानता है। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! आपने कलियुगके दोषोंको दूर करनेके लिये जगत्‌में अवतार धारण किया था। आपके भजन बिना तो (मनुष्य) शूकर, स्वान तथा शृगालके समान है।

राग सारंग

[४२]

गोविंद सौ पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै।
स्याम-भजन बिनु सुख नहीं, जौ दस दिसि धावै॥
पति कौ ब्रत जो धरै, तिय, सो सोभा पावै।
आन पुरुष कौ नाम ले, पतिब्रतहि लजावै॥
गनिका उपज्यौ पूत, सो कौन कौ कहावै?
बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै॥
जैसैं स्वान कुलाल के, पाछैं लगि धावै।
आन देव हरि तजि भजै, सो जनम गँवावै॥
फल की आसा चित्त धरि, जो बृच्छ बढ़ावै।
महा मूढ़ सो मूल तजि, साखा जल नावै॥
सहज भज नँदलाल कौं, सो सब सचु पावै।
सूरदास हरि नाम लै, दुख निकट न आवै॥

श्रीगोविन्द-जैसे स्वामीको पाकर मनको अन्यत्र कहाँ लगाया जाय ? चाहे कोई दसों दिशाओंमें दौड़ आये, श्यामसुन्दरके भजन बिना तो (कहीं) सुख है नहीं ! जो स्त्री पातिव्रत धारण करती है, वही शोभित होती है। इसके विपरीत जो किसी दूसरे पुरुषका नाम लेती (अन्य पुरुषसे अनुराग रखती) है, वह पतिव्रताके नामको लज्जित करती है। वेश्याको पुत्र उत्पन्न हो तो उसे किस (पिता) का पुत्र कहा जाय ? (यही दशा भगवान्‌को छोड़कर अन्य देवादिकी आराधना करनेवालोंकी है।) वे मन्दबुद्धि गङ्गाके तटपर बसकर भी (जल पीनेके लिये) कुआँ खुदवाते हैं। जैसे कुत्ता कुम्हारके पीछे लगा व्यर्थ दौड़े (कुम्हारके पास खाली बर्तन होनेसे उसे भोजनको कुछ मिल तो सकता नहीं), वैसे ही जो श्रीहरिको छोड़कर दूसरे देवताओंका भजन करते हैं, वे जन्म व्यर्थ नष्ट करते हैं। फल मिलेगा, ऐसी आशा चित्तमें रखकर जो वृक्ष लगावे और उसे बड़ा करे और फिर वृक्षकी जड़को छोड़कर शाखाओं-पर जल डाले, वह महामूर्ख ही तो है। जो स्वभावसे ही नन्दनन्दनका भजन करता है, उसे सब सुखोंकी प्राप्ति होती है। सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिका नाम लो, (जिससे) दुःख पास भी न फटके।

राग कान्हरौ

[४३]

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं, ताहि और नहिं भावै (हो)।
जौ लै मीन दूध मैं डारै, बिनु जल नहिं सचु पावै (हो)॥
अति सुकुमार डोलत रस-भीनौ, सो रस जाहि पियावै (हो)।
ज्यौं गूँगौ गुर खाइ अधिक रस, सुख-सवाद न बतावै (हो)॥
जैसैं सरिता मिलै सिंधु कौं, बहुरि प्रवाह न आवै (हो)।
ऐसैं सूर कमल-लोचन तैं चित नहिं अनत डुलावै (हो)॥

जिसका मन श्रीनन्दकुमारसे लग गया, उसे दूसरा कोई (देवता) पसंद नहीं आता। यदि मछलीको लेकर दूधमें डाल दिया जाय तो भी जलके बिना उसे सुख नहीं मिलता ! (श्यामसुन्दर)

अपना वह रस जिसे पिला दें (जिसे उनके प्रेमका चस्का मिल जाता है) वह अत्यन्त कोमल (मसृण) स्वभावका बन जाता है और उसके नशेमें चूर होकर घूमने लगता है । (उसकी दशा ऐसी होती है) जैसे गूँगा अत्यन्त आनन्दसे गुड़ खाय और उस आनन्द एवं मिठासकी बात किसीको बता न पावे (भगवत्प्रेमका रस ऐसा ही अवर्णनीय है) । वैसे नदीके समुद्रमें मिल जानेपर उसका प्रवाह फिर ऊपर नहीं आता—उसी प्रकार, सूरदासजी कहते हैं कि वह भगवत्प्रेमी कमललोचन श्यामसुन्दरसे चित्तको अन्यत्र कहीं नहीं भटकाता ।

राग विहाग

[४४]

जौं मन कबहुँक हरि कौं जाँचै ।
आन प्रसंग उपासन छाँड़ै, मन-बच-क्रम अपनै उर साँचै ॥
निसि-दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै ।
यह व्रत धरैं लोक मैं विचरै, सम करि गनै महामनि-काँचै ॥
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हानि-लाभ कछु सोच न राँचै ।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मैं नाचै ॥

यदि मन कभी श्रीहरिकी ही याचना करे (केवल भगवान्को ही चाहे) दूसरोंकी चर्चा और उपासनाका त्याग कर दे तथा मन, वाणी एवं कर्मसे अपने अन्तरमें सच्चा रहे (एकमात्र श्रीहरिमें निष्ठा रखे), रात-दिन श्यामसुन्दरका स्मरण करे और (उनके ही) यशका गान करे, (अन्य) कल्पनाओंको छोड़कर (भगवत्) प्रेमके रसमें ही निमग्न रहे, संसारमें प्रेमका ही व्रत लेकर विचरण करे, महामणि और काँचको समान समझे, शीत-उष्ण, (सर्दी-गर्मी) सुख-दुःख न माने (इनसे प्रभावित न हो); हानि-लाभकी चिन्तामें तनिक भी न डूबे, (तो) सूरदासजी कहते हैं कि (वह) उस निधि- (भगवान्के आनन्दमय रूप) में जाकर मिल जायगा, फिर लौटकर उसे संसारमें जन्म (नाना प्रकारके स्वाँग धरकर नाचना) नहीं लेना पड़ेगा ।

राग बिलावल

[४५]

जनम-जनम, जब-जब, जिहिं-जिहिं जुग, जहाँ-जहाँ जन जाइ।
तहाँ-तहाँ हरि-चरन-कमल-रति सो दृढ़ होइ रहाइ॥
स्रवन सुजस सारंग-नाद-विधि, चातक-विधि मुख नाम।
नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम॥
सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-विधि, उर अंबुज अनुराग।
नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, उड़त जु प्रेम-पराग॥
औरौ सकल सुकृत श्रीपति-हित, प्रतिफल-रहित सुप्रीति।
नाक निरै, सुख, दुःख सूर नहिं, जिहि की भजन प्रतीति॥

(प्रभो !) यह सेवक जन्म-जन्ममें, जब-जब, जिस-जिस युगमें जहाँ-जहाँ जन्म ले, वहाँ-वहाँ श्रीहरिके चरण-कमलोंमें प्रेम सुदृढ़ बना रहे। जैसे हिरन उत्तम संगीत सुननेको उत्सुक रहता है, वैसे ही मेरे कान आपका सुयश सुननेको उत्सुक रहें। जैसे चातक 'पिउ-पिउ' की रट लगाये रहता है, मेरे मुखसे उसी प्रकार आपके नामका उच्चारण होता रहे। जैसे चकोर चन्द्रमाके दर्शनको उत्कण्ठित रहता है, मेरे नेत्र उसी प्रकार आपके दर्शनको उत्कण्ठित रहें। हाथ (आपके श्रीविग्रहकी) सुन्दर पूजा-अर्चामें लगे रहें। बुद्धि सुन्दर (निर्मल) बनी रहे और वह श्रद्धापूर्वक आपके स्वरूपका चिन्तन करे, हृदय-कमलमें आपका प्रेम रहे। उसपर भौंरेके समान (आपके यशोगानकी) मनोहर गूँज होती रहे, जिससे प्रेम-पराग उड़ता रहे (यशोगान करते हुए सदा प्रेममग्न रहा करूँ)। और भी पुण्यकर्म बदलेमें कोई भी फल पानेकी इच्छाके बिना, प्रेमपूर्वक केवल श्रीपति प्रभुके लिये ही हों। सूरदासजी कहते हैं—जिसका भजनमें विश्वास है, उसके लिये स्वर्ग और नरक, दुःख और सुख कुछ नहीं (समान) हैं।

राग सारंग

[४६]

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै ।
छाँड़ै स्याम-नाम-अम्रित-फल, माया-विष-फल भावै ॥
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै ।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट, काग सरोवर न्हावै ॥
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै ।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रमि जमहिं हँसावै ॥
मृगतृष्ना आचार, जगत जल, ता सँग मन ललचावै ।
चहत जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ॥

(मुझे) इन लोगोंको देखकर आश्चर्य होता है, जो श्यामसुन्दरके नामरूपी अमृतफलका त्याग कर देते हैं और उन्हें मायाका विषैला फल पसंद आता है । ये मूर्ख मलयागिरिके चन्दनकी निन्दा करते हैं और शरीरमें राख लपेटते हैं । जिसके तटपर हंस विचरण करते हैं, उस मान-सरोवरको छोड़कर कौओंके स्नान करने योग्य सरोवरमें वे स्नान करते हैं । ये मूर्ख पैरके नीचे जलती भूमिको तो जानते नहीं, अपने जलते घरको बुझाना छोड़कर (जिसे जल जाना चाहिये उस) कूड़ेके ढेरको बुझाते हैं । (अर्थात् त्रितापमें सारा जीवन जल रहा है, यह ध्यानमें नहीं आता । अज्ञानवश मनुष्य-जीवन क्षण-क्षण नष्ट हो रहा है, यह नहीं दीखता । भजन करके जीवन सफल करनेके बदले सांसारिक भोगोंको नष्ट होनेसे बचाना चाहते हैं, जिन भोगोंका नाश होना हितकर ही है ।) चौरासी लक्ष योनियोंमें नाना शरीर धारण करके बार-बार भ्रमण करता हुआ (मूर्ख जीव) यमराजको हँसाता है (मृत्युका परिहासपात्र बना रहता है) । जगत्का सब आचार मृगतृष्णाके जलके समान (मिथ्या) है, उसके संग मनको ललचाया करता (उन आचारोंमें ही मोहित होकर लगा रहता) है । सूरदासजी कहते हैं—(मनुष्य) संतोंके साथ मिलकर श्रीहरिका यश क्यों नहीं गाता (जिससे जीवन सफल हो जाय) ।

[४७]

भजन बिनु कूकर-सूकर-जैसौ।
जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत बिषय-बस वैसौ॥
बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहू कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ?
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिन कौ लेखौ ऐसौ॥
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-वृष-भैंसौ॥

भजन किये बिना तो कुत्ते या सूअरके समान (मनुष्य) जीवन है। जैसे बिल्लीवाले घरमें चूहे (सदा मृत्युके ग्रास बने रहते हैं,) वैसे ही (मनुष्य भी घरमें) विषय-वासनाके वश हुआ (मृत्युके) चंगुलमें रहता है। जैसे बगुले-बगुली और गीध-गीधनी जन्म लेते हैं, वैसे ही उसने भी पृथ्वीपर (व्यर्थ) जन्म लिया है। उन (बगुले-गीध आदि) के भी घर, पुत्र, स्त्री आदि तो हैं ही; फिर मनुष्यका उनसे किस बातमें भेद क्या कहा जाय। जो लोग दूसरे जीवोंको मारकर (मांसाहारसे) अपना पेट भरते हैं, उनकी गणना तो बगुले-गीध आदि-जैसी ही है। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन किये बिना तो (मनुष्य) ऊँट, बैल और भैंसेके समान ही है।

[४८]

भजन बिनु जीवत जैसैं प्रेत।
मलिन मंदमति डोलत घर-घर, उदर भरन कै हेत॥
मुख कटु-बचन, नित्त पर-निंदा, संगति-सुजस न लेत।
कबहुँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहि देत॥
गुरु-ब्राह्मन अरु संत-सुजन के, जात न कबहुँ निकेत।
सेवा नहिं भगवंत-चरन की, भवन नील कौ खेत॥
कथा नहीं, गुन-गीत सुजस हरि, सब काहू दुख देत।
ताकी कथा कहौं सुनि सूरज, बूड़त कुटुँब समेत॥

भजन किये बिना मनुष्य ऐसे जीता है, मानो प्रेत हो। मनसे मलिन और बुद्धिसे मन्द वह पेट भरनेके लिये घर-घर घूमता-फिरता है। मुखसे कठोर वाणी बोलता है और सदा दूसरोंकी निन्दामें लगा रहता है; न तो सत्सङ्ग करता और न (अच्छे कार्य करके) सुयश कमाता है। कभी पाप कर्म करके धन कमाता है तो उसे मिट्टीमें गाड़कर रख देता है (खर्च नहीं करता)। गुरु-ब्राह्मण, संत और सत्पुरुषोंके घर कभी जाता ही नहीं। भगवान्के श्रीचरणोंकी सेवा नहीं करता। उसका घर नीलके खेतके समान (अत्यन्त अपवित्र) रहता है। न तो भगवान्की कथा सुनता, न श्रीहरिके गुणोंका तथा (निर्मल) यशका गान करता, सबको दुःख ही दिया करता है। सूरदासजी कहते हैं—ऐसे पुरुषोंका क्या वर्णन करूँ; सच्ची सुनो तो वह कुटुम्बके साथ डूबता (नरकमें जाता) है।

[४९]

जिहिं तन हरि भजिवौ न कियौ।
सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यौं, इहिं सुख कहा जियौ?
जो जगदीस ईस सबहिनि कौ, ताहि न चित्त दियौ।
प्रगट जानि जदुनाथ बिसार्‌यौ आसा-मद जु पियौ॥
चारि पदारथ के प्रभु दाता, तिन्हें न मिल्यौ हियौ।
सूरदास रसना बस अपनें, टेरि न नाम लियौ॥

जिस शरीरसे श्रीहरिका भजन नहीं किया गया, वह शरीर तो सूअर, कुत्ते और मछलीके समान (निन्दित) है; उसके जीवित रहनेमें क्या सुख? जो जगदीश्वर सभीके स्वामी हैं, उनमें चित्त नहीं लगाया, श्रीकृष्णचन्द्रको सबके आत्मारूपमें प्रकट देखकर भी भुला दिया और आशाका नशा पीकर उन्मत्त हो गया। (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) चारों ही पुरुषार्थोंको देनेवाले प्रभु हैं, उनसे हृदय नहीं मिला (उनसे अनुराग नहीं हुआ)। सूरदासजी कहते हैं कि जीभ अपने वशमें है, फिर भी भगवान्का नाम पुकारकर (जोरसे) नहीं लिया (ऐसा जीवन पशुओंके समान निन्दित ही है)।

राग केदारौ

[५०]

विनती सुनौ दीन की चित दै, कैसैं तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुट कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै ॥
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ॥
मन अभिलाष-तरंगनि करि-करि मिथ्या निसा जगावै ।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै ॥
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै ।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै ॥
मेरे तो तुम पति, तुम ही गति, तुम समान को पावै ।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ॥

(प्रभो !) इस दीनकी प्रार्थना चित्त देकर (ध्यानसे) सुनिये ! यह आपका गुणगान कैसे करे ? माया नटिनी हाथमें छड़ी लिये है और मुझे करोड़ों प्रकारसे नचाती रहती है। लोभके कारण मुझे लेकर स्थान-स्थानपर घूमती है और अनेक प्रकारके स्वाँग (कृत्रिम वेश) धारण किया करती है। हे प्रभो ! मेरी बुद्धिको भ्रममें डालकर (वह) आपके प्रति (मुझसे) कपट कराती है। (मेरे) मनमें लालसाओंकी तरङ्गें उठा-उठाकर असत्यरूपी रात्रिमें मुझे जगाती रहती है। जैसे सोते समय स्वप्नमें सम्पत्ति मिल जाय, वैसे ही (झूटी) सम्पत्ति दिखाकर हमें पागल बना देती है। (वह माया) महामोहिनी है, आत्माको मोहित करके कुमार्गमें लगाती है। जैसे कुटनी दूसरेकी कुलीन स्त्रीको बहकाकर पर-पुरुषके पास ले जाय, (वैसे ही माया मुझे आपसे विमुख करती है) ! मेरे तो आप ही स्वामी हैं, आप ही मेरी गति हैं, आपके समान और किसे मैं पा सकता हूँ। सूरदासजी कहते हैं— स्वामी ! आपकी कृपाके बिना मेरे दुःखको कौन दूर कर सकता है।

[५१]

हरि, तुव माया को न बिगोयौ ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की, पल मैं राम बिलोयौ ॥
नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयौ ।
साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या, कंठ लगाए जोयौ ॥
संकर कौ मन हर्‌यौ कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ ।
चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ ॥
सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ ।
सूरदास कंचन अरु काँचहि, एकहिं धगा पिरोयौ ॥

हे हरि ! आपकी मायाने किसे विचलित (स्थानच्युत) नहीं किया । समुद्रकी मर्यादा (सीमा) सौ योजनकी थी; किंतु श्रीरामने (सेतु बाँधकर) एक क्षणमें उसको मथ डाला । देवर्षि नारद मायामें मग्न हो गये । उन्होंने सब ज्ञान और बुद्धिबल खो दिया; साठ पुत्र और बारह कन्याओंको (पिता बनकर) गले लगाये (साथ लिये) उन्हें देखा गया । भगवान् शंकरतकका मन स्त्रीने हरण कर लिया, यद्यपि शय्याका परित्याग कर वे पृथ्वीपर सोते थे । परम सुन्दरी मोहिनीने जब उनको मोहित किया और विचारशक्ति न रहने दी, तब अन्तमें (शंकरजीको) बड़ा पश्चात्ताप* हुआ । राजा दुर्योधनके सौ भाई थे; किंतु क्षणभरमें वह धूलिमें मिल गया । सूरदासजी कहते हैं—(इस मायाने) सोने और काँच (श्रेष्ठ और निम्न- सभी पुरुषों) को एक ही धागेमें पिरोया (एक ही ढंगसे तंग किया) है ।

राग सारंग

[५२]

(गोपाल) तुम्हरी माया महाप्रबल, जिहिं सब जग बस कीन्हौ (हो) ।
नैंकु चितै, मुसक्याइ कै, सब कौ मन हरि लीन्हौ (हो) ॥

---

* नख-सिखसे रोना—बहुत पश्चात्ताप होना ।

पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)।
कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो)?
चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)।
अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महा-मद माते (हो)॥
नैकु दृष्टि जहँ परि गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)।
जोग-जुगति विसरी सबै, काम-क्रोध मद जागे (हो)॥
लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)।
सुनि याके उतपात कौं, सुक-सनकादिक भागे (हो)॥
बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावै (हो)।
भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै (हो)॥
एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)।
एकनि लै मंदिर चढ़ै, एकनि बिरंचि बिगोवै (हो)॥
अकथ कथा याकी कछू, कहत नहीं कहि आई (हो)।
छैलनि कै सँग यौं फिरै, जैसें तनु सँग छाँई (हो)॥
इहिं विधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय जेते (हो)।
चतुर-सिरोमनि नंद-सुत, कहौं कहाँ लगि तेते (हो)॥
कछु कुल-धर्म न जानई, रूप सकल जग राँच्यौ (हो)।
बिनु देखैं, बिनुहीं सुनैं, ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)॥
इहिं लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)।
सूर स्याम इहिं बरजि कै, मेटौ अब कुल-गारी (हो)॥

हे गोपाल ! तुम्हारी माया अत्यन्त प्रबल है, जिसने सम्पूर्ण संसारको वशमें कर रक्खा है। (यह कुलटा नारीके समान है,) तनिक देखकर और मुसकराकर सबका मन इसने वशमें कर लिया है (मायाके भोगोंकी थोड़ी-सी प्राप्तिसे ही सब मोहित हैं)। इसने लाल चुनरी पहिनी है और इसका दुपट्टा सफेद है। कमरमें इसके नीला लहँगा शोभित है, जिसे देखकर ऐसा

कौन है, जो मोहित न हो जाय। सत्त्व, रज और तमोगुणमयी माया है। सत्त्वगुण श्वेत रंगका ऊपर, रजोगुण लाल रंगवाला मध्यमें और तमोगुण काले या नीले रंगका अधोभागमें है। ये तीनों गुण ही मायाके वस्त्र हैं। चोली (रजोगुण) से इसने ब्रह्माजीको ठग लिया है (वे सृष्टि-रचनामें लगे हैं)। दुपट्टेसे देवताओंको मोहित कर रखा है (वे सत्त्वगुणके स्वर्गीय भोगों-में मग्न हैं) और अधोवस्त्र (तमोगुण) को देखकर असुर महामद (अभिमान) से मतवाले हो रहे हैं। (मायाकी मोहिनी रूपसे) तनिक-सी दृष्टि पड़ गयी थी, इससे शंकरजीके सिरपर भी (इसका) जादू चल गया। योगकी सारी युक्ति वे भूल गये। काम-क्रोध-मद जाग गये, सारी लोकलज्जा छूट गयी और उठकर (मोहिनीके) साथ-साथ दौड़ने लगे। इस (माया) के उत्पातको सुनकर शुक तथा सनकादि (संसारसे) भाग गये (वनमें रहने लगे)। (मायाके प्रभावका) बहुत क्या वर्णन किया जाय, कोई पुरुष इससे बच नहीं पाता। जो सुखपूर्वक गाढ़ी नींदमें सो रहा है (मायासे सर्वथा अनजान है), उसके पास जाकर उसे जगा देती है (उसके चित्तमें भी वासनाओंका उदय कर देती है)। किसीको अपने रूपसे ठगती है (वे भोगोंको देखकर मोहित हैं), किसीके साथ शयन करती है (वे भोगोंको पाकर मोहित हैं), किसीको लेकर मन्दिरमें जाती है (वे स्वर्गकी आशामें पुण्य करनेमें मोहित होकर लगे हैं), किसीको जन्म देकर नष्ट कर देती है (भोगोंके नाशसे वे दुखी हैं)। इस मायाका चरित अवर्णनीय है, (किसीसे भी) वर्णन करते नहीं बना। युवकोंके साथ यह इस प्रकार घूमती है, जैसे शरीरके साथ परछाईं (युवावस्था ही वासनाओंके उद्दीप्त रहनेकी मुख्य अवस्था है)। इस प्रकार जल, स्थल और आकाशमें जितने प्राणी हैं, सबको इसने ठग लिया है। हे नन्दनन्दन! तुम तो चतुर-शिरोमणि हो (स्वयं समझ सकते हो) उन सब (ठगे हुए जीवों) का वर्णन मैं कहाँतक करूँ। यह माया कुल या धर्म कुछ नहीं जानती, अपने रूपसे समस्त जगत्‌को इसने मोहित कर रखा है। इसे बिना देखे और इसका वर्णन बिना सुने ही (किसीने मायाको देखा नहीं और अवर्णनीय

होनेसे उसका वर्णन सुना भी नहीं; फिर भी) कोई इसके द्वारा ठगे जानेसे बच नहीं सका। सूरदासजी कहते हैं—मैं तो सदा इस लज्जासे मरता हूँ कि सब लोग कहते हैं कि यह (माया) तुम्हारी है। श्यामसुन्दर! इसे (उत्पात करनेसे) मना करके अपने कुलकी गाली (अपनेको लगनेवाले कलङ्क) को अब मिटा दो!

राग बिहागरौ

[५३]

हरि, तेरो भजन कियौ न जाइ।
कहा करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥
जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ॥
वेष धरि-धरि हर्‍यौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसैं नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ॥
करौं जतन, न भजौं तुम कौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ॥

हे हरि! (मुझसे) आपका भजन नहीं किया जाता। क्या करूँ, आपकी माया बड़ी प्रबल है, वह मेरे मनको भ्रममें डाल देती है। जब सत्पुरुषोंके सङ्गमें आता हूँ, तब (सत्सङ्गके प्रभावसे) मन कुछ स्थिर होता है; किंतु जैसे हाथी नदीमें स्नान करे और फिर ऊपर धूल डाल ले, वैसे ही मेरा वही (दूषित) स्वभाव फिर लौट आता है। साधुका वेष बना-बनाकर, साधु कहलाकर मैंने वैसे ही दूसरोंका धन हरण किया, जैसे नट लोभवश अनेक प्रकारके स्वाँग बनाता है (दूसरे-दूसरे) उपाय करता हूँ; किंतु मनमें कई प्रकारकी (उलटी-सीधी) कल्पना करके (युक्तियाँ सामने रखकर) (परलोककी चिन्ता करके) आपके भजनमें नहीं लगता। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो! आपकी बलवती माया मुझे आपका विस्मरण करा देती है।

[५४]

माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौ ॥
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर ।
मैं मति-हीन मरम नहिं जान्यौ, पर्‌यौ अधिक करि दौर ॥
बिबस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ ॥
बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिर्‌यौ मति-हीन ।
सूर स्यामसुंदर जो सेवै, क्यौं होवै गति दीन ॥

माधवजी ! मेरे मनको मायाने (अपने) वशमें कर लिया है । जैसे फतिंगा (बिना सोचे दीपकपर कूदकर) शरीर दे देता है (भस्म हो जाता है, वैसे ही मायासे मोहित मेरा मन भी) अपनी लाभ-हानि कुछ नहीं समझता । घर दीपकके समान है, (उसमें) धन तेलके समान, स्त्री रूईके समान और पुत्र अत्यन्त प्रबल ज्वाला (लौ) के समान है । मैं बुद्धिहीन इस भेदको नहीं समझ सका, प्रबल वेगसे दौड़कर उसमें पड़ गया (आसक्त हो गया) नलिनी-यन्त्र*में फँसे तोतेके समान मैं विवश हो गया । बिना रस्सीके (कोई गुन न होनेपर भी) मुझे (गृहकी आसक्तिने) फँसा लिया । मैं अज्ञानी हूँ, कुछ भी (हानि-लाभ) मेरी समझमें नहीं आया, उस बन्धन (आसक्ति) में पड़कर बहुत अधिक दुःख मैंने पाये । मैं बुद्धिहीन इस संसारमें (जन्म-मृत्युके चक्रमें) बहुत दिनोंतक भटकता फिरा । सूरदासजी कहते हैं—जो श्यामसुन्दरकी सेवा (भजन) करता है,

* तोतेको पकड़नेके लिये दो लकड़ियोंके बने एक यन्त्रको नलिनी कहते हैं । इसमें कोई फल लगा देते हैं । फलके लोभसे जब तोता लकड़ीपर बैठता है तो उसके भारसे लकड़ी नीचे घूम जाती है । गिरनेके भयसे तोता लकड़ीको पंजोंसे पकड़े नीचे लटकता चिल्लाता रहता है । उसे उड़ना भूल ही जाता है । इस प्रकार वह पकड़में आ जाता है ।

उसकी दीनदशा कैसे हो सकती है? (दीनदशा तो भगवान्‌से विमुख होनेपर ही होती है।)

[५५]

अब हौं माया-हाथ बिकानौ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ॥
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ।
याही करत अधीन भयौ हौं निद्रा अति न अघानौ॥
अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसर्‌यौ परम ठिकानौ।
सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ॥

अब मैं मायाके हाथ बिक गया हूँ, रस्सीमें बँधे पशुके समान परवश हो गया हूँ। त्रिभुवनके स्वामी श्रीपतिका मैंने भजन नहीं किया। हिंसा, गर्व, ममता आदिकी आसक्तिमें भूला हुआ और आशासे लिपटा हुआ (नित्य नवीन व्यर्थ आशाएँ करनेवाला हो गया) हूँ। यही सब (हिंसा, गर्व, ममता और आशा) करते हुए मैं मायाके अधीन हो गया। अत्यधिक निद्रा लेकर (अज्ञानमें पड़े रहकर) भी तृप्ति नहीं हुई (भोगोंसे पेट नहीं भरा)। अपने ही अज्ञानके अन्धकारमें (अपना) सर्वश्रेष्ठ निवास (भगवद्धाम) भूल गया। सूरदासजी कहते हैं—मेरी एक ही तो आँख है और वह भी कुछ कानी है अर्थात् बाहरी नेत्र तो मेरे हैं ही नहीं, केवल भीतरी नेत्र है; पर वह भी पूरा नहीं है; उस ज्ञाननेत्रमें भी दोष है। मायाने उसे भी विकृत कर रखा है।

राग धनाश्री

[५६]

दीन जन क्यौं करि आवै सरन?
भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन॥
परम अनाथ, बिबेक-नैन बिनु, निगम पैन क्यौं पावै?
पग-पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै?

*

नहिं कर लकुटि सुमति-सतसंगति, जिहिं अधार अनुसरई ।
प्रबल अपार मोह-निधि दस-दिसि, सु धौं कहा अब करई ॥
अखुटित रटत सभीत, ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै ।
सूर स्याम-पद-नख-प्रकास बिनु, क्यों करि तिमिर नसावै ॥

(प्रभो !) दीन जीव आपकी शरण कैसे आये ? हे त्रितापहारी ! सुनो, यह जीव तो जल-स्थलके सभी मार्गों (योनियों) में भूला हुआ भटक रहा है । यह अत्यन्त अनाथ है, विचाररूपी नेत्रोंसे रहित होनेके कारण वेदरूपी घर (आश्रय) भी यह कैसे पा सकता है ? (विवेक-विचार हो, तब वेद) का तात्पर्य समझमें आये । इसलिये पद-पदपर (हर समय) सकाम कर्मके अंधे (ढके हुए) कुएँमें ही पड़ता (सकाम कर्म ही करता) है । (आपके बिना) कृपा करके इसकी रक्षा कौन करे ? सद्बुद्धि और सत्सङ्गतिकी छड़ी भी इसके हाथमें नहीं जिसके आधारपर (सन्मार्गसे) चले । दसों दिशाओंमें मोहका अत्यन्त प्रबल अपार समुद्र है, अतः अब (यह जीव) क्या करे ? भयसे निरन्तर पुकार कर रहा है, बड़ा सशङ्क है; किंतु (पूर्वकृत) पुण्यरूपी आश्वासनका शब्द भी नहीं पाता (पूर्व-पुण्य भी नहीं, जो सत्पथमें ले जायँ) । सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरके चरणोंके नखोंका प्रकाश प्राप्त हुए बिना (भगवच्चरणोंका आश्रय लिये बिना) अन्धकार (अज्ञान) का विनाश कैसे हो सकता है ?

[५७]

अब सिर परी ठगौरी देव ।
तातैं बिबस भयौं करुनामय, छाँड़ि तिहारी सेव ॥
माया-मंत्र पढ़त मन निसि-दिन मोह-मूरछा आनत ।
ज्यौं मृग नाभि-कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत ॥
भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-बेग, न क्रमै गह्यौ ।
सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यौ, किहिं जुग इतौ सह्यौ ? ॥

हे देव ! अब मेरे सिर (मायाका) टोना चल गया है (मैं मायाके द्वारा कील लिया गया हूँ)। इसलिये हे करुणामय ! मैं आपकी सेवा छोड़कर उसीके अधीन हो गया हूँ। मेरा मन रात-दिन मायाका मन्त्र पढ़ा करता है (मायिक विषयोंका ही चिन्तन किया करता है) और मोहरूपी मूर्च्छा लाया करता है (उन विषयोंमें मोहित होकर अपनेको विचारहीन बनाये रखता है)। जैसे (कस्तूरीकी) सुरभि कस्तूरी-मृगमें नाभि-कमलमें सदा उसके पास रहती है, पर वह उसे जान नहीं पाता (इधर-उधर उस सुगन्धको ढूँढ़ता भटकता है), वैसे ही (आनन्दमय आप हृदयमें सदा पास हैं, तो भी आपको न जानकर) भ्रमके मदसे मतवाले हुए जीवने कामना और तृष्णाके स्वादके वेगमें पड़कर क्रमको (उन्नति-पथको) नहीं पकड़ा। सूरदासजी कहते हैं— प्रभो ! (आपके भक्तोंने) किस युगमें इतना कष्ट सहा है ? और कभी तो आपने (अपने आश्रितोंके उद्धारमें) एक पलका भी विलम्ब नहीं किया है। (मेरी बार ही क्यों विलम्ब कर रहे हैं ?)

[५८]

माया देखत ही जु गई।
ना हरि-हित, ना तू-हित, इन में एकौ तौ न भई !
ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर, बन की ओट लई।
व्याकुल होत हरे ज्यौं सरवस, आँखिनि धूरि दई॥
सुत-संतान-स्वजन बनिता-रति, घन समान उनई।
राखे सूर पवन पाखँड हति, करी जो प्रीति नई॥

माया (सांसारिक भोगों) को देखते हुए ही आयु बीत गयी। न तो भगवानके लिये (भजनादि) कुछ कर सका, न मायाके भोगोंको पानेके लिये (सफल) प्रयत्न हुआ, इन दोनों (परलोक और लोक) मेंसे एक भी तो नहीं बना पाया। जैसे मधुमक्खी वनका आश्रय लेकर (घने वनमें) निरन्तर मधुका संचय किया करती है, परंतु जब उसका सर्वस्व (मधु)

हरण कर लिया जाता है तब व्याकुल होती है, वैसे ही (माया ! तूने) मेरी आँखोंमें धूल झोंक दी। (मुझे अज्ञानमें डालकर मेरा आयुरूपी धन छीन लिया)। सूरदासजी कहते हैं—पुत्र-पौत्रादि संतान, कुटुम्बीजन, स्त्री आदिमें प्रेमकी घटा मेघके समान छा गयी थी, किंतु (मैंने) जो नयी प्रीति (प्रभुसे) की, उससे मेरे पाखण्ड (संसारासक्ति) का नाश (अनुग्रहरूप) पवनके द्वारा करके प्रभुने मुझे बचा लिया।

[५९]

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दग अंध भयौ॥
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भइ, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहि, सुमिरत क्यौं न रह्यौ॥
श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मर्‍यौ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‍यौ॥

इधर-उधर देखते (असमंजसमें ही) जन्म बीत गया। इस झूठी मायाके कारण (मिथ्या प्रलोभनमें पड़कर) दोनों आँखोंसे अंधा हो गया। मेरे जन्म लेनेके कष्टसे माताको कष्ट हुआ और (जन्म लेते समय) मेरे प्राणोंने भी अत्यन्त कष्ट सहा। किंतु माताका तथा प्राणोंका कष्ट विफल हो गया, क्योंकि वे (गर्भसे छुटकारा देनेवाले) त्रिभुवनपतिको तूने भुला दिया। तू उनका स्मरण ही सदा क्यों नहीं करता रहा ? कभी श्रीमद्भागवतका श्रवण भी नहीं किया। (लोक-सुख और परलोककी चिन्ताके) बीचमें ही भटकता हुआ दुःख पाता रहा। सूरदासजी कहते हैं—सारा संसार (मृत्युके सागरमें) डूबा हुआ है, केवल (भगवान्‌का) भक्त ही प्रत्येक युगमें इससे पार होता आया है।

[६०]

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए॥

तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै बिषयिनि के मुख जोए॥
काल बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हू रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए॥

श्रीहरिका स्मरण किये बिना कितने दिन (व्यर्थ) नष्ट कर दिये। जीभको परनिन्दाके रसमें लगाकर (पता नहीं) कितने जन्म बिगाड़ दिये। तेल लगाकर बड़े प्रेमसे शरीरका मर्दन किया, कपड़ोंको मल-मलकर स्वच्छ किया, तिलक लगाकर बाबाजी बनकर चले और (किया क्या ?) विषयी पुरुषोंका मुख देखते रहे (सांसारिक विषयोंमें अनुरक्त लोगोंकी अनुकूलता चाहते रहे)। काल अत्यन्त बलवान् है, उससे सम्पूर्ण जगत् काँपता है, ब्रह्मातक (कालके भयसे) रोते (भीत) रहते हैं। सूरदासजी कहते हैं— भला मेरे-जैसे अधम पुरुषोंकी क्या गति होगी ? जो पेट भर लेते हैं और पड़कर सो रहते हैं अर्थात् जो शरीरके पोषण और विश्राममें ही लगे हैं, उनकी दशा बड़ी दयनीय है। (उन्हें तो अधम गति ही प्राप्त होगी। अतः श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये।)

राग बिलावल

[६१]

यह आसा पापिनी दहै।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की, नीच नरनि कैं संग रहै॥
जिन कौ मुख देखत दुख उपजत, तिन कौं राजा राय कहै।
धन-मन-मूढ़नि अभिमानिनि मिलि, लोभ लिये दुर्बचन सहै॥
भई न कृपा स्यामसुन्दर की, अब कहा स्वारथ फिरत बहै ?
सूरदास सब-सुख-दाता प्रभु गुन बिचारि नहिं चरन गहै॥

यह पापिनी आशा (मुझे) जलाया करती है। श्रीवैकुण्ठनाथकी सेवा छोड़कर नीच मनुष्योंके साथ (यह) रहती है (नीच पुरुषोंसे आशा की जाती है)। जिनका मुख देखनेसे दुःख होता है (जिनका मुख देखना

ही अशुभ है) उनको ही 'रायजी !', 'राजासाहब' कहता है। धनके मदसे मतवाले मूर्खों एवं अभिमानियोंसे भेंट करके लोभके कारण उनके दुर्वचन सहता है। श्यामसुन्दरकी कृपा नहीं हुई, अब स्वार्थके प्रवाहमें व्यर्थ क्या बहता है ? (परम स्वार्थ तो श्यामसुन्दरकी कृपा प्राप्त करना ही था)। सूरदासजी कहते हैं—समस्त सुखोंके दाता प्रभु ही हैं, (फिर भी) उनके अपार गुणोंका विचार करके (उनके) चरण नहीं पकड़ता (प्रभुकी शरण नहीं लेता, यही तो दुर्भाग्य है)।

राग सारंग

[६२]

इहिं राजस को को न बिगोयौ ?
हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुंभकरन कुल खोयौ ॥
कंस, केसि, चानूर महाबल करि निरजीव जमुन-जल बोयौ।
जग्य-समय सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जोति समोयौ ॥
ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति नाचत फिरत महा रस भोयौ।
सूरदास जो चरन-सरन रह्यौ, सो जन निपट नींद भरि सोयौ ॥

इस रजोगुणरूपी गर्वने किस-किसका स्थान भ्रष्ट नहीं किया। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि दैत्यों तथा रावण-कुम्भकर्णका इसने कुलनाश ही कर दिया। कंस, केशी, चाणूर महान् बलवान् थे, किंतु (गर्वने) इन्हें निर्जीव करके यमुनाजलमें डुबा दिया (गर्ववश ये मारे गये और इनकी भस्म यमुनामें बह गयी)। राजसूय यज्ञके समय शिशुपाल-जैसा योद्धा (गर्वके कारण) बिना परिश्रम मारा गया और उसकी ज्योति (श्रीकृष्णके चरणोंमें) लीन हो गयी। ब्रह्मा, शंकर, देवगण तथा देवराज इन्द्र (गर्वके) महामदसे भ्रमित होकर नाचते-फिरते (तंग रहते) हैं। सूरदासजी कहते हैं कि जो (भगवान्के) चरणोंकी शरण ग्रहण कर लेता है; वही हरिभक्त निश्चिन्त होकर भर नींद सोता (पूरा सुखद विश्राम पाता) है।

[६३]

फिरि फिरि ऐसोई है करत।
जैसैं प्रेम पतंग दीप सौं, पावक हू न डरत॥
भव-दुख-कूप ज्ञान करि दीपक, देखत प्रगट परत।
काल-ब्याल-रज-तम-विष-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत !॥
अबिहित बाद-बिबाद सकलमत इन लगि भेष धरत।
इहिं विधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत॥
अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत।
सूरदास-व्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जलनिधि उतरत॥

(मनुष्य) बार-बार ऐसा ही करता है, जैसे फतिंगा दीपकसे प्रेम करके अग्निसे भी डरता नहीं है। ज्ञान (विचार) के दीपकसे (मनुष्य) प्रत्यक्ष यह देखते हुए कि संसार दुःखोंसे पूर्ण कुआँ है, उसीमें गिरता है। यह मूर्ख प्राणी कालरूपी सर्पकी रजोगुण एवं तमोगुणरूपी विष-ज्वालासे क्यों जलता रहता है (क्योंकि दुःखदायी राजस-तामस कर्म करता है)। शास्त्रप्रतिकूल वाद-विवादमय जो बहुत-से मत-मतान्तर हैं, उनके लिये (उनका समर्थन करनेके लिये) (नाना प्रकारके) वेष धारण करता है। इस प्रकार भ्रममें पड़कर भटकते हुए (जीवनके) सब दिन-रात बीत जाते हैं, पर कोई काम सफल नहीं होता। संसार-सागर अगम्य है, उपायों (अनेक प्रकारके साधनों) को नौका बनाकर हठपूर्वक (मनुष्य) नवीन कर्मरूपी भार ही ढोता है (दूसरे सब साधन केवल भार ढोने-जैसे हैं)। सूरदासका तो यही व्रत है कि श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करके संसार-सागरसे पार हो जाना है।

राग केदारौ

[६४]

माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ॥

छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ।
अष्ट-दस-घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ॥
छहों रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ।
और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ॥
ब्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ।
नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ॥
भुवन चौदह खुरनि खूँदति, सु धौं कहाँ समाइ।
ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ॥
हरै खल-बल दनुज-मानव-सुरनि सीस चढ़ाइ।
रचि-बिरचि मुख-भौंह-छबि, लै चलति चित्त चुराइ॥
नारदादि सुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि, सकत सूर चराइ?॥

माधव! इस (मायारूपी) गायको तनिक रोकिये। यह रात-दिन मार्ग-कुमार्गमें भटकती रहती है, पकड़में न आनेवाली होनेके कारण पकड़ी जाती नहीं। सदा अत्यन्त भूखी रहती है, कभी तृप्त नहीं होती, वेदरूपी वृक्षको तोड़कर खा लेती है (वैदिक मर्यादाओंको नष्ट कर डालती है)। अठारह घड़ोंका पानी पी जाती है, तो भी इसकी तृषा शान्त नहीं होती (अठारहों पुराणोंकी शिक्षा भी इसे शान्त नहीं कर पाती)। छहों रस यदि इसके आगे रख दूँ, तो भी इसको उनकी गन्ध पसंद नहीं आती (षट्शास्त्रोंकी चर्चा ही इसे नहीं रुचती)। दूसरे हानिकारक अभक्ष्य पदार्थ खाती रहती है (दुःखदायी पापकर्म करती है)। इसकी कला (दुष्टकर्म) कुछ वर्णन नहीं की जा सकती। आकाश, पृथ्वी, नदियाँ, पर्वत, वन—ये सब चरकर भी यह तृप्त नहीं होती। नीले खुर (तमोगुणरूप), लाल नेत्र (रजोगुणरूप) और श्वेत सींग (सत्त्वगुणरूप) होनेसे यह लगती बड़ी सुन्दर है, लेकिन अपने खुरोंसे चौदहों भुवनोंको खूँदती (रौंदती) रहती है। पता नहीं, अब कहाँ यह समा सकती है (सभी भुवन मायाग्रस्त हैं।

मायाका विस्तार जाना नहीं जाता) यह ढीठ है, निष्ठुर है, किसीसे भी डरती नहीं, त्रिगुणमयी होकर सामने (मारने) दौड़ती है। यह दुष्ट एवं बली दैत्य, मनुष्य, देवतादि सभीको सिरसे उठाकर बलपूर्वक फेंक देती है (सबका पतन करती है)। अपने मुख और भौंहोंकी शोभा सजा-सँवारकर सबका चित्त चुराये चलती है। नारदादि ऋषिगण, शुकदेवादि मुनिगण भी (इससे बचनेके) नाना उपाय करके थक गये। फिर हे कृपानिधान प्रभु ! यह सूरदास (तो अंधा है) उसे कैसे चरा (वशमें कर) सकता है।

राग मलार

[६५]

माधौ जू, यह मेरी इक गाइ।
अब आज तैं आप-आगैं दई, लै आइयै चराइ॥
यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति।
फिरति बेद-बन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति॥
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माँह।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाँह॥*
निधरक रहौ सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि।
मद-ममता रुचि सौं रखवारी, पहिलैं लेहु निबेरि॥

माधवजी ! यह मेरी एक (अविद्यारूपी) गाय है ! अब आजसे (मैं) इसे आगेके लिये आपको सौंप रहा हूँ (फिर वापस नहीं माँगूँगा), इसे आप चरा ले आइये। (लेकिन सावधान रहियेगा) यह अत्यन्त हरहाई (नटखट) है, बहुत रोकनेपर भी बिना रास्ते (कुमार्गसे) ही जाती है। सारे दिन और सारी रात वेदरूपी वनमें घूमती हुई गन्ने उखाड़ती रहती है (मधुर परिणाम देनेवाले पुण्यकर्म एवं मर्यादाओंको ही नष्ट करती रहती है)। हे गोकुलनाथ! इसे अपने गोधन (गायोंके झुण्ड) में प्रेमसे (पुचकारकर) मिला लीजिये। कृपा करके मुझे सहारा दीजिये, जिससे आपके (अभय) वचन

* बाँह देना—सहारा देना।

सुनकर मैं सुखसे सो सकूँ (निश्चिन्त हो जाऊँ)। सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! आप निश्चिन्त रहें, मनमें कोई शङ्का न करें (कि गायकी चराई मिलेगी या नहीं)। स्वेच्छापूर्वक मेरा मन और ममत्व लेकर (इस गाय-की) रखवाली पहिले ही चुका लो।

राग देवगंधार

[६६]

कहत हैं आगैं जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरै, पर्‍यौ काल सौं काम ॥
गरभ-वास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम।
बालापन खेलतहीं खोयौ, जोबन जोरत दाम ॥
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‍यो न कछुवै काम।
सूरदास प्रभु कौं बिसरायौ, बिना लिएँ हरि नाम ॥

(लोग) कहते हैं, आगे (बुढ़ापेमें या अवकाश होनेपर) श्रीरामनामका जप (भजन) कर लेंगे। लेकिन बीचमें (मध्य वयमें) ही कुछ और-की-और (अकल्पित) बात हो गयी। कालसे काम पड़ गया (मृत्यु आ धमकी)। नीचे मुख किये गर्भमें दस महीने रहना हुआ, वहाँ विश्राम नहीं हुआ। बचपनका समय खेलते हुए नष्ट कर दिया और युवावस्था धन-संग्रह करनेमें (बीत गयी)। अब तो बुढ़ापा पास आ गया है (परलोकके कल्याणके लिये) कुछ भी काम नहीं किया गया। सूरदासजी कहते हैं—(अरे मनुष्य ! तुमने) प्रभुको विस्मरण कर दिया, हरिनाम लिये बिना आयु खो दी।

राग कान्हरौ

[६७]

रे मन, जग पर जानि ठगायौ।
धन-मद, कुल-मद, तरुनी कैं मद, भव-मद, हरि बिसरायौ ॥

कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ॥
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन, इहिं रस छाँव न आयौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु कहु कैसैं सुख पायौ?॥

अरे मन! संसारके परायण होकर जान-बूझकर ठगा गया! धनके मदमें, कुलके मदमें, स्त्रीके मदमें—इस प्रकार संसारके मदमें (मतवाले बनकर) श्रीहरिको भुला दिया। कलिके दोषोंको दूर करनेवाले, पापोंके निवारक श्रीश्यामसुन्दरका (गुण-) गान अपनी जीभसे नहीं किया। तोता जैसे सेमरके फलको रसमय जानकर चोंच मारे और (नीरस रूई पाकर) पछताये, ऐसे ही तू (संसारके भोगोंमें रस समझकर लगा और निराश होकर) पछताया। सत्कर्म, धर्मपालन, भगवान्‌की लीला, यश और गुणका गान—इस रसमयी छायाके नीचे नहीं आया (इनका आश्रय नहीं लिया)। सूरदासजी कहते हैं—कहो, तो भगवान्‌का भजन किये बिना सुख पाया कैसे जा सकता है?

राग नट

[६८]

रे मन, छाँड़ि बिषय कौ रँचिबौ।
कत तूँ सुवा हो सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ॥
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ।
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ॥
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन-धन सँचिबौ।
सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी कपि ज्यौं नचिबौ॥

अरे मन! विषय-भोगमें रचना-पचना छोड़ दे। सेमरके फलसे तृप्त होनेकी आशा करनेवाले तोतेके समान तू (संसारके सारहीन भोगोंसे तृप्तिकी आशा करनेवाला) क्यों बनता है? अन्तमें तो कपट (अधर्म) करके

बचेगा नहीं (नष्ट होगा ही)। चित्तमें धन और स्त्रीको पकड़े है (उन्हींकी आसक्ति रखता है), इससे केवल पचना (नरककी यातना भोगना) हाथ रहेगा। अरे पागल ! अभिमानको छोड़कर राम-नाम ले, नहीं तो नरककी ज्वालामें दग्ध होना पड़ेगा। सद्गुरुने कहा था कि श्रीरामके भजनरूपी धनको संचित करते रहना; यही मैं तुझसे कहता हूँ। सूरदासजी कहते हैं— श्रीहरि जैसे स्वामीका स्मरण किये बिना तो नटके बंदरके समान (मायाके द्वारा विवश होकर) नाचते ही रहना पड़ेगा।

राग देवगंधार

[६९]

चौपरि जगत मड़े जुग बीते।
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति, सारि न कबहूँ जीते॥
चारि पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै॥
बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार-बार मुख भाखै।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै॥
षोड़स जुक्ति, जुबति चित षोड़स षोड़स बरस निहारै।
षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ दस अंक फिरि डारै॥
पंद्रह पित्र-काज, चौदह दस-चारि पढे, सर साँधे।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अंटन जरा जग बाँधे॥
नहिं रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संधानै॥
पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी।
चौक चवाउ भरे दुविधा छकि रस रसना रुचि धारी॥
बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी॥

कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ॥
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन, इहिं रस छाँव न आयौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु कहु कैसें सुख पायौ ?॥

अरे मन ! संसारके परायण होकर जान-बूझकर ठगा गया ! धनके मदमें, कुलके मदमें, स्त्रीके मदमें——इस प्रकार संसारके मदमें (मतवाले बनकर) श्रीहरिको भुला दिया। कलिके दोषोंको दूर करनेवाले, पापोंके निवारक श्रीश्यामसुन्दरका (गुण-) गान अपनी जीभसे नहीं किया। तोता जैसे सेमरके फलको रसमय जानकर चोंच मारे और (नीरस रूई पाकर) पछताये, ऐसे ही तू (संसारके भोगोंमें रस समझकर लगा और निराश होकर) पछताया। सत्कर्म, धर्मपालन, भगवान्‌की लीला, यश और गुणका गान–इस रसमयी छायाके नीचे नहीं आया (इनका आश्रय नहीं लिया)। सूरदासजी कहते हैं——कहो, तो भगवान्‌का भजन किये बिना सुख पाया कैसे जा सकता है ?

राग नट

[६८]

रे मन, छाँड़ि बिषय कौ रँचिबौ।
कत तूँ सुवा हो सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ॥
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगो पचिबौ।
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ॥
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन-धन सँचिबौ।
सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी कपि ज्यौं नचिबौ॥

अरे मन ! विषय-भोगमें रचना-पचना छोड़ दे। सेमरके फलसे तृप्त होनेकी आशा करनेवाले तोतेके समान तू (संसारके सारहीन भोगोंसे तृप्तिकी आशा करनेवाला) क्यों बनता है ? अन्तमें तो कपट (अधर्म) करके

बचेगा नहीं (नष्ट होगा ही) । चित्तमें धन और स्त्रीको पकड़े है (उन्हींकी आसक्ति रखता है); इससे केवल पचना (नरककी यातना भोगना) हाथ रहेगा । अरे पागल ! अभिमानको छोड़कर राम-नाम ले, नहीं तो नरककी ज्वालामें दग्ध होना पड़ेगा । सद्गुरुने कहा था कि श्रीरामके भजनरूपी धनको संचित करते रहना; यही मैं तुझसे कहता हूँ । सूरदासजी कहते हैं— श्रीहरि जैसे स्वामीका स्मरण किये बिना तो नटके बंदरके समान (मायाके द्वारा विवश होकर) नाचते ही रहना पड़ेगा ।

राग देवगंधार

[६९]

चौपरि जगत मड़े जुग बीते ।
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति, सारि न कबहूँ जीते ॥
चारि पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिरि गिनि आनै ।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै ॥
बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार-बार मुख भाखै ।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै ॥
षोड़स जुक्ति, जुबति चित षोड़स षोड़स बरस निहारै ।
षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ दस अंक फिरि डारै ॥
पंद्रह पित्र-काज, चौदह दस-चारि पठे, सर साँधे ।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अंटन जरा जग बाँधे ॥
नहिं रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै ।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संधानै ॥
पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी ।
चौक चबाउ भरे दुविधा छकि रस रसना रुचि धारी ॥
बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी ।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी ॥

संसाररूपी चौपड़को बिछाये हुए युग बीत गये (अनादिकालसे जीव संसारचक्रमें पड़ा है)। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) के पासोंसे, कर्मके अङ्कोंसे, चारों गति (बाल्य, कैशोर, यौवन एवं वार्धक्य) से कभी भी 'सारि' (गोटी) जीती नहीं गयी (कभी भी जीव संसार-चक्रसे मुक्त नहीं हुआ)। चारों दिशाओंके चारों फैलावोंमें मनोरथरूपी घरों (कोष्ठकों) में बार-बार गिनकर (गोटी) लौटा लाता है (बार-बार नाना मनोरथ करके संसारमें ही फँसा रहता है)। यह मूर्ख मन काम, क्रोध और मदके साथ बराबर खेल रहा है, पर हार नहीं मानता (उपरत नहीं होता)। बालकोंके विनोदके समान (जैसे चौपड़ देखने-वाले बच्चोंके समान आवेशमें अटपटे व्यंग करते हैं, वैसे ही) बार-बार मुखसे भलाई और बुराईके (मृदु-कठोर) वचन कहता रहता है, मानो प्रति-पक्षीके दावको एक ओर टालकर (सांसारिक अभावोंको एक बार कुछ पूरा करके) आठ, सात और दस अङ्क डालता है (आठों प्रहर, सातों द्वीपोंमें, दसों दिशाओंमें सफलता पानेके लिये भटकता है।) सोलह युक्तियोंसे (सम्पूर्ण प्रयत्नसे) सोलहों शृङ्गारसे युक्त षोडशवर्षीया (युवती) के चित्त (मिजाज) को देखता है (उसकी कृपादृष्टिको जोहता रहता है) शय्यापर उसके साथ सोलहों अङ्गोंसे (सम्पूर्ण शरीरसे) मिलता है, (यह स्त्री-सहवास ही) मानो (जुएमें) सोलह अङ्क डालता है। पंद्रह अङ्क डालना पितृ-कार्य (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं रूप, रस, गन्ध, शब्द तथा स्पर्शके भोगसे गर्भाधान-संस्कार करना) है, चौदहों भुवनोंमें जीवका भटकना चौदहका अङ्क डालना है, यह शर सदा संधान किया रहता है (जीव सदा भटकता ही रहता है)। रत्नों और स्वर्ग (धन) का लाभ तेरहका अङ्क डालना है (स्वर्ण साधनाकी तेरहों युक्तियाँ अपनाना है)। वार्धक्यसे सारा जगत् बँधा है (सभी जीव एवं पदार्थ एक दिन बूढ़े होंगे), ऐसे (जीर्ण होते जगत्‌में) बारहों महीने (सदा) घूमना ही बारहका अङ्क डालना है। सन्मार्गमें रुचि नहीं है, यही मानो प्यादोंका भय है; छक्का-पंजा (धोखा-धड़ी) करके ग्यारहका अङ्क डालता है (दसों इन्द्रियों और मनको

संसारमें निमग्न रखता है)। नौ, दस और आठमें अङ्क डालना प्रकृतिसे प्राप्त नौ द्वारके शरीरको तृष्णासे (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रियोंके पोषणकी लालसासे) सुख (आठों सिद्धियोंकी प्राप्ति) की इच्छा करना है । फिर सात घर मारना (सप्तद्वीपवती पृथ्वीको जीतना) चाहता है । पाँचशर कामदेवसे पीड़ित हो पर-स्त्रीमें अनुरक्त होना ही पाँचका अङ्क डालना है, जिससे फिर 'सारि' मारी जाती (सफलता नष्ट होती) है । चवाउ—पर-निन्दामें लगना ही चारका अङ्क डालना है । संशयग्रस्त (जीव) की जिह्वा इसी (पर-निन्दा) रसमें छकी रहती है और यही रुचि उसने धारण कर रखी है (परनिन्दा ही प्रिय लगती है और उसीमें सदा लगा रहता है) । सूरदासजी कहते हैं—बाल्य, कैशोर, तारुण्य एवं बुढ़ापा—ये चारों अवस्थाएँ चार गतियोंके समान हैं, जिन्हें युगोंसे (अनादिकालसे) 'सारि' (गोटी) पकनेके पास (चलनेके स्थानपर) डालता है (मनुष्यजीवन जो मोक्षका द्वार है, उस अवसरकी चारों अवस्थाओंको व्यतीत कर देता है), किंतु एक हरिनामरूपी 'पौ' (भगवन्नामके आश्रय) के बिना मनुष्य बार-बार बाजी हार जाता (मुक्त न होकर संसारमें-ही भटकता रहता) है ।

राग सारंग

[७०]

अब कैसें पैयत सुख माँगे ?
जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे ॥
तीरथ-व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे ।
पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे ॥
बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे ।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल सँग लागे ॥

अभागे (मनुष्य) ! यह तो कर्मोंका भोग है; जैसा बोया जाता है, वैसा ही काटनेको मिलता है (जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये, वैसा फल

संसाररूपी चौपड़को बिछाये हुए युग बीत गये (अनादिकालसे जीव संसारचक्रमें पड़ा है)। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) के पासोंसे, कर्मके अङ्कोंसे, चारों गति (बाल्य, कैशोर, यौवन एवं वार्धक्य) से कभी भी 'सारि' (गोटी) जीती नहीं गयी (कभी भी जीव संसार-चक्रसे मुक्त नहीं हुआ)। चारों दिशाओंके चारों फैलावोंमें मनोरथरूपी घरों (कोष्ठकों) में बार-बार गिनकर (गोटी) लौटा लाता है (बार-बार नाना मनोरथ करके संसारमें ही फँसा रहता है)। यह मूर्ख मन काम, क्रोध और मदके साथ बराबर खेल रहा है, पर हार नहीं मानता (उपरत नहीं होता)। बालकोंके विनोदके समान (जैसे चौपड़ देखने-वाले बच्चोंके समान आवेशमें अटपटे व्यंग करते हैं, वैसे ही) बार-बार मुखसे भलाई और बुराईके (मृदु-कठोर) वचन कहता रहता है, मानो प्रति-पक्षीके दावको एक ओर टालकर (सांसारिक अभावोंको एक बार कुछ पूरा करके) आठ, सात और दस अङ्क डालता है (आठों प्रहर, सातों द्वीपोंमें, दसों दिशाओंमें सफलता पानेके लिये भटकता है।) सोलह युक्तियोंसे (सम्पूर्ण प्रयत्नसे) सोलहों शृङ्गारसे युक्त षोडशवर्षीया (युवती) के चित्त (मिजाज) को देखता है (उसकी कृपादृष्टिको जोहता रहता है) शय्यापर उसके साथ सोलहों अङ्गोंसे (सम्पूर्ण शरीरसे) मिलता है, (यह स्त्री-सहवास ही) मानो (जुएमें) सोलह अङ्क डालता है। पंद्रह अङ्क डालना पितृ-कार्य (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं रूप, रस, गन्ध, शब्द तथा स्पर्शके भोगसे गर्भाधान-संस्कार करना) है, चौदहों भुवनोंमें जीवका भटकना चौदहका अङ्क डालना है, यह शर सदा संधान किया रहता है (जीव सदा भटकता ही रहता है)। रत्नों और स्वर्ग (धन) का लाभ तेरहका अङ्क डालना है (स्वर्ण साधनाकी तेरहों युक्तियाँ अपनाना है)। वार्धक्यसे सारा जगत् बँधा है (सभी जीव एवं पदार्थ एक दिन बूढ़े होंगे), ऐसे (जीर्ण होते जगत्में) बारहों महीने (सदा) घूमना ही बारहका अङ्क डालना है। सन्मार्गमें रुचि नहीं है, यही मानो प्यादोंका भय है; छक्का-पंजा (धोखा-धड़ी) करके ग्यारहका अङ्क डालता है (दसों इन्द्रियों और मनको

संसारमें निमग्न रखता है)। नौ, दस और आठमें अङ्क डालना प्रकृतिसे प्राप्त नौ द्वारके शरीरको तृष्णासे (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रियोंके पोषणकी लालसासे) सुख (आठों सिद्धियोंकी प्राप्ति) की इच्छा करना है। फिर सात घर मारना (सप्तद्वीपवती पृथ्वीको जीतना) चाहता है। पाँचशर कामदेवसे पीड़ित हो पर-स्त्रीमें अनुरक्त होना ही पाँचका अङ्क डालना है, जिससे फिर 'सारि' मारी जाती (सफलता नष्ट होती) है। चवाउ—पर-निन्दामें लगना ही चारका अङ्क डालना है। संशयग्रस्त (जीव) की जिह्वा इसी (पर-निन्दा) रसमें छकी रहती है और यही रुचि उसने धारण कर रखी है (परनिन्दा ही प्रिय लगती है और उसीमें सदा लगा रहता है)। सूरदासजी कहते हैं—बाल्य, कैशोर, तारुण्य एवं बुढ़ापा—ये चारों अवस्थाएँ चार गतियोंके समान हैं, जिन्हें युगोंसे (अनादिकालसे) 'सारि' (गोटी) पकनेके पास (चलनेके स्थानपर) डालता है (मनुष्यजीवन जो मोक्षका द्वार है, उस अवसरकी चारों अवस्थाओंको व्यतीत कर देता है), किंतु एक हरिनामरूपी 'पौ' (भगवन्नामके आश्रय) के बिना मनुष्य बार-बार बाजी हार जाता (मुक्त न होकर संसारमें-ही भटकता रहता) है।

राग सारंग

[७०]

अब कैसें पैयत सुख माँगे ?
जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे ॥
तीरथ-व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे ।
पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे ॥
बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे ।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल सँग लागे ॥

अभागे (मनुष्य) ! यह तो कर्मोंका भोग है; जैसा बोया जाता है, वैसा ही काटनेको मिलता है (जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये, वैसा फल

अब भोगना है)। अब माँगनेसे सुख कैसे पाया जा सकता है ? तीर्थयात्रा और व्रत (आदि पुण्यकर्म) कुछ भी किया नहीं, सावधान होकर दान भी नहीं दिया। पूर्वजन्मके किये अशुभ कर्मोंको याद नहीं करता और आगे (उत्तम फल मिले इसलिये भी) कोई शुभ कर्म नहीं करता। बबूल तो बोता है (बुरे कर्म करता है); पर चाहता है अंगूर (सुख) और अभीसे देखता है कि फल लगे या नहीं (तत्काल सुख पानेको लालायित है)। सूरदासजी कहते हैं कि (मानव !) तुम श्रीरामका भजन न करके मृत्युके संग लगे घूम रहे हो। भजन न करनेसे तो मृत्युका ही साथ रहेगा।)

[७१]

रे मन, गोविंद के ह्वै रहियै।
इहिं संसार अपार विरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै॥
दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परै सो गहियै।
सूरदास भगवंत-भजन करि अंत वार कछु लहियै॥

अरे मन ! गोविन्दके होकर रहना चाहिये। इस अपार संसारसे अनासक्त होना चाहिये, जिससे यमकी त्रास (नरकका भय) न सहनी पड़े। दुःख-सुख, यश (अयश) आदि जो भी (प्रारब्धके अनुसार) अपने हिस्सेमें आये, उसे (संतोषसे) स्वीकार कर लेना (सह लेना) चाहिये। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन करके अन्तिम समयमें तो कुछ (संसारसागरसे पार करनेवाली सम्पत्ति) प्राप्त करना चाहिये।

[७२]

रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै।
माया-मद में भयौ मत्त, कत जनम बादिहीं हारै॥
तू तौ विषया-रंग रँग्यौ है, बिन धोए क्यौं छूटै।
लाख जतन करि देखौ, तैसैं बार-बार विष घूँटै॥

रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई।
फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई॥
सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई।
कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई॥
कुबिजा भई स्याम-रँग-राती, तातैं सोभा पाई।
ताहि सबै कंचन सम तौलैं, अरु श्री-निकट समाई॥
नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ।
सूरदास आपुहि समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ॥

अरे मन! अब भी चेतता क्यों नहीं? मायाके मदमें मतवाला होकर मनुष्य-जन्मको क्यों व्यर्थ हारता (नष्ट करता) है। तू तो विषयोंके रंगमें रँगा (विषयोंमें आसक्त) है। बिना धोये (भजनकी साबुन लगाये) यह रंग (आसक्ति) कैसे छूट सकती है। मैंने लाखों (बहुत अधिक) प्रयत्न करके देख लिया, पर तू तो उसी प्रकार बार-बार विष ही पीता (विषयोंका ही चिन्तन करता) है। (गन्नेके) रसको एकत्र करके पकाकर गुड़ बनाते हैं और खोई (रसहीन गन्नेका भाग) फेंक देते हैं। लेकिन यदि फिर गुड़को पकाया जाय तो उसका स्वाद नष्ट हो जाता है, उससे चीनी तो बनती नहीं। (सांसारिक पदार्थोंका सेवन आवश्यक मात्रामें शरीर-पोषणके लिये किया जाय, उनके उपार्जनमें अधर्म न किया जाय, दूषित पदार्थ त्यागकर शुद्ध सात्त्विक पदार्थ ही लिये जायँ, तो उनके उपयोगसे मनमें सात्त्विकता ही आती है। किंतु उनके उपभोगमें आसक्त होकर बार-बार उनकी चाह करनेसे सात्त्विकता बढ़ती नहीं, पहले अर्जित की हुई सात्त्विकता भी नष्ट हो जाती है।) श्वेत, हरा, लाल, पीला आदि रंग तो धो लिये जाते हैं (समस्त सांसारिक आसक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं), किंतु काला रंग अपनी रंगत नहीं छोड़ता और न विकृतरूप ही लेता है (भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम होनेपर वह प्रेम सदा बढ़ता ही है, घटता या बदलता नहीं है)। कुब्जा श्यामसुन्दरके रंग (प्रेम) से रंगीन बननेके

कारण ही शोभित हुई। उसकी तुलना सब लोग सोनेके साथ करते हैं (उसे बहुमूल्य-आदरणीय मानते हैं) और लक्ष्मीके पास (भगवान्‌की अर्धाङ्गिनी-के रूपमें) उसे स्थान मिला। (अरे मन ! ऐसे) श्रीनन्दनन्दनके चरण-कमलोंका त्याग करके तू मायाके हाथ बिक गया है (कितने दुःखकी बात है)। सूरदासजी कहते हैं—लोग (मेरी बातका) बुरा न मानें (मैं दूसरे किसीको कुछ नहीं कहता) अपने-आपको ही समझा रहा हूँ।

राग धनाश्री

[७३]

जनम साहिबी करत गयौ।
काया-नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिंन कछु बढ़यौ॥
हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकि-झकि डारि दयौ।
विषया-गाँव अमल कौ टोटौ, हँसि-हँसि कै उमयौ॥
नैन-अमीन, अधर्मिनि कैं बस, जहँ कौ तहाँ छयौ।
दगाबाज कुतवाल काम रिपु, सरवस लूटि लयौ॥
पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुटयौ।
चरनोदक कौं छाँड़ि सुधा-रस, सुरा-पान अँचयौ॥
कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ।
सदा सिकार करत मृग-मन कौ, रहत मगन भुरयौ॥
घेरयौ आइ कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी पठयौ।
सूर नगर चौरासी भ्रमि-भ्रमि, घर-घर कौ जु भयौ॥

जन्म साहबी करते (अहंकारमें मग्न रहकर) ही बीत गया। शरीर-रूपी नगरमें उन्नतिका अवकाश बहुत था (भजन करके परमपद पाया जा सकता था), लेकिन कुछ भी (पुण्य) नहीं बढ़ाया। बार-बार आवेशमें आकर खोटे सिक्कोंके लिये (सांसारिक सुख पानेके लिये) श्रीहरिका नाम (जो अमूल्य धन था) फेंक दिया (जो कुछ भगवन्नाम लिया भी, उससे

सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति ही चाही)। विषयके गाँवमें (विषयभोग-प्रधान विश्वमें) शासकका अभाव है (मनोनियन्त्रण करनेवाला कोई नहीं है) इसमें (अनुशासनहीन होकर) प्रसन्नतापूर्वक मैं उन्मुक्त उमड़ता रहा (यहीं अपना प्रभाव बढ़ाता रहा), लेकिन मेरे नेत्ररूपी अमीन अधर्मियोंके वश हो गये। (नेत्रोंसे असत् दृश्य ही देखता रहा) अतः जहाँ था, वहीं रह गया (भोगोंकी प्राप्तिमें भी कोई वृद्धि नहीं हुई, क्योंकि भोगोंकी प्राप्ति भी पुण्यसे होती है)। कामरूपी शत्रुको कोतवाल (रखवाला) बना दिया, उस धोखेबाजने सर्वस्व लूट लिया (संचित पुण्यका भी नाश करवा दिया)। पापरूपी मन्त्रीने जो सलाह दी, वह मैंने माना (सदा पाप-मार्गपर चला) और धर्मरूपी सुन्दर धनको लुटा दिया। (भगवान्‌के अमृत-रसके समान चरणोदकको छोड़कर विषय-भोगरूपी मदिरा-पान करता रहा)। क्रोधपूर्वक कुबुद्धिका धनुष चढ़ाकर (आवेशमें नाना कुतर्कोंका सहारा लेकर) बुद्धिरूपी तरकसको खाली कर दिया (सद्‌बुद्धिके द्वारा आये सद्विचारोंको हृदयसे निकाल दिया)। मनरूपी मृगका सदा शिकार करता रहा (कुमार्गमें लगाकर मनको शक्तिहीन करता रहा) और भ्रममें पड़े रहनेमें ही सुख मानता रहा। इसी बीचमें यमराजके सिपाही (दूत) ने कुटुम्बरूपी छावनीमें आकर घेर लिया। सूरदासजी कहते हैं—चौरासी नगरोंमें घूम-घूमकर (चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ) घर-घरका होता रहा (प्रत्येक योनिमें बार-बार जन्म लेता रहा)।

[७४]

नर तैं जनम पाइ कहा कीनौ ?
उदर भर्‌यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ॥
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन बिषया मैं दीनौ ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ ॥

लख चौरासी जोनि भरमि कै फिरि वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अंजलि-जल छीनौ॥

तुमने मनुष्य-जन्म पाकर किया क्या ? श्रीभगवान्‌का नाम तो लिया नहीं, (बस,) कुत्तों और सूअरोंकी भाँति केवल पेट भरते रहे। कानोंसे श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनी, गुरुकी कृपा प्राप्तकर गोविन्दको पहचाना नहीं, हृदयमें (भगवान्‌के प्रति) भावना एवं भक्ति कुछ भी उत्पन्न नहीं हुई, केवल विषय-चिन्तनमें ही मन लगाये रहे। प्रियतमा स्त्रीके स्पर्श-सुखमें ही डूबे रहकर उस मिथ्या सुखको (जो अन्ततः दुःख देनेवाला होनेसे सुख न होकर दुःख ही है) अपना सुख (आत्मसुख) समझ लिया। इस प्रकार अरे अधम ! तूने पापका (ढेर) सुमेरु पर्वतके समान बढ़ा लिया और अन्तमें निर्बल हो गया। चौरासी लाख योनियोंमें बार-बार घूमते हुए भी तू फिर उसी (विषय-चिन्तन) में लगा है। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन किये विना आयु इस प्रकार नष्ट हो गयी, जैसे अञ्जलिमें लिया जल।

राग केदारौ

[७५]

रह्यौ मन ! सुमिरन कौ पछितायौ।
यह तन राँचि राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ॥
मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि तरि नहिं सक्यौ समायौ।
मेल्यौ जाल काल जव खैंच्यौ, भयौ, मीन जल-हायौ॥
कीर पढ़ावत गनिका तारी, व्याध परम पद पायौ।
ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ॥

हे मन ! (भगवान्‌का) स्मरण न करनेका पश्चात्ताप ही रह गया। इस शरीरको सँभाल-सँभालकर सजाया और (तुम्हें) जो कुछ अच्छा लगा, करते रहे; इससे मनके किये हुए दोषोंकी अथाह नदी बन गयी, जिसकी

तरंगोंसे पार होनेकी शक्ति नहीं रह गयी (शरीर सजाने और मनमाना आचरण करनेसे मनके दोष बढ़ते गये और उनपर विजय पाना असम्भव हो गया और उसीमें पैठ गया), जब कालने अपना जाल डालकर खींचा (मृत्युका समय पास आया), तब जलरहित मछलीकी दशा हो गयी (अत्यन्त व्याकुलता हुई) सूरदासजी कहते हैं—(जिस प्रभुने) तोतेको (राम-नाम) पढ़ाती गणिकाका उद्धार कर दिया, (जिनकी कृपासे) व्याधने परमपद प्राप्त कर लिया, ऐसे प्रभुके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, जो यमराजके आक्रमणको हटा सके ।

राग मलार

[७६]

इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ ?
नंद-नँदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ ॥
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ ॥
कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि-पूजा, कहुँ संतनि को डेरौ ।
जो बनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनेरौ ॥
सबै समर्पौ सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ ॥

इस प्रकार (रहनेसे) तुम्हारा क्या घट जायगा ? श्रीनन्दनन्दनको घरका स्वामी बना दो और स्वयं उनके सेवक बनकर रहो । सम्पत्ति बढ़ गयी तो हुआ क्या ? घरका घेरा बहुत बढ़ गया (मकान बड़ा बनवा लिया) तो क्या लाभ ? (इनकी सफलता तो इसीमें है कि) कहीं भगवान्‌की कथा होती रहे, कहीं भगवान्‌की पूजा चलती रहे और कहीं साधु-संत आसन लगाये विराजते रहें । स्त्री, पुत्रादिका जो समूह एकत्र हुआ है, हाथी-घोड़े आदिसे युक्त जो बड़ा वैभव है, वह सब श्यामसुन्दरके चरणोंमें समर्पित कर दो (सब भगवान्‌का है, मेरा अपना कुछ नहीं, यह दृढ़ निश्चय कर लो) । सूरदासजी कहते हैं कि यही मेरा सच्चा मत है ।

राग सूहा बिलावल

[७७]

यहई मन ! आनंद-अवधि सब ।
निरखि सरूप बिवेक नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब ॥
चित-चकोर-गति-करि अतिसय रति तजि स्रम सघन विषय लोभा।
चिंति चरन मृदु चारु चंद-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा ॥
जानु सुजघन करभ-कर-आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै।
हृद बिध नाभि, उदर त्रिबली वर, अवलोकत भव-भय-भाजै ॥
उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं।
कनक-वलय मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुभग संतनि काजैं ॥
उर वनमाल विचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम कौं नासै।
तड़ित-बसन घन स्याम सदस तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै ॥
परम-रुचिर मनि कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी।
बिधु-मुख, मृदु मुसुक्यानि अमृत सम, सकल लोक-लोचन प्यारी ॥
सत्य-सील-संपन्न सुमूरति, सुर-नर-मुनि-भक्तनि भावै।
अंग अंग प्रति छवि-तरङ्ग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै ॥

हे मन ! यही सम्पूर्ण आनन्दकी सीमा है कि विवेकरूप नेत्रोंसे भगवान्‌के स्वरूपको भली प्रकार देख । इस (भगवद्ध्यानके) सुखसे अधिक अब और कुछ नहीं है, जैसे चकोरका (चन्द्रमासे) अतिशय प्रेम होता है, ऐसे ही चित्तको भगवत्प्रेममें प्रगाढ़तासे लगा दो और विषय-सुखके लोभसे जो (भोगोंकी प्राप्तिके लिये) अत्यधिक श्रम है, उसे छोड़ दो । श्रीहरिके उन सुकुमार सुन्दर चरणोंका चिन्तन कर, जिनके नखोंकी ज्योति चन्द्रमाके समान है और जिनके चलनेसे चारों ओर (ध्वज, वज्र, यव, अंकुश, कमल आदि) चिह्नोंकी शोभा (पृथ्वीपर) फैलती है । भगवान्‌के घुटने बड़े ही सुन्दर हैं और जाँघें हाथीके बच्चेकी सूँड़के समान (सुढाल

एवं सुचिक्कण) हैं । कटिदेशमें करधनी शोभित हो रही है । (गहरी) नाभि कुण्डके समान है, उदरपर तीन श्रेष्ठ रेखाएँ हैं, जिन्हें देखते ही संसारका भय दूर हो जाता है । शेषनागके समान सुन्दर भुजदण्ड हैं तथा कर-कमलोंमें (शङ्ख, चक्र, गदा, एवं पद्मरूप) आयुध शोभित हैं । स्वर्ण-कङ्कण तथा ऐश्वर्यमयी अँगूठी संतोंके लिये सदा मंगलदायिनी है । अनेक रंगोंवाली विमोहक वनमाला हृदयपर लहराती है तथा भृगुलतारूप रोमावली (भक्तके) भ्रमका नाश करती है । विद्युत्के समान चमकता पीताम्बर धारण किये, मेघके समान श्याम शरीर अपनी तेजोराशिसे (अज्ञान) अन्धकारको दूर भगाता है । कण्ठके कौस्तुभमणिकी किरणें अत्यन्त सुन्दर हैं और कुण्डल तथा मुकुटकी छटा तो अनोखी ही है । चन्द्रमुखकी अमृतके समान मन्द मुसकान समस्त लोकोंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाली है । भगवान्की कमनीयमूर्ति सत्य एवं शीलसे सम्पन्न है । देवता, मनुष्य, मुनिगण आदि अपने सभी भक्तोंको भानेवाली है । (उस दिव्यमूर्तिके) अङ्ग-प्रत्यङ्गसे तरङ्गोंके समान शोभा छलकती रहती है । भला सूरदास उस शोभाका वर्णन कैसे कर सकता है ?

[७८]

रे मन, आपु कौं पहिचानि ।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि ॥
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास ।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास ॥
भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कैं भाइ ।
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ ॥
सलिल कौं सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ ।
सूर जो द्वै रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ ॥

अरे मन ! अपनेको (अपने वास्तविक रूपको) पहचान । सम्पूर्ण जीवन तो तूने (अज्ञानमें) भटकते हुए खो दिया, अब भी तो कुछ समझ, जैसे

· हिरन कस्तूरीको भूला रहता है। वह तो उसके पास (उसकी नाभिमें) ही रहती है, किंतु जैसे ही वह सुगन्ध पाता है, भरमाया हुआ उसे दौड़कर ढूँढ़ता है। यह भ्रम (अज्ञान ही) सबसे बलवान् है। यह ईश्वरके ही समान (अनादि-अचिन्त्य) है। जब भक्त भगवान्‌को पहचान लेता है तब उसके मनसे भ्रम (अज्ञान) दूर हो जाता है। जलको और सारे रंग छोड़कर एक रंगमें रँगना चाहिये। (इसी प्रकार मनको भी अन्य सब आसक्तियाँ हटाकर एकमात्र भगवान्‌के प्रेममें सराबोर कर देना चाहिये)। सूरदासजी कहते हैं कि भक्तका यही स्वभाव है कि वह दो रंग (संसारासक्ति) छोड़ देता है (केवल भगवान्‌में ही तल्लीन रहता है)।

राग रामकली

[७९]

राम न सुमिर्‌यो एक घरी।
परम भाग सुकित के फल तैं सुंदर देह धरी॥
जिहिं जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट बस, सोइ-सोइ दुखनि भरी।
काम-क्रोध-मद-लोभ-गरब मैं, बिसर्‌यौ स्याम हरी॥
भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिन तैं कछु न सरी।
लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी॥
मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी।
सूरदास तैं कछू सरी नहिं, परी काल-फँसरी॥

तुमने एक घड़ी भी श्रीरामका स्मरण नहीं किया। बड़े सौभाग्यसे (अनेक जन्मके) पुण्योंके फलसे तो सुन्दर (मनुष्य) शरीर प्राप्त हुआ (और उसे व्यर्थ नष्ट कर दिया)। (इससे पहले) संकटमें पड़कर (प्रारब्धविवश) जिस-जिस योनिमें भटकते रहे, वे सब दुःखोंसे भरी थीं।

(वहाँ तो कोई साधन हो नहीं सकता था; इस जन्ममें भी) काम, क्रोध, मद, लोभ और अभिमानमें पड़कर श्रीहरि श्यामसुन्दरको भूल गये। भाई-बन्धु तथा परिवारके बहुत-से लोग होनेपर भी उनसे कुछ किया-कराया न हो सका। (उन्होंने तो) शरीरको घरसे बाहर ले जाकर जला दिया, डंडा मारकर कपालक्रिया कर दी। मरनेके समय भी (कोई सहायता करनेके बदले) जो कुछ पूँजी कहीं गाड़कर रखी थी, उसीको वे सँभालने (ढूँढ़ने, अधिकृत कर लेने) में लगे थे। सूरदासजी कहते हैं—जब कालकी फाँसी (गलेमें) पड़ी (मृत्युका समय आ पहुँचा), तब कुछ करते (परलोक बनानेके लिये कोई साधन करते) नहीं बन पड़ा।

राग धनाश्री

[८०]

जनम सिरानौई सौ लाग्यौ।
रोम रोम, नख-सिख लौं मेरैं, महा अघनि बपु पाग्यौ॥
पंचनि के हित-कारन यह मन जहँ-तहँ भरमत भाग्यौ।
तीनौ पन ऐसैंहीं खोए, समय गए पर जाग्यौ॥
तौ तुम कोऊ तार्‌यौ नहिं, जौ, मोसौ पतित न दाग्यौ।
हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ॥

(मेरा) जन्म नष्ट हुआ-सा ही लगता है। रोम-रोम, नखसे शिखा-तक मेरा शरीर महापापोंसे सना हुआ है। (और) मेरा यह मन पाँचों इन्द्रियोंको सुख पहुँचानेके लिये जहाँ-तहाँ भटकता हुआ दौड़ता ही रहता है। तीन अवस्थाएँ (बाल्यकाल, किशोरावस्था, तरुणावस्था) ऐसे ही (विषयप्राप्तिके प्रयत्नोंमें व्यर्थ) नष्ट कर दीं और अवसर बीत जानेपर (बुढ़ापेमें जब शरीर असमर्थ हो गया है) सावधान हुआ हूँ। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो! यदि मेरे-जैसे पापदग्ध पतितका आपने उद्धार नहीं किया तो (मैं मानूँगा कि) तुमने किसीका भी उद्धार नहीं किया। कानोंसे सुनी (आपकी) एक भी (यशोगाथा) मैं नहीं कहता, मेरा भविष्य आप सुधार दें! (मुझे अपना लें, तब आपकी पतितपावनतामें मेरा विश्वास हो।)

राग नट

[८१]

गाइ लेहु मेरे गोपालहि ।
नातरु काल-ब्याल ले लैहै, छाँड़ि देहु तुम सब जंजालहिं ॥
अंजलिके जल ज्यौं तन छीजत, खोटे कपट तिलक अरु मालहिं ।
कनक-कामिनी सौं मन बाँध्यौ, ह्वै गज चल्यौ स्वानकी चालहिं ॥
सकल सुखनि के दानि आनि उर, दृढ़ बिस्वास भजौ नँदलालहि ।
सूरदास जौ संतनि कौं हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहि ॥

मेरे गोपालका गुणगान कर लो, अन्यथा कालरूपी सर्प निगल लेगा। तुम सब जंजालोंको छोड़ दो। यह शरीर अञ्जलिमें भरे जलके समान (निरन्तर) क्षीण हो रहा (मृत्युके पास पहुँच रहा) है और (तुम) झूठे, दम्भपूर्ण तिलक एवं माला (केवल साधुवेष) सजानेमें लगे हो; क्योंकि मन तो धन और स्त्री (की आसक्ति) से बँधा है। हाथी होकर तुमने कुत्तेकी चाल चली है (भगवद्भक्त कहलाकर विषयी लोगोंका आचरण किया है) सब सुखोंके दाता भगवान् श्रीनन्दनन्दनको हृदयमें ले आकर उनका दृढ़ विश्वाससे भजन करो। सूरदासजी कहते हैं—वे प्रभु ही संतोंके परम हित, दयामय एवं दुःखोंके जालको दूर करनेवाले हैं।

राग धनाश्री

[८२]

जौ हरि-ब्रत निज उर न धरैगौ ।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ ॥
आन देवकी भक्ति भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ ।
सब वे दिवस चारि मन-रंजन, अंत काल बिगरैगौ ॥
चौरासी लख जोनि जन्मि जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ ।
सूर सुकृत सेवक सोइ साँचौ, जो स्यामहि सुमिरैगौ ॥

(अरे मन !) यदि तू श्रीहरि (के भजनका) व्रत अपने हृदयमें नहीं धारण करेगा तो (दूसरा) ऐसा कौन उद्धारक है, जो (तुझे) अपनाकर सङ्कटके स्थानपर तेरा हाथ पकड़ेगा (तुझे सहायता देगा) ? दूसरे देवताओंकी भक्ति भावपूर्वक भी करेगा और उनमें करोड़ों उलटे-सीधे कर्म भी करेगा, तो भी वे सब (देवता) चार दिनका मनोरञ्जन (थोड़े समय ही सुख प्रदान) कर सकते हैं, अन्त-समय (परलोक) तो बिगड़ेगा ही ! चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेता हुआ संसारमें, जल-स्थलमें भटकता हुआ घूमता रहेगा। सूरदासजी कहते हैं कि वही सच्चा पुण्यवान् और सेवक है, जो श्यामसुन्दरका स्मरण करेगा।

राग सारंग

[८३]

अंत के दिन कौं हैं घनस्याम।
माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहि कौं काम॥
आमिष-रुधिर-अस्थि अँग जौलौं, तौलौं कोमल चाम।
तौ लगि यह संसार सगौ है, जौ लगि लेहि न नाम॥
इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याही धाम।
छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर बृंदावन सौ ठाम॥

अन्तके समयके (सहायक) केवल घनश्याम हैं। माता-पिता, भाई, पुत्र (आदि सम्बन्धी) तभीतक (स्नेह करते) हैं, जबतक उनका काम (स्वार्थकी सिद्धि होती) है। (सम्बन्धियोंकी बात तो दूर, इस शरीरकी) चमड़ी भी तभीतक कोमल है, जबतक शरीरमें मांस, रक्त और हड्डियाँ हैं (मांसादि न हों तो अपनी देहकी चमड़ी भी कोमल न रहकर कठोर हो जायगी) यह संसार तभीतक अपना (प्रिय) है, जबतक भगवन्नाम नहीं लेते। अरे मूर्ख मन ! इतनी सब बातें जानता है, तो भी इसी संसार और शरीरको अपना धाम (निवासस्थान) मानता है। सूरदासजी कहते हैं— संसारका सब भय छोड़कर वृन्दावन-जैसे स्थानको क्यों नहीं अपनाता ?

राग बिलावल

[८४]

तेरौ तब तिहिं दिन, को हितू हौ हरि बिन,
सुधि करि कै कृपिन, तिहि चित आनि।
जब अति दुख सहि, कठिन करम गहि,
राख्यौ हौ जठर महिं स्रोनित सौं सानि॥
जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम,
सकल बिधि बिषम, खल मल खानि।
समुझि धौं जिय महिं, को जन सकत नहिं,
बुधि-बल कुल तिहिं, जायौ काकी कानि॥
वैसी आपदा तैं राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ,
मुख नासिका-नयन-स्रौन-पद-पानि।
सुनि कृतघन, निसि-दिन कौ सखा आपन,
अब जो बिसार्‌यौ करि बिनु पहिचानि॥
अजहुँ संग रहत, प्रथम लाज गहत,
संतत सुभ चहत, प्रिय जन जानि।
सूर सो सुहृद मानि, ईस्वर अंतर जानि,
सुनि सठ, झूठौ हठ-कपट न ठानि॥

श्रीहरिके अतिरिक्त तेरा उस दिन कौन भला करनेवाला था ? अरे कृपण ! उस दिनका स्मरण करके उन श्रीहरिको ही चित्तमें ले आ, जब अत्यन्त कठिन कर्म (प्रारब्ध) ने पकड़कर तुझे रक्तमें लथपथ करके (माताके) पेटमें रखा था और तू अत्यन्त दुःख सह रहा था—जहाँ कोई जा नहीं सकता था, अत्यन्त असह्य एवं दारुण (कष्टदायी) अन्धकार था, सब प्रकारकी प्रतिकूलता थी। अरे मलकी खानि (पापरूप) दुष्ट ! अपने मनमें सोच तो सही कि कोई भी बुद्धि, बल या कुलीनतासे तुझे वहाँसे

निकाल नहीं सकता था। (ऐसी दशामें) तू किसकी शपथ करके (किससे प्रतिज्ञा करके) उत्पन्न हुआ। वैसी आपत्तिसे तेरी रक्षा की, तुझे सन्तुष्ट किया, तेरा पोषण किया, तुझे प्राण दिये तथा मुख, नाक, नेत्र, कर्ण, चरण और हाथ दिये। अरे कृतघ्न ! सुन, तेरा रात-दिनका अपना (सच्चा) मित्र कौन है, जिसे तू भूल गया है और अब उसे बिना पहचानका (जैसे कभीकी जान-पहिचान हो ही नहीं, ऐसा) कर दिया है। (किंतु) वह तो अब भी तुझे अपना प्रिय-जन जानकर तेरे साथ रहता है, सबसे पहले तेरी लज्जा रखता है, सदा तेरा मङ्गल चाहता है। सूरदासजी कहते हैं—अरे शठ ! सुन, व्यर्थ हठ और कपट मत कर। उसे अपने भीतर रहनेवाला ईश्वर जान और उसीको अपना सुहृद् (अकारण हितैषी) समझ।

राग धनाश्री

[८९]

जनम तौ ऐसेहिं बीति गयौ।
जैसें रंक पदारथ पाये, लोभ बिसाहि लयौ॥
बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ।
अब मेरी मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ॥
नर कौ नाम पारगामी हौ, सो तोहि स्याम दयौ।
तैं जड़ नारिकेल कपि-कर ज्यौं, पायौ नाहिं पयौ॥
रजनी गत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौ न चयौ।
सूर नंद-नंदन जेहिं बिसरयौ, आपुहिं आपु हयौ॥

(अरे मन ! यह मनुष्य) जन्म तो ऐसे ही (व्यर्थ ही) बीत गया। जैसे कङ्गालको कोई वस्तु मिल जाय, उसी प्रकार लोभने तुझे खरीद लिया है। (लोभसे मेरा छुटकारा ही नहीं होता)। बहुत जन्मोंतक तो मलके पीछे लगे रहनेवाला (मैला खानेवाले) सूअर और कुत्ता होता रहा और अब भी अरे पागल ! (सांसारिक वस्तुओंको) 'मेरी' 'मेरी' करके (उनमें ममत्व करके) इस बार भी वही (निन्दित योनियोंमें ले जानेवाले कर्मोंका)

बीज बोता रहा है। 'नर' का दूसरा नाम है—संसार-सागरसे पार जानेवाला (मनुष्य-जन्म ही संसारसे पार होनेका साधन है), वह (मनुष्य-जन्म) तुझे श्यामसुन्दरने दिया। अरे मूर्ख ! जैसे बन्दरके हाथमें नारियलका फल दे दिया जाय तो वह उसका उपयोग नहीं कर सकता, वैसे ही तूने इस जीवनको पाकर भी न पायेके समान (व्यर्थ नष्ट) कर दिया। (इसका ठीक उपयोग नहीं किया)। (संसारके भोगोंकी) मृगतृष्णा (झूठी आशा) में ही रात और दिन बीतते गये, श्रीहरिके (भजनरूपी) रसका संचय नहीं किया। सूरदासजी कहते हैं—जिसने नन्दनन्दनका विस्मरण कर दिया, उसने अपने-आप अपना नाश कर लिया।

[८६]

प्रीतम जानि लेहु मन माहीं।
अपनैं सुख कौं सब जग बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीं ॥
सुख मैं आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति परी तब सब सँग छाड़े, कोउ न आवै नेरे ॥
घर की नारि बहुत हित जासौं, रहत सदा सँग लागी।
जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत-प्रेत कहि भागी ॥
या बिधि कौ ब्यौपार बन्यो जग, तासौं नेह लगायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, नाहक जनम गँवायौ ॥

प्रियतम (प्रभु) को मनमें जान लो (भली प्रकार समझो कि एकमात्र प्रभु ही प्रियतम हैं)। सारा संसार अपने सुखके लिये बँधा (सम्बन्ध रखनेवाला) है, यहाँ कोई किसीका (सच्चा हितैषी) नहीं है। सुखके समय सब लोग आकर मिलकर (एकत्र) बैठते हैं, चारों ओरसे घेरे रहते हैं (सम्बन्ध रखते एवं साथ लगे रहते हैं), किंतु विपत्ति पड़नेपर सब साथ छोड़ देते हैं, कोई पास भी नहीं आता। घरकी स्त्री (अपनी निजकी पत्नी) जिससे कि बड़ा प्रेम होता है, (और) जो सदा साथ लगी रहती है, वह भी जिस क्षण जीव शरीरको छोड़ देता है, उसी क्षण (भयसे) 'भूत ! भूत !' कहकर दूर भाग जाती है (प्राणहीन देहके पास वह भी नहीं बैठ पाती)। यह संसार इस प्रकारका

व्यापार (स्वार्थका धन्धा) ही बना है, उससे (तूने) स्नेहका नाता जोड़ लिया । सूरदासजी कहते हैं—(संसारके मोहमें फँसकर) भगवान्‌का भजन किये बिना जीवन व्यर्थ खो दिया ।

राग बिलावल

[८७]

क्यौं तू गोविंद नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ काल फिरत सिर ऊपर भारौ ॥
धन-सुत दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥

(अरे मन !) तुमने गोविन्दका नाम क्यों भुला दिया ? अब भी सावधान होकर श्रीहरिका भजन करो, क्योंकि सिरके ऊपर भयंकर काल घूम रहा है । जिनके लिये अपना स्वरूप ही खो बैठा है, वे धन, पुत्र, स्त्री आदि किसी काम नहीं आयेंगे । सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन किये बिना नेत्रोंसे आँसू बहाते, पश्चात्ताप करते हुए ही जाना पड़ेगा ।

राग टोड़ी

[८८]

जो घट अन्तर हरि सुमिरै ।
ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै ॥
कोपै तात प्रहलाद भगत कौं, नामहि लेत जरै ।
खंभ फारि नरसिंह प्रगट ह्वै, असुर के प्रान हरै ॥
सहस बरस गज युद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै ।
चक्र धरैं बैकुँठ तैं धाए, वाकी पैज सरै ॥
अजामील द्विज सौ अपराधी, अंतकाल बिडरै ।
सुत-सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परै ॥
जहँ जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं, तहँ तहँ सार करै ।
सूरदास स्याम सेए तैं दुस्तर पार तरै ॥

जो अपने हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करता है, जो अपने चित्तको उनके श्रीचरणोंमें लगाता है, उसका काल अप्रसन्न होकर भी क्या कर सकता है ? भक्त प्रह्लादपर उनके पिता हिरण्यकशिपुने अत्यन्त क्रोध किया। प्रह्लादका नाम लेते ही वे जल उठते थे, किंतु नृसिंहभगवान् खंभेको फाड़कर प्रकट हो गये और असुर हिरण्यकशिपुके प्राण उन्होंने ले लिये। गजराज एक सहस्र वर्ष ग्राहसे युद्ध करता रहा, (थक जानेपर) एक क्षणके लिये उसने श्रीहरिका ध्यान किया। उसके लिये चक्र लेकर प्रभु वैकुण्ठसे दौड़े और उसकी टेक रखी (उसका उद्धार किया)। अजामिल-जैसे अपराधी (पापी) ब्राह्मणका अन्तिम समय बिगड़ रहा था (यमदूत उसे लेने आये थे), किंतु पुत्रके बहाने 'नारायण' शब्द उसके मुखसे निकलते ही भगवान्के पार्षद (उसकी रक्षा करने) दौड़ पड़े। जहाँ-जहाँ भक्तोंपर असह्य कष्ट पड़ा है, वहाँ-वहाँ (भगवान्ने) उनकी सम्हाल की है। सूरदासजी कहते हैं—जिस किसीने श्यामसुन्दरका भजन किया, वे दुस्तर (भवसागर) से पार हो गये।

राग सोरठ

[८९]

करि हरि सौं सनेह मन साँचौ।
निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इन्द्रिय बस राखहि किन पाँचौ ?
सुमिरन कथा सदा सुखदायक, विषधर विषय विषम विष बाँचौ।
सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ (जौ, तौ) आनँद करिकै नाँचौ ॥

अरे मन ! श्रीहरिसे सच्चा (निश्छल) प्रेम कर ! निरे कपटकी अटपटी चाल (दंभपूर्ण व्यवहार) छोड़कर पाँचों इन्द्रियोंको वशमें क्यों नहीं रखता ? भगवानका स्मरण एवं उनकी कथा सदा सुख देनेवाली है। (उसके आश्रयसे) विषयरूपी विषैले सर्पके विषम (तीक्ष्ण) विषसे बचो। सूरदासजी कहते हैं कि यदि तुम प्रेमसे श्रीहरिका स्मरण करो तो आनन्दसे नृत्य करते (सदा आनन्दमग्न) रहो।

राग टोड़ी

[९०]

हरि बिनु अपनौ को संसार ?
माया-लोभ-मोह हैं चाँड़े काल-नदी की धार ॥
ज्यौं जन संगति होति नाव मैं, रहति न परसैं पार ।
तैसैं धन-दारा-सुख-संपति, बिछुरत लगै न बार ॥
मानुष-जनम, नाम नरहरि कौ, मिलै न बारंबार ।
इहि तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार ॥
जैसैं अंधौ अंध कूप मैं गनत न खार-पनार ।
तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार ॥

श्रीहरिको छोड़कर संसारमें अपना और कौन है ? (संसार) काल-रूपी नदीकी धारा है, जिसमें माया, लोभ और मोह अटकानेवाले प्रबल रोड़े हैं । जैसे नौकामें कुछ लोगोंका साथ हो जाता है, परंतु पार उतर जानेपर फिर साथ नहीं रहता, वैसे ही धन, स्त्री, सुख, सम्पत्ति आदिका साथ है, इनसे वियोग होते देर नहीं लगती । यह मनुष्य-जन्म और श्रीहरिका नाम बार-बार नहीं मिलता । अरे मूर्ख ! इस एक क्षणमें नष्ट होनेवाले शरीरपर गर्व क्या करता है । जैसे पत्तोंसे ढँके हुए कुएँमें गिरा अन्धा कुएँकी खाल (जलके द्वारा बने गड्ढे) और पनार (ईटोंमें बनाये हुए पैर टिकानेके स्थान) नहीं गनता (उनको ढूँढ़कर उनके सहारे बाहर नहीं निकल पाता) वैसे ही सूरदास तो बहुत उपदेश करता है (भवसागरसे पार होनेका मार्ग बार-बार बतलाता है) किंतु अज्ञानी मनुष्य पता नहीं कितनी बार सुन-सुनकर चले जाते हैं (उससे कोई लाभ नहीं उठाते) !

राग धनाश्री

[९१]

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे ।
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजि गोपालहि मेरे ॥

यह संसार विषय-विष-सागर, रहत सदा सब घेरे।
सूर स्याम बिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे॥

अरे मन ! मैं तुझसे पुकारकर कहता हूँ, सुन ! श्रीहरिको छोड़कर तेरा कोई मित्र नहीं है, अतः (तू) मेरे गोपालका भजन कर । यह संसार विषयरूपी विषका समुद्र है, जो कि सदा सबको घेरे रहता है । सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरको छोड़कर मृत्युके समय दूसरा कोई पास नहीं आता । (उस समय केवल भजन ही सहायक हो सकता है ।)

राग झिंझौटी

[९२]

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं॥
या देही कौ गरब न करियै स्यार-काग-गिध खैहैं।
तीननि मैं तन कृमि, कै विष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै॥
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै।
जिन लोगनि सों नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं॥
घर के कहत सवारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैं।
जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपाल्यो, देवी-देव मनैहैं॥
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पैहै॥
नर-बपु धारि नाहिं जन हरिकौं, जम की मार सो खैहै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु वृथा सु जनम गँवैहै॥

हे मन ! जिस दिन (शरीररूपी वृक्षसे) प्राणरूपी पक्षी उड़ जायगा, उस दिन इस शरीररूप वृक्षके सभी पत्ते झड़ जायँगे (देहका प्रत्येक अङ्ग नष्ट हो जायगा) ! इस शरीरका गर्व मत करना, इसे तो सियार, कौए और गीध खा जायँगे । शरीरकी तीनमेंसे एक गति होनी ही

है—या तो यह (गाड़ दिया गया तो सड़कर) कीड़े बनेगा या (पशु-पक्षी आदि खा गये तो उनकी) विष्ठा बनेगा या (जला दिया गया तो) राख बन जायगा । वह पानी (तेज) कहाँ, वह सुन्दरता कहाँ और वह रंग-रूप भी कहाँ दिखायी पड़ सकता है । (प्राणान्तके बाद तो) वे ही सब लोग जिनसे तू स्नेह करता था, (मृतक देहको) देखकर घृणा करेंगे । घरके लोग कहने लगते हैं—जल्दी घरसे (लाश) निकाल दो, नहीं तो भूत होकर (हमलोगोंको) पकड़ खायगा (हमें पीड़ा देगा) । जिन पुत्रोंका बहुत (प्रेमसे) पालन-पोषण किया था, जिनके (दीर्घ जीवनके) लिये देवी-देवता मनाये गये थे, वे पुत्र ही बाँस लेकर खोपड़ीपर मारेंगे और मस्तक फोड़कर बिखेर देंगे (कपालक्रिया करेंगे) । अरे मूर्ख ! अब भी सत्संग कर । संतोंका साथ करनेसे (परलोकका सहारा) कुछ पा जायगा । जो मनुष्य-शरीर धारण करके भी श्रीहरिका भक्त नहीं होता, उसे यमराजकी मार खानी पड़ेगी । सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन किये बिना तो (मनुष्यका) श्रेष्ठ जन्म व्यर्थ ही नष्ट कर देगा ।

राग सोरठ

[९३]

नहिं अस जनम बारंबार !
पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर-अवतार ॥
घटै पल-पल बढ़ै छिन-छिन, जात लागि न बार ।
धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागै डार ॥
भय-उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार ।
सूर हरि कौ भजन करि-करि उतरि पल्ले पार ॥

ऐसा जन्म बारंबार नहीं मिला करता । यह तो पूर्वजन्मका कोई पुण्य उदय हुआ था कि मनुष्य-जन्म प्राप्त हो गया । जैसे प्रतिक्षण शरीर बढ़ता है, वैसे ही प्रतिपल आयु घट रही है । इसे जाते देर नहीं लगा करती । पेड़का पत्ता जब (टूटकर) पृथ्वीपर गिर पड़ता है, तब

फिर डालीसे जुड़ा नहीं करता (इसी प्रकार जीवनका जो समय चला गया वह फिर लौटनेका नहीं)। नितान्त अन्धकारपूर्ण भयका समुद्र यमलोक दिखायी पड़ रहा है (मृत्यु पास है) सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिका भजन करके (उस मृत्युरूपी भयके) उस पार लग जाओ।

राग सारंग

[९४]

जनम सिरानौं अटकैं-अटकैं।
राज-काज, सुत-वित की डोरी, बिनु बिबेक फिर्‌यो भटकैं॥
कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीचहीं लटकैं॥
ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं।
सूरदास सोभा क्यौं पावै, पिय-बिहीन धनि मटकैं॥

(संसारकी) उलझनमें पड़े-पड़े ही जन्म बीत गया। बिना विचारके (ज्ञानहीन होकर) राज-काज, पुत्र तथा धनके फंदेमें पड़ा भटकता रहा। मायाकी जो कठिन गाँठ पड़ गयी है, वह झटका देनेसे नहीं टूटती न तो भगवानका भजन किया, न साधु पुरुषोंका संग किया, बीचमें (मायाके) भीतर ही अटका रह गया। जैसे नट विविध स्वाँग सजकर बहुत-सी कलाएँ दिखलाता है, परंतु उसका लोभ नहीं छूटता (वैसे ही त्याग-वैराग्यकी बातें करके वेश धारण करके भी आसक्ति नहीं जाती)। सूरदासजी कहते हैं—पतिविहीना (विधवा) स्त्री नाना प्रकारके हाव-भाव दिखलानेसे शोभा नहीं पाती (उसी प्रकार भगवत्-प्रेमसे शून्य व्यक्तिके लिये भक्तिका स्वाँग भरना क्या शोभा देता है ?)।

[९५]

जनम सिरानौ ऐसैं-ऐसैं।
कै घर-घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं॥

कै कहुँ खान-पान-रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं।
कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरता, नट-बाजीगर जैसैं॥
चेत्यौ नाहिं, गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसैं।
यह गति भई सूरकी ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसैं॥

श्रीयदुनाथके (भजन) बिना घर-घर भटकते हुए या पड़े-पड़े सोते हुए अथवा (व्यर्थ) बैठे हुए—इसी प्रकार जन्म बीत गया। या तो कहीं खाने-पीने या स्त्री-सहवासमें लगे रहे या कहीं अमर्षभरा विवाद करते रहे। जैसे बाजीगर नट अनेक रूप बनाता है, वैसे ही कभी कंगाल हुए और कभी प्रभुता प्राप्त की। कभी सावधान नहीं हुए, अवसर निकल गया और अब जलके बिना मछलीके समान (असहाय) हो गये। सूरदासजी कहते हैं—मेरी यह गति तो इस प्रकार (ऊपरके ढंगसे लगनेसे) हुई, तब श्यामसुन्दर कैसे मिलें?

राग देवगंधार

[९६]

बिरथा जन्म लियौ संसार।
करी कबहुँ न भक्ति हरि की, मारी जननी भार॥
जज्ञ, जप, तप नाहिं कीन्हौ, अलप मति बिस्तार।
प्रगट प्रभु, नहिं दूरि हैं, तू देखि नैन पसार॥
प्रबल माया ठग्यौ सब जग, जनम जूआ हार।
सूर हरि कौ सुजस गावौ, जाहि मिटि भव-भार॥

(मैंने) संसारमें व्यर्थ ही जन्म लिया। श्रीहरिकी भक्ति तो कभी की नहीं, (गर्भमें आकर) अपनी माताको (अपने) भारसे व्यर्थ पीड़ा दी। यज्ञ, जप, तप आदि (पवित्र कर्म) तो किये नहीं, अपनी मन्द बुद्धि-का ही विस्तार किया। प्रभु तो प्रत्यक्ष हैं (विश्वके रूपमें वे ही प्रकट हैं), कहीं दूर नहीं हैं, आँख फैलाकर देख तो सही। (किंतु) माया बड़ी प्रबल

है, उसने सारे संसारको ठग लिया है, इसीसे (मायाके) जुएमें (सब लोग) जन्मरूपी धन हारते हैं। सूरदासजी अपने-आपसे कहते हैं कि श्रीहरिके सुयशका गान करो, जिससे संसारका भार दूर हो।

राग सोरठ

[९७]

काया हरि कैं काम न आई।
भाव-भक्ति जहँ हरि जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई।
चरन-कमल सुंदर जहँ हरि के, क्योंहुँ न जात नवाई॥
जब लगि स्याम-अंग नहिं परसत, अंधे ज्यौं भरमाई।
सूरदास भगवंत-भजन तजि, बिषय परम बिष खाई॥

यह शरीर श्रीहरिके काम नहीं आया। जहाँ भाव, भक्ति और श्रीहरिका यश सुना जा सकता है (जहाँ सत्संग और हरिकथा होती है) वहाँ जानेमें तो आलस्य आता है; किंतु लोभसे आतुर होकर या अपनी कामनाके पूरी होनेकी बात जहाँ सुनायी पड़ी, वहाँ दौड़ पड़ता है। जहाँ श्रीहरिके सुन्दर चरणारविन्द हैं। (जिन तीर्थोंमें भगवान्‌के श्रीविग्रह हैं) वहाँ तो कभी कैसे भी जाकर मस्तक नहीं झुकाया। जबतक श्यामसुन्दरके श्रीअंगका स्पर्श न हो (भगवान् हृदयमें न आवें) तबतक अंधेके समान भ्रममें भटकना ही है। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्‌का भजन छोड़कर (मूर्ख मनुष्य) विषयरूपी दारुण विषका भक्षण करता है।

राग धनाश्री

[९८]

सबै दिन गए विषयके हेत।
तीनौं पन ऐसैं हीं खोए, केश भए सिर सेत॥
आँखिनि अंध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि-तजि पूजत प्रेत॥

मन-बच-क्रम जो भजै स्याम कौं, चारि पदारथ देत।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यौं भटकै, अजहूँ चेति अचेत॥
राम नाम बिनु क्यौं छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत॥

सभी दिन (पूरी आयु) विषयोंके लिये (विषय-सेवनमें) ही बीत गये। तीनों (बाल्य, किशोर, तारुण्य) अवस्थाएँ ऐसे ही व्यतीत कर दीं और अब मस्तकके बाल सफेद हो गये (बुढ़ापा आ गया)। आँखोंसे अंधा हो गया, कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, पैरोंसहित सभी अङ्ग शिथिल हो गये (कर्मेन्द्रियोंकी शक्ति भी जाती रही)। गङ्गाजल छोड़कर कुएँका पानी पीता है और श्रीहरिको छोड़कर प्रेत (शरीर) की पूजा करता है। (इसके बदले) यदि मन, वाणी तथा कर्मसे श्रीश्यामसुन्दरका भजन करे तो वे (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) चारों पदार्थ देते हैं। अरे मूर्ख ! ऐसे प्रभुको छोड़कर (मायामें) क्यों भटक रहा है; अब भी सावधान हो जा ! राहुग्रस्त[1] चन्द्रमाके समान रामनाम लिये बिना (संसारसे) तू कैसे छूट सकता है ? (यही पुराणोंकी कथा है कि भगवान्‌के चक्रके द्वारा डराये जानेपर ही राहु चन्द्रमा या सूर्यको छोड़ता है।) सूरदासजी कहते हैं कि मुखसे रामनाम लेनेमें कुछ खर्च तो लगता नहीं (फिर भी क्यों नाम नहीं लेता ?)

राग देवगंधार

[९९]

सबनि सनेहौ छाँड़ि दयौ।
हा जदुनाथ ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ॥
सोइ तिथि-वार-नक्षत्र-लगन-ग्रह, सोइ जिहिं ठाट ठयौ।
तिन अंकनि कोउ फिरि नहिं बाँचत, गत स्वारथ समयौ॥

---

१. पदमें 'केतु' शब्द राहुका ही उपलक्षण है; क्योंकि राहु समस्त केतुओंका बड़ा भाई है।

सोइ धन-धाम, नाम सोई, कुल सोई जिहि बिढ़यौ।
अब सबही कौ बदन स्वान लौं, चितवत दूरि भयौ॥
बरस दिवस करि होत पुरातन, फिरि-फिरि लिखत नयौ।
निज कृति-दोष बिचारि सूर प्रभु! तुम्हरी सरन गयौ॥

सबने स्नेह छोड़ दिया। हे यदुनाथ प्रभु! मेरे शरीरको बुढ़ापेने ग्रस लिया है, हाय! सारी प्रतिभा भी नष्ट हो गयी। (मेरी कुण्डलीके) तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, ग्रह आदि सब वे ही हैं (उनमें कोई उलट-फेर नहीं हुआ) और वही मैं हूँ, जिसने सारे वैभव जुटाए थे। किंतु अब कोई (मेरी कुण्डलीके) उन अङ्कोंको नहीं पढ़ता। मुझसे लोगोंके स्वार्थ सधनेका समय चला गया (किसीको स्वार्थ सिद्ध होनेकी मुझसे आशा नहीं रही)। वही सम्पत्ति, वही भवन, वही यश और वही कुल है; जिसका मैंने विस्तार किया था, किंतु अब सभीका—कुत्ते-तकका मुख मेरे देखते-देखते मुझसे दूर चला गया (अब उसी कुल एवं भवनके लोग—यहाँतक कि कुत्ते भी मुझे मुख दिखाना नहीं चाहते)। वर्षके दिन—वर्ष बीत जानेपर पञ्चाङ्ग पुराना हो जाता है; बार-बार नवीन पञ्चाङ्ग लिखा जाता है। मैं भी बीते वर्षके पञ्चाङ्गके समान अनुपयोगी तथा उपेक्षित हो गया हूँ।) सूरदासजी कहते हैं—हे प्रभो! अपने कर्मोंके दोषको विचार करके अब आपकी शरणमें आया हूँ।

राग मलार

[१००]

द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह-सुख पायौ, वृथा बिहाइ गई॥
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई।
अबिगत-गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई॥
सुत-सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निस-दिन होत खई।
पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई॥

विषय-बिकार दवानल उपजी, मोह बतारि लई।
भ्रमत-भ्रमत बहुपै दुख पायौ, अजहुँ न टेंव गई॥
होत कहा अब के पछताएँ, बहुत बेर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई॥

दोमेंसे एक भी (कार्य) नहीं हो सका। न तो श्रीहरिका भजन किया और न घरका सुख ही भोगा, आयु व्यर्थ बीत गयी। मनमें कुछ और निश्चय किया था; किंतु हुआ कुछ और ही। अज्ञातगति भाग्यकी गति—दैव जो कुछ करता है, वह कुछ समझमें नहीं आता। पुत्र-स्त्री, हित-मित्र तथा सारे कुटुम्बसे स्नेह करके (प्राणी) रात-दिन क्षीण होता रहता है और भगवान्‌के चरणोंके नखरूपी चन्द्रमासे विमुख होकर (उसका) चकोररूपी मन अङ्गारमय (दाहक) विषयभोगोंका सेवन करता रहता है। विषयभोगोंके विकारसे दावानल (त्रिताप) उत्पन्न हुआ और उसे मोहरूपी वातने अलग धर दबोचा। (वातसे प्रेरित होकर जलते हुए उस विषयरूपी वनमें) भटकते-भटकते बहुत दुःख भोगा; किंतु (विषय-सेवनका) स्वभाव अब भी छूटा नहीं। अब पश्चात्ताप करनेसे क्या होता है, बहुत विलम्ब कर दिया (जीवनके बहुत दिन नष्ट कर दिये)। सूरदासजी कहते हैं कि जो सकल सुखमय हैं, उन कृपानिधि प्रभुकी सेवा (भजन) तो किया ही नहीं।

राग सारंग

[१०१]

यह सब मेरीयै आइ कुमति।
अपनैं ही अभिमान दोष दुख पायत हौं मैं अति॥
जैसैं केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति।
कूदि पर्‌यौ, कछु मरम न जान्यौ, भई आइ सोइ गति॥
ज्यौं गज फटिक-सिला मैं देखत, दसननि डारति हति।
जौ तू सूर सुखहि चाहत है, तौ करि बिषय-बिरति॥

यह सब मेरी ही दुर्बुद्धिका परिणाम है । अपने ही अभिमान और दोषसे मैं अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ । जैसे सिंहने कुएँमें झुककर अपनी परछाहीं देखी और उसका कुछ भेद न समझकर (उसे दूसरा सिंह जानकर युद्ध करनेके लिये कुएँमें) कूद पड़ा, वही गति मेरी यहाँ (संसारमें) आकर हो गयी (संसारके भोगोंमें तो सुख है नहीं, भोगोंकी प्राप्तिमें चित्तकी एकाग्रता होनेसे जो आत्मानन्दकी झलक मिलती है, उसे भोगोंका ही सुख मानकर उनमें आसक्त हो गया और अब निकल नहीं पाता)। जैसे हाथी स्फटिक-शिलामें (अपना प्रतिबिम्ब) देखकर अपने दाँतोंको (शिलामें दूसरा गज समझकर) मार-मारकर तोड़ लेता है (वैसी ही मेरी गति हुई है, विश्वमें एक ही तत्त्व व्याप्त है, किंतु भ्रमवश दूसरेकी सत्ता मानकर द्वेष करके अपनी ही हानि कर रहा हूँ) । सूरदासजी कहते हैं— (अरे मन !) यदि तू सुख चाहता है तो विषयोंसे विरक्त हो जा ।

राग केदारौ

[१०२]

झूठेही लगि जनम गँवायौ ।
भूल्यौ कहा स्वप्न के सुख मैं, हरि सौं चित न लगायौ ॥
कबहुँक बैठ्यौ रहसि-रहसि कै, ढोटा गोद खिलायौ ।
कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ, मूँछनि ताव दिखायौ ॥
टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ै-टेढ़ै धायौ ।
सूरदास प्रभु क्यौं नहिं चेतत, जब लगि काल न आयौ ॥

(संसारके) झूठे ही सुखोंके लिये मैंने जन्म खो दिया । स्वप्नके समान (संसारके) सुखोंमें था क्या; पर इन्हींमें भूल गया और श्रीहरिसे अनुराग नहीं किया । कभी मौजमें बैठकर बड़े चावसे पुत्रको गोदमें लेकर खेलाता रहा और कभी अहंकारपूर्वक सभामें बैठकर मूँछोंपर ताव देता रहा । सिरपर टेढ़ी पगड़ी लगाकर, टेढ़ी (गर्वभरी) गतिसे, टेढ़े रास्ते (कुमार्गपर) दौड़ता रहा । सूरदासजी कहते हैं—जबतक मृत्युका समय नहीं आया, (उससे पूर्व ही) प्रभुका स्मरण क्यों नहीं कर लेता ?

[१०३]

जग मैं जीवत ही कौ नातौ।
मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ॥
मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातौ।
विषयासक्त रहत निसि-बासर, सुख सियरौ, दुख तातौ॥
साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ।
सूरदास कछु थिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ॥

जगत्के (सारे) सम्बन्ध जीवित रहनेतक ही हैं। मन (सूक्ष्म शरीर) से वियुक्त होनेपर शरीर (जलकर) भस्म हो जायगा; तब कोई चर्चा भी नहीं करेगा। यह 'मैं हूँ', 'यह मेरा है'—इस प्रकारका गर्व कभी नहीं करना चाहिये। करना वही काम चाहिये, जो पञ्चों (सब लोगों) को भला लगे। (मनुष्य) रात-दिन विषयभोगोंमें रचा-पचा रहता है, (उसे) सुख शीतल (प्रिय) और दुःख उष्ण (अप्रिय) लगता है। स्वयं तो रूखा (बहुत साधारण) भोजन करता है, परन्तु झूठ-सच बोलकर सम्पत्ति एकत्र करता है। सूरदासजी कहते हैं—(इस संसारमें) कुछ स्थिर नहीं रहेगा! जो आया है (जिसने जन्म लिया है), वह जायगा (मरेगा) ही।

राग धनाश्री

[१०४]

कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी?
सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी।
राज-पाट सिंहासन बैठो, नील-पदुम हू सौं कहै थोरी॥
मैं-मेरी करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परति जम-डोरी।
धन-जोबन-अभिमान अलप जल, काहे कूर आपनी बोरी॥
हस्ती देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मति है थोरी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चले खेलि फागुन की होरी॥

किसलिये (तूने) श्रीहरिसे प्रेम तोड़ दिया ? श्रीहरिसे प्रेम तोड़कर किससे यह सम्बन्ध जोड़ा है ? अनेक उपायोंके द्वारा जो सम्पत्ति एकत्र की है, उसे कोई सिरपर रखकर नहीं ले जायगा। राज्य मिला, सिंहासनासीन हुआ, नील और पद्मकी संख्यातक द्रव्य हो गया (तो भी संतोष नहीं हुआ) उसे भी थोड़ा बतलाता है। 'मैं' और 'मेरा' करते हुए जन्मको नष्ट कर रहा है; पर यह सब तभीतक है, जबतक यमराजका फंदा (गलेमें) नहीं पड़ता। धन और जवानीका अभिमान तो थोड़े-से पानी (छोटे गड्ढे) के समान है; अरे मूर्ख ! उसमें अपनी बुद्धि क्यों डुबा दी ? (वहाँ बुद्धि डुबानेसे तो कीचड़ मिलेगा अर्थात् धन-जवानीका अभिमान करके तो पाप ही होगा।) जो मनुष्य अपनी महत्ता देखकर गर्व करता है, उसकी बुद्धि बहुत कम है, वह मूर्ख है। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्का भजन किये बिना तो यहाँसे ऐसे जाना है जैसे फाल्गुनमें होली खेलकर (सब कुछ जलाकर कीचड़से सने) चले जाना है।

[१०५]

बिचारत ही लागे दिन जान।
सजल देह, कागद तैं कोमल, किहिं बिधि राखै प्रान ?
जोग न जग्य, ध्यान नहिं सेवा, संत-संग नहिं ज्ञान।
जिह्वा-स्वाद, इंद्रियनि-कारन, आयु घटति दिन मान॥
और उपाइ नहीं रे बौरे, सुनि तू यह दै कान।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपान॥

विचार करते-करते (असमंजसमें पड़े-पड़े) ही दिन व्यतीत होते जाते हैं। शरीर पानीसे भरा है और कागजसे भी अधिक कोमल है, वह प्राणको किस प्रकार रख सकता है। (शरीर तो नष्ट होगा ही) योग, यज्ञ, भगवान्का ध्यान, भगवान्की सेवा, सत्सङ्ग या ज्ञान (तत्त्वविचार)—कुछ भी नहीं हो रहा है; केवल जीभके स्वाद और इन्द्रियोंकी तृप्तिमें लगकर आयु दिन-दिन करके घटती जा रही है। सूरदासजी कहते हैं—अरे पगले ! कान खोलकर

सुन ले ! दूसरा कोई उपाय नहीं है, अब बड़ी कठिनाई आनेवाली है (मृत्युका समय निकट है) अतः शार्ङ्गपाणि भगवान्‌का भजन कर ले ।

राग केदारौ

[१०६]

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी ।
सीस पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी ॥
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी ।
मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी ॥
नाहिं रही कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी ।
सूरदास अब होत बिगूचनि भजि लै सारँगपानी ॥

अब मैंने समझ लिया कि शरीर वृद्ध हो गया । सिर-पैर-हाथ (आदि अङ्ग) अब कहना नहीं मानते (काम नहीं देते) । शरीरकी (स्वस्थ) दशा समाप्त हो गयी । कहना कुछ चाहता हूँ, पर कहा कुछ जाता है (शब्द भी इच्छानुसार नहीं निकलते) । नेत्र और नाकसे पानी बहता रहता है । सभी अङ्गोंकी चमक-दमक (शोभा) नष्ट हो गयी, बुद्धि और दृष्टि (सोचने और देखनेकी शक्ति) लुप्त हो गयी । तन और मनकी कुछ सुध नहीं रही (प्रायः चेतनाहीन दशा रहने लगी) अपनी सम्हाल भी दूसरेकी बात (दूसरोंपर निर्भर) हो गयी । सूरदासजी कहते हैं कि अब (मृत्युरूप) संकट आना ही चाहता है, अतः शार्ङ्गपाणि भगवान्‌का भजन कर ले ।

राग मलार

[१०७]

अब वे बिपदा हू न रहीं ।
मनसा करि सुमिरत हे जब-जब, मिलते तब तबहीं ॥
अपने दीन दास के हित लगि, फिरते सँग-सँगहीं ॥
लेते राखि पलक गोलक-ज्यौं, संतन तिन सबहीं ॥

रन अरु बन, बिग्रह, डर आगैं, आवत जहीं-तहीं।
राखि लियौ तुमहीं जग-जीवन, त्रासनि तैं सबहीं॥
कृपा-सिंधु की कथा एकरस, क्यौं करि जाति कहीं।
कीजे कहा सूर सुख-संपति, जहँ जदुनाथ नहीं?॥

अब वे (भगवान्‌का स्मरण करानेवाली) विपत्तियाँ भी नहीं रह गयीं। (विपत्तिके समय) जब-जब मनसे स्मरण करता था, तभी-तभी प्रभु मिल जाते थे। अपने दीन सेवकके भलेके लिये (दयामय) साथ-साथ लगे घूमते थे। जैसे पलकें (कोई सङ्कट आते ही तुरंत) नेत्र-पुतलीकी रक्षा करती हैं, वैसे ही प्रभु उन सभी विपत्तियोंसे रक्षा कर लेते थे। रेगिस्तान-उजाड़ और जङ्गलमें, झगड़ेके समय और भी जहाँ-जहाँ भय आगे आता था वहाँ उन सब भयोंसे हे जगत्‌के जीवनस्वरूप प्रभु! तुमने ही रक्षा की। कृपासागर प्रभुकी कथाका एकरस-वर्णन कैसे हो सकता है? सूरदासजी कहते हैं—जहाँ श्रीयदुनाथ नहीं हैं (जिसे पाकर भगवान्‌का स्मरण नहीं रहता है) वह सुख-सम्पत्ति लेकर क्या किया जाय (ऐसी सुख-सम्पत्ति तो व्यर्थ है)।

राग देवगंधार

[१०८]

रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि!
सत जज्ञ नाहिन नाम सम, परतीति करि करि करि॥
हरि-नाम हरिनाकुस बिसारयौ, उठ्यौ बरि बरि बरि।
प्रहलाद हित जिहिं असुर मारयौ, ताहि डरि डरि डरि॥
गज-गीध-गनिका-ब्याध के अघ गए गरि गरि गरि।
रस-चरन-अंबुज बुद्धि-भाजन, लेहि भरि भरि भरि॥
द्रौपदी के लाज कारन, दौरि परि परि परि।
पांडु-सुत के बिघन जेते, गए टरि टरि टरि॥

करन दुरजोधन, दुसासन, सकुनि, अरि अरि अरि ।
अजामिल सुत-नाम लीन्हैं, गए तरि तरि तरि ॥
चारि फल के दानि हैं, प्रभु, रहे फरि फरि फरि ।
सूर श्रीगोपाल हिरदै राखि धरि धरि धरि ॥

अरे मन ! निरन्तर हरि-हरिकी रट लगा दे । यह दृढ़ विश्वास कर ले कि भगवन्नामके समान कोई सात्त्विक यज्ञ नहीं है । हिरण्यकशिपुने हरिनाम-का विस्मरण कर दिया, अतः वह तुरंत भस्म हो गया [मारा गया] । जिस प्रभुने प्रह्लादकी रक्षाके लिये उस असुरको मारा, उस प्रभुसे सदा डरता रह । (भगवान्‌का भजन करनेसे) गजराज, गृध्रराज, जटायु, गणिका और व्याधके पाप तत्काल नष्ट हो गये । इसलिये (प्रभुके) चरणकमलोंका प्रेमरूपी रस अपने बुद्धिरूपी बर्तनमें पूर्णतः भर ले । द्रौपदीकी लज्जारक्षाके लिये प्रभु तत्काल दौड़ पड़े और पाण्डवोंके समस्त विघ्न भी उन्हीं प्रभुकी कृपासे टलते ही गये । कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि आदि पाण्डवोंके न जाने कितने शत्रु मारे गये । अजामिलने पुत्रको पुकारनेके लिये नारायण नाम लिया और उसीसे देखते-देखते मुक्त हो गया । प्रभु चारों फलोंके दाता हैं, वे कल्पवृक्षरूप हैं और चारों पदार्थ फले हुए हैं । सूरदासजी कहते हैं कि श्रीगोपालको निरन्तर हृदयमें धारण किये रह ।

राग केदारौ

[१०९]

रे मन समुझि सोचि-बिचारि ।
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि ॥
धारि पासा साधु-संगति, फेरि रसना-सारि ।
दाउँ अब कैं पर्‌यौ पूरौ, कुमति पिछली हारि ॥
राखि सतरह, सुनि अठारह, चोर पाँचौं मारि ।
डारि दै तू तीनि काने, चतुर चौक निहारि ॥
काम क्रोधरु लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि नारि ।
सूर श्रीगोबिंद-भजन बिनु, चले दोउ कर झारि ॥

अरे मन! सोच, विचार और समझ। वेद पुकारकर (डंकेकी चोट) कह रहे हैं कि भक्ति किये बिना भगवान्‌की प्राप्ति दुर्लभ है। (इस जीवन-रूप चौपड़में) साधुपुरुषोंके सङ्गरूपी पासोंको पकड़ (सत्सङ्ग कर) और जीभरूपी 'सारि' (गोटी) घुमा (भगवन्नामका जप कर)। इस बार पूरा दाव पड़ा है (मनुष्य-जीवनका सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है)। पिछली दुर्बुद्धि (अज्ञानवश किये पहले जन्मोंके दुष्टकर्म) हार जा (उसे नष्ट कर दे) (अष्टाङ्गयोग और नवधा भक्ति इन) सत्रहकी रक्षा कर और अठारह पुराणोंका श्रवण कर। पाँचों ज्ञानेन्द्रियरूप जो चोर हैं (पुण्यरूप धनको हरण करनेवाले हैं) उन्हें मार (उनका दमन कर)। तीन काने पासे (अर्थ, धर्म, और काम जो केवल भोग देनेवाले हैं) उन्हें डाल दे (छोड़ दे) तू चतुर है—अतः चौकको देख (चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्षपर दृष्टि रख)। काम, क्रोध तथा लोभने तुझे मोहित कर लिया (भ्रममें डाल दिया) है और चतुर नारी (माया) ने ठग लिया है। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीगोविन्दका भजन किये बिना (मनुष्य) दोनों हाथ झाड़कर—मनुष्यजन्मरूपी पूँजी भी खोकर जाते (मरते) हैं।

राग सारंग

[११०]

होउ मन, राम-नाम कौ गाहक।
चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक॥
भक्तनि-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-तू, सकल दलाली देहि॥
करि हियाव यह सौंज लादि कै, हरि कैं पुर लै जाहि।
घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि॥
और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि।
सूर स्याम कौ सौदा साँचौ, कह्यौ हमारौ मानि॥

अरे मन ! राम-नामका ग्राहक बन ! जीवोंकी चौरासी लक्ष योनियोंमें तो तू व्यर्थ ही भटकता फिरा । स्थिर होकर भक्तोंके बाजार (सत्संग) में बैठ और श्रीहरि (नाम) रूपी निर्मल रत्न खरीद । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि सब दुर्गुणोंको (उस रत्नकी) दलालीमें दे डाल । हिम्मत कर, यह (हरिनामरूपी रत्नका) माल लादकर श्रीहरिके धामको ले जा । घाटोंपर एवं मार्गोंमें (किसी लोकमें) तुझे कहीं रुकावट नहीं होगी, सभी लोग (सब देवता-लोकपालादि) तेरा निर्वाह कर देंगे (तेरे अनुकूल होकर तुझे भगवान्की ओर जानेमें सहायता देंगे) । दूसरे किसी सौदे (साधन) में लाभ नहीं है, उलटे मूल (आयुरूप धन) में कमी होती है । सूरदासजी कहते हैं कि हमारा कहना मान ! श्यामसुन्दर (के नाम) का ही व्यापार सच्चा है ।

राग केदारौ

[१११]

रे मन, राम सौं करि हेत ।
हरि-भजन की वारि करि लै, उबरै तेरौ खेत ॥
मन सुवा, तन पींजरा, तिहि माँझ राखै चेत ।
काल फिरत बिलार-तनु धरि, अब धरी तिहि लेत ॥
सकल विषय-विकार तजि, तू उतरि सागर सेत ।
सूर भजि गोविंद के गुन, गुर बताए देत ॥

अरे मन ! रामनामसे प्रेम कर । (जीवनरूप खेतके चारों ओर) श्रीहरिके भजनकी बाड़ लगा दे, जिससे तेरा (जीवनरूप) खेत बच जाय । शरीररूपी पिंजड़ेके भीतर मनरूपी तोता है, उस (तोते) के विषयमें हो सावधानी रख (तोतेको सँभाल,) क्योंकि बिल्ली (मृत्यु) का शरीर धारण करके काल घूम रहा है; इसी घड़ी उसे दबोच लेगा । समस्त विषय-विकार (आशा-तृष्णा) को छोड़कर तू भवसागरको (भगवन्नामरूपी) सेतुसे पार कर जा ! सूरदासजी कहते हैं — मैं तुझे यह गुरु (मूल-मन्त्र) बताये देता हूँ कि गोविन्दके गुणोंका भजन (गान, स्मरण) कर ।

राग कान्हरौ

[११२]

मन-बच-क्रम मन, गोबिंद सुधि करि ।
सुचि रुचि सहज समाधि साधि सठ! दीनबंधु करुनामय उर धरि ॥
मिथ्या बाद-बिवाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहि परिहरि ।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तर हरि ॥
बेदनि कह्यौ, सुमृतिहूँ भाष्यौ, पावन पतित नाम निज नरहरि ।
जाकौ सुजस सुनत अरु गावत, जैहै पाप-बृंद भजि भरहरि ॥
परम उदार, स्याम घन सुंदर, सुखदायक, संतत हितकर हरि ।
दीनदयाल, गुपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि ॥
अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यौं घेरि रह्यौ घट घरहरि ।
जब जम-जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि ?
अजहूँ चेति मूढ़, चहुँदिसि तैं उपजी काल-अगिनि झर झरहरि ।
सूर काल बल ब्याल ग्रसत है, श्रीपति-सरन परत किन फरहरि ॥

अरे जीव ! मन, वचन और कर्मसे श्रीगोविन्दकी याद कर । अरे शठ ! पवित्र रुचिसे सहज समाधि सिद्ध करके (सामान्य दशामें भी मन भगवान्‌में लगा रहे, ऐसी एकाग्रताका अभ्यास करके) दीनबन्धु, करुणामय (प्रभु) को हृदयमें धारण कर । झूठे वाद-विवादको छोड़ दे । काम, क्रोध, मद और लोभका परित्याग कर दे । (श्रीहरिके) चरणोंका प्रताप अपने हृदयमें ले आ, संसारके समस्त सुख इस हरि (स्मरण) के सुखसे बहुत नीचे (अत्यन्त तुच्छ) हैं । नररूपमें अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीहरिका नाम पतितोंको (भी) पावन करनेवाला है, यह वेदोंने कहा है और स्मृतियोंने भी समर्थन किया है । जिस (प्रभु) का सुयश सुनते और गाते ही पापोंके समूह भर्राकर(घबराकर)भाग जाते हैं, वे श्रीहरि परम उदार, श्यामघनके समान सुन्दर, सुखके दाता तथा सदा मङ्गल करनेवाले हैं । गोपोंके स्वामी वे दीन-दयाल श्रीगोपाल गुणगान करते ही दयासे द्रवित होकर पास आ जाते हैं ।

इस भवसागरको अत्यन्त भयभीत होकर देख, जो कि मेघके समान घहराता हुआ देहको चारों ओरसे घेरे हुए है। जब यमराज अपना जाल फैलायेंगे, तब श्रीहरिके अतिरिक्त दूसरा कौन (तेरी) सँभाल करेगा। अरे मूर्ख ! अब भी सावधान हो। चारों ओर कालरूपी अग्निकी लपटें उत्पन्न हुई हैं और उनकी ज्वाला बढ़ती जा रही है। सूरदासजी कहते हैं—कालरूपी सर्प (अजगर) बलपूर्वक तुझे निगल रहा है, अतः शीघ्रतापूर्वक श्रीहरिकी शरणमें क्यों नहीं जा पड़ता।

[११३]

तिहारौ कृष्ण कहत कहा जात ?
बिछुरैं मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यौं तरवरके पात ॥
पित्त-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति ! देखत जननी-तात ॥
छन इक माहिं कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात !
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखत ही उड़ि जात ॥
जमकैं फंद पर्‌यो नहिं जब लगि चरननि किन लपटात ?
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥

श्रीकृष्ण कहते (भगवन्नाम लेनेमें) तुम्हारा क्या जाता (क्या हानि होती) है ? (इस मनुष्य-शरीरसे) वियोग होनेपर फिर इससे कब मिलना होगा ? जैसे पेड़से टूटा पत्ता फिर पेड़से नहीं लगता, वही दशा है। अरे मन्दबुद्धि ! (मृत्युके समय) पित्त, वात और कफ (के प्रकोप) से कण्ठ रुद्ध हो जायगा, वाणीसे शब्द कहा नहीं जा सकेगा, पिता और माताके देखते हुए यमराज प्राणोंको ले जायँगे। भगवान्‌के एक क्षणमें सृष्टिके करोड़ों युग बीत जाते हैं (ब्रह्माण्डकी अनेकों बार सृष्टि और प्रलय हो जाते हैं), फिर मनुष्य (के जीवन) की तो बात ही कितनी है (वह तो अत्यल्प है) ! इस संसारका प्रेम तो वैसा ही है, जैसे तोता सेमरके फलसे

प्रेम करे, जिसकी रूई चखते (चोंच मारते) ही उड़ जाती है। (संसारके सुख भी उसी प्रकार सारहीन और नश्वर हैं।) जबतक यमराजके फंदेमें नहीं पड़ा है (मृत्यु नहीं आ जाती)। इसी बीचमें प्रभुके चरणोंमें क्यों लिपट नहीं जाता (उन चरणोंसे अनुराग क्यों नहीं कर लेता) सूरदासजी कहते हैं—यह शरीर तो व्यर्थ है, इसपर इतना गर्व क्यों करता है।

राग केदारौ

[११४]

हरि की सरन महँ तू आउ।
काम-क्रोध-विषाद-तृष्ना, सकल जारि बहाउ॥
काम कैं बस जो परै, जमपुरी ताकौं त्रास।
ताहि निसि-दिन जपत रहि, जो सकल-जीव-निवास॥
कहत यह विधि भली तोसौं, जौ तू छाड़ै देहि।
सूर स्याम सहाइ हैं तौ आठहू सिधि लेहि॥

तू श्रीहरिकी शरणमें आ जा। काम, क्रोध, शोक और तृष्णा आदि सभी दोषोंको जलाकर बहा दे (सर्वथा दूर कर दे)। जो भी कामके वशमें हुआ उसे यमपुरी (नरक) में यातना मिलेगी ही। तू रात-दिन उसका जप करता रह, जो सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त है (या सम्पूर्ण जीव जिसमें निवास कर रहे हैं)। सूरदासजी कहते हैं कि यह उत्तम विधि तुझसे कह रहा हूँ—यदि तू इस प्रकार (भगवान्‌का स्मरण करते हुए) शरीर त्याग करेगा तो श्यामसुन्दर तेरे सहायक होंगे, आठों सिद्धियाँ तुझे प्राप्त होंगी।

राग कान्हरौ

[११५]

दिन दस लेहि गोविंद गाइ।
छिन न चितत चरन-अंबुज, बादि जीवन जाइ॥

दूरि जब लौं जरा रोग रु चलति इंद्री भाइ।
आपुनौ कल्यान करि लै, मानुषी तन पाइ॥
रूप जोबन सकल मिथ्या, देखि जनि गरवाइ।
ऐसेहीं अभिमान-आलस, काल ग्रसिहै आइ॥
कूप खनि कत जाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ।
सूर हरि कौ भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ॥

(अरे मन!) दस दिन (जीवनके शेष समयमें) तो श्रीगोविन्दका गान कर लो। एक क्षण भी (प्रभुके) चरणकमलोंका चिन्तन नहीं करते, यह जीवन व्यर्थ बीता जा रहा है। हे भाई! जबतक बुढ़ापा और रोग दूर हैं तथा इन्द्रियाँ काम करती हैं, यह मनुष्य-शरीर पाकर तभीतक अपना कल्याण कर लो। सुन्दर रूप, जवानी (सम्पत्ति आदि) सब मिथ्या (झूठे प्रलोभन) हैं; इन्हें देखकर गर्व मत करो। इसी प्रकार अभिमान तथा आलस्यमें पड़े-पड़े ही तुम्हें मृत्यु आकर अपना ग्रास बना लेगी। अरे मनुष्य! जब घर जल रहा हो, तब उसे बुझानेके लिये कुआँ कैसे खोदा जा सकता है (मृत्यु आ जानेपर फिर भजन कैसे हो सकता है)? सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिका भजन कर लो, जिससे जन्म-मरणका अन्त हो जाय (फिर जन्म-मरणके चक्रमें न आना पड़े)।

राग केदारौ

[११६]

दिन द्वै लेहु गोविंद गाइ।
मोह-माया-लोभ लागे, काल घेरै आइ॥
बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद, लागि बाइ बिलाइ।
यहै तन-गति जनम झूठौ, स्वान-काग न खाइ॥
कर्म-कागद बाँचि देखौ, जौ न मन पतियाइ।
अखिल लोकनि भटकि आयौ, लिख्यौ मेटि न जाइ॥

सुरति के दस द्वार रूँधे, जरा घेर्‌यौ आइ ।
सूर हरि की भक्ति कीन्हैं, जन्म-पातक जाइ ॥

दो दिन (कुछ समय) श्रीगोविन्दका गान कर लो । मोह, माया और लोभमें लगे हुए ही तुम्हें काल आकर घेर लेगा । जैसे पानीमें बुलबुला उठता है और हवा लगते ही फूट जाता है, वही इस शरीरकी दशा है । यह जन्म (देह) झूठा (नश्वर) है, कुत्ते और कौए भी इसे नहीं खाते हैं । यदि तुम्हारे मनमें विश्वास न हो तो कर्मरूपी कागजको पढ़कर देख लो । समस्त लोकोंमें भटक आये; किंतु भाग्यमें जो लिखा है, वह मिटाया नहीं जा सकता । सूरदासजी कहते हैं—बुढ़ापेने आकर (देहको) घेर लिया और चेतनाके दसों दरवाजे बंद कर दिये (दसों इन्द्रियाँ बेकार हो गयीं), श्रीहरिकी भक्ति करनेसे इसी जन्मका नहीं, जन्म-जन्मान्तरका पाप नष्ट हो जायगा ।

राग धनाश्री

[११७]

मन, तोसौं किती कही समुझाइ ।
नंद-नँदनके चरन-कमल भजि, तजि पाखँड-चतुराइ ॥
सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, छूटै सब समुदाइ ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिं सँग जाइ ॥
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ ।
सूरदास, भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ॥

अरे मन ! तुझसे कितनी बार समझाकर कहा कि श्रीनन्दनन्दनके चरण-कमलोंका भजन कर और पाखण्ड-चातुरी (दम्भ करनेकी धूर्तता) छोड़ दे । सुख-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, हाथी-घोड़े और संसारका सभी समुदाय यहीं छूट जायगा । यह सब एक क्षणमें नाश होनेवाला है । श्यामसुन्दर-(के भजन) को छोड़कर दूसरा कोई अन्त समयमें साथ नहीं जायगा ।

जन्म लेते और मरते अनेकों युग बीत गये, पर (तुझे) अब भी लज्जा नहीं आती ? सूरदासजी कहते हैं——भगवान्‌का भजन किये बिना (तू) इस (मनुष्य) जन्मको भी खोकर चला जायगा।

राग मलार

[११८]

अब मन, मानि धौं राम दुहाई।
मन-बच-क्रम हरि-नाम हृदय-धरि, ज्यौं गुरु-बेद बताई॥
महा कष्ट दस मास गर्भ बसि, अधोमुख-सीस रहाई।
इतनी कठिन सही तैं केतिक, अजहुँ न तू समुझाई ! ॥
मिटि गए राग-द्वेष सब तिन के, जिन हरि प्रीति लगाई।
सूरदास प्रभु-नाम की महिमा, पतित परम गति पाई॥

अरे जीव ! अब मान जा, तुझे श्रीरामकी शपथ है। जैसे गुरु और वेदने बताया है, वैसे ही मन, वाणी और कर्मसे श्रीहरिके नामको (सच्चे) हृदयसे धारण कर। दस महीनेतक गर्भवासके समय नीचे मुख और सिर करके तू महाकष्टमें रहा और ऐसी कठिनाइयाँ तुझपर पता नहीं कितनी पड़ीं, पर अब भी तू समझता नहीं। जिन्होंने श्रीहरिसे प्रेम किया, उनके राग-द्वेष आदि सब दोष दूर हो गये। सूरदासजी कहते हैं—प्रभुके नामकी यही महिमा है कि उसके द्वारा पतितोंने भी परम गति (मोक्ष) प्राप्त की।

राग आसावरी

[११९]

बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौ।
धन-दारा-सुत-बंधु-कुटुँब, कुल, निरखि निरखि बौरान्यौ॥
जीवन जन्म अल्प सपनौ सौ, समुझि देखि मन माहीं।
बादर छाहँ, धूप-धौराहर, जैसे थिर न रहाहीं॥

जब लगि डोलत, बोलत, चितवत, धन-दारा हैं तेरे।
निकसत हंस, प्रेत कहि तजि हैं, कोउ न आवैं नेरे॥
मूरख, मुग्ध, अजान, मूढ़मति, नाहीं कोऊ तेरौ।
जो कोऊ तेरौ हितकारी, सो कहै काढ़ि सवेरौ॥
घरि एक सजन-कुटुँब मिलि बैठें, रुदन बिलाप कराहीं।
जैसैं कागकाग के मूएँ, काँ-काँ करि उड़ि जाहीं॥
कृमि-पावक तेरौ तन भखिहैं, समुझि देखि मन माहीं।
दीन-दयाल सूर हरि भजि लै, यह औसर फिरि नाहीं॥

पगले मन! (संसारमें) (अपनी) स्थिति (तूने) अटल समझ ली है? (जो) सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भाई, कुटुम्बीजन और कुल आदिको देखकर पागल (गर्वमत्त) हो रहे हो। मनमें यह समझ देखो कि यह जीवन—यह मनुष्य-जन्म स्वप्नके समान थोड़ी देरका है। जैसे बादलकी छाया तथा धुएँसे बने महल स्थिर नहीं रहते, वैसे ही जीवन भी स्थिर नहीं रहेगा। जबतक चलता-फिरता है, बातचीत करता है, देखता है, तभीतक स्त्री और पुत्र तेरे हैं (तुझसे स्नेह करते हैं)। प्राण निकल जानेपर (वे ही) प्रेत कहकर (तुझे) छोड़ देंगे, कोई पास (भी) नहीं आयेगा। अरे मूर्ख! मोहित! अज्ञानी! मन्दबुद्धि! (संसारमें) कोई तेरा नहीं है। (आज) जो कोई तेरा हित करनेवाला है, वही (मरनेपर) कहेगा–(इसे घरसे) जल्दी निकाल दो। आत्मीय एवं कुटुम्बके लोग एक घड़ी एकत्र होकर बैठते हैं और रोते हैं—विलाप करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे किसी कौएके मर जानेपर दूसरे कौए (वहाँ एकत्र होकर कुछ देर) 'काँव-काँव' करते हैं और फिर उड़ जाते हैं। (यदि गाड़ा गया तो) कीड़े अथवा (जलाया गया तो) अग्नि तेरे शरीरको खा जायगा, यह मनमें समझ देख। सूरदासजी कहते हैं—(मनुष्य-जन्मरूप) यह सुअवसर फिर नहीं मिलनेका; अतः दीनोंपर दया करनेवाले श्रीहरिका भजन कर ले।

राग गौरी

[१२०]

ते दिन बिसरि गए इहाँ आए ।
अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए ॥
जिन दिवसनि तैं जननि-जठर मैं रहत बहुत दुख पाए ।
अति संकट मैं भरत भँटा लौं, मल मैं मूँड़ गड़ाए ॥
बुधि बिबेक-बल-हीन छीन-तन, सबही हाथ पराए ।
तब धौं कौन साथ रहि तेरैं, खान-पान पहुँचाए ॥
तिहिं न करत चित अधम अजहुँ लौं जीवत जाकैं ज्याए ।
सूर सो मृग ज्यौं बान सहत नित, बिषय ब्याध कैं गाए ॥

जब इस संसारमें आये थे, वे दिन (तुम्हें) भूल गये, जिन दिनों माताके गर्भमें रहते हुए तुमने बहुत दुःख पाये थे ? तभी तो अत्यन्त उन्मत्त होकर मोह और मदमें छके (चूर) हुए, केश फैलाये (अस्तव्यस्त) घूम रहे हो । भाड़में भुनते हुए बैगनके समान (तुम थे), मलमें सिर गड़ा था और बड़े संकटमें थे । बुद्धि-विचार और बलसे रहित अत्यन्त दुर्बल शरीर था (भरण-पोषण-रक्षण) । सभी कुछ दूसरेके हाथमें था । सोचो, उस समय कौन तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें भोजन-पानी पहुँचाया करता था ? अरे अधम ! जिसके जिलानेसे ही अब भी जी रहा है, उसमें चित्त नहीं लगाता । सूरदासजी कहते हैं—इसीसे विषयरूपी व्याधके गानपर मोहित मृगके समान नित्य (कालका) बाण सहता है ।

राग धनाश्री

[१२१]

रे मन, निपट निलज अनीति ।
जियत की कहि को चलावै, मरत बिषयनि प्रीति ॥
स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-बिहीन ।
भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन ॥

निकट आयुध बधिक धारे, करत तीच्छन धार।
अजा-नायक मगन क्रीड़त, चरत बारंबार॥
देह छिन-छिन होति छीनी, दृष्टि देखत लोग।
सूर स्वामी सौं बिमुख ह्वै, सती कैसैं भोग ?॥

अरे मन ! तू अत्यन्त निर्लज्ज और अनीति करनेवाला है। तेरी जीवित दशाकी (अन्यायकी) क्या चर्चा की जाय, (तू तो) मरते समय भी विषयोंसे प्रेम करता है। कुबड़ा, बुरी तरह पंगु (पैरोंसे घसीटते चलनेवाला), काना तथा कान और पूँछसे रहित कुत्ता, जिसके गलेमें फूटी हँड़ियाका मुख झूल रहा है, सिरमें कीड़े पड़ गये हैं, वह भी कुतियाके वश होकर उसके पीछे लगा रहता है। पास ही कसाई हाथमें शस्त्र लिये खड़ा है और शस्त्रकी धार (वध करनेके लिये) तेज़ कर रहा है, परन्तु बकरा मग्न होकर खेलता (उछल-कूद करता) और बार-बार (तृण) चरता है। (तेरी भी दशा ऐसे कुत्ते और बकरेकी-सी है।) सब लोग यह आँखोंसे (प्रत्यक्ष) देख रहे हैं कि शरीर प्रत्येक क्षण क्षीण होता जा रहा है (फिर भी कोई सावधान नहीं होता) ? सूरदासजी कहते हैं कि सती स्त्री स्वामीसे विमुख होकर भोगोंको कैसे भोग सकती है (सच्चा भक्त भगवान्से विमुख होकर संसारके भोगोंमें लग कैसे सकता है !)।

राग गौरी

[१२२]

बौरे मन, समुझि-समुझि कछु चेत।
इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत।
तब लगि सेवा करि निस्चय सौं, जब लगि हरियर खेत॥
सूरदास भरम जनि भूलौ, करि बिधना सौं हेत॥

पगले मन ! बार-बार विचार कर और सावधान हो। इतना जीवन (तूने) व्यर्थ खो दिया और अब काले केश सफेद हो गये (बुढ़ापा

आ गया)। निश्चयपूर्वक तबतक (भगवान्‌की) सेवा (भजन) कर ले, जबतक खेत हरा है (शरीरमें शक्ति है)। सूरदासजी कहते हैं—भ्रम (अज्ञान) में भूल मत ! विश्वके संचालक (जगदीश्वर) से प्रेम कर।

राग धनाश्री

[१२३]

रे सठ, बिनु गोबिंद सुख नाहीं।
तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं, रिधि-सिधि-फिरि-फिरि जाहीं॥
सिव, बिरंचि, सनकादिक मुनिजन इनकी गति अवगाहीं।
जगत-पिता जगदीस सरन बिनु, सुख तीनौं पुर नाहीं॥
और सकल मैं देखे ढूँढ़े, बादर की सी छाहीं।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, दुख कबहूँ नहिं जाहीं॥

अरे शठ ! गोविन्दके बिना (कहीं) सुख नहीं है। तेरा दुःख दूर करनेके लिये ऋद्धि-सिद्धि बार-बार लौट जाती हैं (वे दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं होतीं)। शिव, ब्रह्मा, सनकादि मुनिगण—इन सबकी पहुँचकी थाह ले ली गयी है (इनकी शक्ति जानी-बूझी है, ये दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं) जगत्पिता श्रीजगदीश्वरके आश्रयको छोड़कर त्रिलोकीमें कहीं सुख नहीं है। दूसरे सभी (देवादि) को मैंने देखा और ढूँढ़ा (सबके सम्बन्ध-में विचार किया), किंतु (सब) बादलकी छायाके समान (बहुत थोड़े समयके लिये ही सुख देनेवाले) हैं। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान्‌का भजन किये बिना दुःख कभी नष्ट नहीं हो सकते।

राग कान्हरौ

[१२४]

मन, तोसौं कोटिक बार कही।
समुझि न चरन गहे गोबिंद के, उर अघ-सूल सही॥

सुमिरन, ध्यान, कथा हरिजू की, यह एकौ न रही।
लोभी, लंपट, विषयिनि सौं हित, यौं तेरी निवही॥
छाँड़ि कनक-मनि रतन अमोलक, काँच की किरच गही।
ऐसौ तू है चतुर विवेकी, पय तजि पियत मही॥
ब्रह्मादिक, रुद्रादिक, रवि, ससि, देखे सुर सबही।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, सुख तिहुँ लोक नहीं॥

अरे मन! तुझसे करोड़ों बार कहा; किंतु समझकर (विचार करके) तू श्रीगोविन्दके श्रीचरणोंको नहीं पकड़ा (भगवान्‌की शरण नहीं ली)। इसीसे हृदयपर पापके शूल सहता है (भगवान्‌की शरण लेनेपर पाप हृदय-पर चोट नहीं कर सकेगा)। श्रीहरिका स्मरण, ध्यान, कथा आदिमेंसे एक भी (भक्ति) तुझमें नहीं रही। लोभी, लम्पट, संसारके विषयभोगोंमें अनुरक्त लोगोंसे प्रेम करते हुए ही तेरा समय अबतक गया है (भगवद्-भजनरूपी) अमूल्य स्वर्णमणि (पारस) जैसे रत्नको छोड़कर तूने (विषयरूपी) काँचकी किरच (चुभनेवाली दुःखदायी शूल) पकड़ ली है। तू ऐसा चतुर और विचारवान् है कि दूधको छोड़कर मट्ठा पीता है! ब्रह्मादि, रुद्रादि सभी देवता तथा सूर्य-चन्द्र (आदि सभी ग्रह) देख लिये (सबकी महत्ताका अनुभव कर लिया) सूरदासजी कहते हैं कि भगवान्‌का भजन किये बिना तीनों लोकोंमें सुख नहीं है।

राग परज

[१२५]

मन रे, माधव सौं करि प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ तू, छाँड़ि सबै विपरीत॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै, (रे) मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप॥
सुनि परमिति पिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि॥

देखौ करनी कमल की, (रे) कीन्हौ रवि सौं हेत।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, (रे) सूख्यौ सलिल समेत॥
दीपक पीर न जानई, (रे) पावक परत पतंग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, (पै) चित न भयौ रस-भंग॥
मीन वियोग न सहि सकै, (रे) नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, (रे) रति न घटै तन जात॥
परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, (रे) स्रवननि राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पछमनौ, (रे) सर सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि, जड़, नारि की, (रे) जरति प्रेम के संग।
चिता न चित फीकौ भयौ, (रे) रची जु पिय कैं रंग॥
लोक-वेद बरजत सबै, (रे) देखत नैननि त्रास।
चोर न चित चोरी तजै, (रे) सरवस सहै विनास॥
सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) विषयी खेलै सार।
तन-मन-धन जोवन खसै, (रे) तऊ न मानै हार॥
तैं जो रतन पायौ भलौ, (रे) जान्यौ साधि न साज।
प्रेम कथा अनुदिन सुनै, (रे) तऊ न उपजै लाज॥
सदा सँघाती आपनौ, (रे) जिय कौ जीवन प्रान।
सु तैं विसार्‌यौ सहज हीं, (रे) हरि, ईस्वर, भगवान॥
वेद, पुरान, सुमृति सबै, (रे) सुर-नर सेवत जाहि।
महा मूढ़ अज्ञान मति, (रे) क्यौं न सँभारत ताहि॥
खग-मृग-मीन पतंग लौं, (रे) मैं सोधे सब ठौर।
जल-थल-जीव जिते तिते, (रे) कहाँ कहाँ लगि और॥
प्रभु पूरन पावन सखा, (रे) प्राननि हू कौ नाथ।
परम दयालु कृपालु है, (रे) जीवन जाकैं हाथ॥

गर्भ-बास अति त्रास मैं, (रे) जहाँ न एकौ अंग।
सुनि सठ, तेरौ प्रानपति, (रे) तहँउ न छाँड्यौ संग।
दिन-राती पोषत रह्यौ, (रे) जैसैं चोलो पान।
वा दुख तैं तोहि काढ़ि कै, (रे) लै दीनौ, पय-पान।
जिन जड़ तैं चेतन कियौ, (रे) रचि गुन तत्त्व-विधान।
चरन, चिकुर, कर, नख, दए, (रे) नयन, नासिका, कान॥
असन, बसन बहुविधि दए, (रे) औसर औसर आनि।
मातु-पिता-भैया मिले, (रे) नइ रुचि नइ पहिचानि॥
सजन कुटुँब परिजन बढ़े, (रे) सुत दारा धन धाम।
महामूढ़ विषयी भयो, (रे) चित आकर्ष्यौ काम॥
खान-पान-परिधान मैं, (रे) जोबन गयौ सब बीति।
ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ, (रे) भोर भएँ भइ भीति॥
जैसैं सुखहां तन बढ़्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग।
धूम बढ़्यौ, लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझ्यो संग॥
जम जान्यौ, सब जग सुन्यौ, (रे) बाढ़्यौ अजस अपार।
बीच न काहूँ तव कियौ, (जब) दूतनि दीन्हीं मार॥
कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसैं कुमति कुमीच।
हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच!
जौ पै जिय लज्जा नहीं, (रे) कहा कहौं सौ बार?
एकहु आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, सूर गँवार॥

अरे मन! माधवसे प्रेम कर। तू काम, क्रोध, मद, लोभ और (भक्तिके) विपरीत सभी आचरण छोड़ दे। (प्रेम कैसे करना चाहिये यह इस प्रकार सीख—) पुष्पोंके रसका उपभोग करनेवाला भौंरा वन-वनमें घूमता है; परंतु न तो कहीं प्रसन्न होता, न कहीं दुखी होता। सभी पुष्पोंपर बैठकर उनका रस लेता है; किंतु कमलमें स्वयंको बन्धनमें डाल

देता (कमल बंद होते समय स्वयं उसमें बंद हो जाता) है। (इसी प्रकार तू संसारके पदार्थोंका व्यवहार राग-द्वेषरहित होकर कर। सुखमें हर्षित और दुःखमें दुःखित मत हो, केवल श्रीहरिके चरणोंमें बँधा रह, वहीं प्रेम कर।) प्रियतमसे प्रेमकी सीमा (आदर्श) क्या है, इसे सुन ! चातकके समान प्रियतमकी ओर देखनेका व्रत पाल। (चातक) मेघकी आशासे सब दुःख सहता है, मेघको छोड़कर अन्यत्र कहींसे जल नहीं मागता (इसी प्रकार तू एकमात्र श्रीहरिसे ही आशा कर)। कमलका कार्य देखो, उसने सूर्यसे प्रेम किया है। (सूर्यके तापसे) जलके साथ ही वह सूख गया, प्राण छोड़ दिये उसने; परंतु (सूर्यसे) प्रेम करना नहीं छोड़ा। (दीपककी लौरूप) अग्निमें फतिंगा पड़ता है, परंतु दीपक उसकी पीड़ा नहीं समझता। (किंतु फतिंगेको दीपकके भावका विचार नहीं होता।) उसका शरीर दीपककी ज्वालासे जल जाता है; परंतु उसके चित्तमें प्रेमका जो रस है, वह भंग नहीं होता। यद्यपि पानी मछलीकी कोई बात नहीं पूछता (मछलीकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता), किंतु मछली पानीका वियोग नहीं सह पाती। शरीर छूटते समय भी उसका प्रेम कम नहीं होता। मछलीकी (प्रेमपूर्ण) गतिको देख (उससे शिक्षा ले) प्रेमकी टेक (पूर्ण प्रेम) कबूतरमें है, वह बड़े उत्साहसे आकाशमें ऊपर उड़ जाता है; किंतु यदि ऊपर चढ़कर उसे अपनी स्त्री (कबूतरी नीचे) दिखायी पड़ जाय तो (सीधे) श्वास रोककर पृथ्वीपर गिरता है। हरिणके प्रेमका स्मरण कर (वह संगीतका प्रेमी है); उसके कानोंकी संगीतसे प्रीति है (स्वरकी मस्तीमें व्याधको देखकर भी) वह पीछे पैर नहीं रख सकता (भाग नहीं सकता)। (व्याधका) बाण उसको सामनेसे छातीमें ही लगता है। अरे मूर्ख ! अपने प्रियतम पतिके प्रेममें पगी (पतिव्रता) स्त्रीके जलनेको देख, वह प्रेमके संग (प्रेमके कारण) जलती है। चितापर बैठकर भी उसके चित्तका उत्साह मन्द नहीं पड़ता। (चोरी करनेको) लोक-मर्यादा और वेदादि सब शास्त्र मना करते हैं, (चोरीका काम) आँखोंसे देखनेपर डर लगाता है (प्रत्यक्षमें भी चोरीका काम भयदायक है); किंतु (जिसका

चोरीसे प्रेम है, ऐसा) चोर अपने हृदयसे चोरी नहीं छोड़ता (भले विव
होकर चोरी कर न सके)। इसके पीछे वह अपने सर्वस्वका विनाश भी स
लेता है। सभी रसोंमें जो स्वाद है, वह प्रेमका ही स्वाद है। विषयी लो
(विषयभोगरूपी) जुआ खेलते हैं, (उस जुएमें उनका) शरीर, मन, ध
और यौवन नष्ट हो जाता है, फिर भी वे पराजय नहीं मानते (विषयोंका सेव
छोड़ते नहीं)। तूने (मनुष्यजन्मरूपी) अनमोल रत्न पाया; किंतु उस
साजको साधना (उसका उपयोग करना) तूने नहीं जाना। अरे, प्रतिदि
प्रेमकी कथा सुनता है; फिर भी (अपनी प्रेमहीनतापर) लज्जा नहीं उत्प
होती! जो सदा अपने साथ रहनेवाले हैं, जीवनके भी परम जीवन-प्राणस्वरू
हैं, उन सबके स्वामी (ईश्वर), सकल ऐश्वर्यसम्पन्न (भगवान्) श्रीहरि
तूने सहज ही भुला दिया। सभी वेद, पुराण, स्मृतियाँ, देवता और मनु
जिसकी सेवा करते हैं, अरे अज्ञानी महामूर्ख! उसे क्यों नहीं सँभाल
(उसका स्मरण क्यों नहीं करता)? पक्षी (गगनचर) मृग (स्थलच
पशु), मछलियाँ (जलचर), फतिंगे (भूमिके भीतर रहनेवाले कृमि) आ
जल-स्थलके जितने जीव हैं, सबको सब स्थानोंमें मैंने खोज देखा; अधि
कहाँतक कहूँ, सबमें प्रभु ही पूर्ण (व्यापक) हैं। वे ही [सबके] पर
पावन मित्र (सच्चे हितैषी) हैं, वे ही प्राणोंके भी स्वामी हैं। जीवन जिन
हाथमें है, वे प्रभु परम दयालु एवं कृपालु हैं। अरे मूर्ख! सुन! गर्भवास
समय जब तू अत्यन्त संकटमें था, जहाँ तेरा एक भी अङ्ग (बना) नहीं थ
वहाँ भी तेरे प्राणोंके उस स्वामीने तेरा साथ नहीं छोड़ा (वहाँ भी तेरी र
करता रहा)। जैसे पानकी खेती करनेवाले सदा पानका पालन करते
वैसे ही दिन-रात (गर्भमें) प्रभु तेरा पोषण करते रहे और (गर्भके) अ
दुःखसे तुझे निकालकर पीनेके लिये (माताका) दूध दिया। जिस प्र
(सत्त्व, रज, तमरूप) गुण और पञ्चतत्त्वका विधान (सृष्टिरचना) क
तुझे जड़से चेतन बनाया। पैर, बाल, हाथ, नख, नाक, नेत्र, कान आदि अ
दिये; समय-समयपर लाकर बहुत प्रकारके भोजन-वस्त्र दिये; (तेरी) नवी
नवीन रुचियाँ पहचानकर (उनके अनुसार) माता, पिता, भाई मिल

(जिसकी कृपासे) स्वजन, कुटुम्बी, सेवक आदि बढ़े; पुत्र, स्त्री, सम्पत्ति, भवन आदि प्राप्त हुआ, (उसे भूलकर) अरे महामूर्ख ! तू विषयासक्त बन गया; तेरे मनको कामने आकर्षित कर लिया। खाने-पीने-पहननेमें ही युवावस्था बीत गयी। जैसे दुराचारी पुरुष परस्त्रीके साथ रात्रिमें रहे और सबेरा हो जानेपर उसे भय लगे (वैसे ही मायारूपी परस्त्रीमें अनुरक्त होकर जीवन-रूपी रात्रि तूने व्यतीत कर दी और मृत्युका महाभयदायक सबेरा पास आ गया)। जैसे-जैसे सुखपूर्वक शरीर पुष्ट होता गया, वैसे-ही-वैसे शरीरमें काम (सांसारिक इच्छाएँ) भी बढ़ता गया, अज्ञानरूपी धुआँ बढ़ता गया, विचार-रूपी दृष्टि-शक्ति नष्ट हो गयी, तुझे सदा साथ रहनेवाला तेरा मित्र (सच्चे हितैषी प्रभु) दीख नहीं पड़ा। यमराजने (तेरा कुकर्म) जान लिया, सारे संसारने उसे सुना, इससे तेरा अपार अयश फैला और (मृत्युके समय) जब यमदूतोंने मारना प्रारम्भ किया, तब किसीने (किसी पुण्यकर्मने) बीच-बचाव (रक्षा) नहीं की। अरे कुबुद्धि ! पता नहीं, कितनी बार तू इस प्रकार बुरी मृत्युसे मरा है। (फिर भी अरे) नीच ! (तू) श्रीहरिके प्रेमका विस्मरण करके सुख चाहता है ? सूरदासजी कहते हैं—अरे शठ, मूर्ख (मन) ! यदि तेरे हृदयमें लज्जा नहीं है तो सौ बार क्या कहूँ; (तूने) एक भी प्रकारसे (तनिक भी) श्रीहरिका भजन नहीं किया।

राग कल्याण

[१२६]

धोखैं ही धोखैं डहकायौ।
समुझि न परी, बिषय-रस गोध्यौ, हरि हीरा घर माँझ गँवायौ॥
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ॥
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायौ।
रीतो पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरो आयौ॥
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कौ चौहटैं नचायौ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, काल-ब्याल पै आपु डसायौ॥

धोखे-ही-धोखे (अज्ञान) में मैं ठगा गया। विषय-सुखसे परका होनेके कारण विचार-शक्ति नहीं रही, श्रीहरि (भजन) रूपी हीरा मैंने घरमें (संसारमें आसक्त होकर) खो दिया। जैसे हिरन मरुभूमिमें सूर्यकी किरणोंमें (भ्रमसे) प्रतीत होते पानीको देखकर चारों ओर दौड़ता है, परन्तु प्यास नहीं निवृत्त होती (वैसे ही अज्ञानवश विषयोंमें सुख मानकर भटकता रहा, परंतु तृप्ति नहीं हुई)। अनेक जन्मोंमें बहुत-से कर्म किये और उन कर्मों (के बन्धन) में अपने-आप ही बँध गया। जैसे तोता (मीठे फलकी आशासे) सेमरका सेवन करे, वैसे ही (सुखकी आशासे सारहीन सांसारिक विषयोंमें) रात-दिन चित्तको लगाये रहा; लेकिन जब (तोतेने सेमरके) फलको चखा (उसमें चोंच मारी) तो प्रयत्न खाली गया, फलकी रूई उड़ गयी; (तोतेको मारे दुःखके) मूर्च्छा आ गयी। (इसी प्रकार जब पदार्थ मिले, तब उनके उपभोगमें भी कोई सुख नहीं मिला। उनमें कोई सारतत्त्व नहीं था। उनकी मोहकता भी नष्ट हो गयी। निराशा और दुःख ही हाथ लगा।) जैसे बाजीगर बंदरको रस्सीसे बाँधकर दाने-दानेके लिये चौराहोंपर नचाया करता है (वैसे ही कामने भोगोंकी इच्छासे वासनाकी रस्सीमें बाँधकर जीवको नाना योनियोंमें भटकाया है)। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान्‌के भजन बिना मैंने स्वयं ही कालरूपी सर्पसे अपने-आपको दंशित कराया है (मृत्युके मुखमें जान-बूझकर पड़ा हूँ)।

राग बिलावल

[१२७]

धोखैं ही धोखैं बहुत बह्यौ।
मैं जान्यौ सब संग चलैगौ, जहँ कौ तहाँ रह्यौ॥
तीरथ गवन कियौ नहिं कबहूँ, चलतहिं चलत दह्यौ।
सूरदास सठ तब हरि सुमिर्‌यौ, जब कफ कंठ गह्यौ॥

धोखे-ही-धोखे (अज्ञानवश) बहुत बह गया (अपना बहुत पतन कर लिया)। मैं तो समझता था कि (संसारके सम्बन्धी, सुख-सम्पत्ति

आदि) सब (परलोकमें) साथ चलेंगे (वहाँ भी ये प्राप्त होंगे); लेकिन जो जहाँ था, वहीं रह गया । यद्यपि चलते-चलते (जीवनमें दौड़-धूप करते हुए ही) जल गया । (चितातक पहुँच गया); परंतु कभी तीर्थयात्रा नहीं की । सूरदासजी कहते हैं—अरे शठ (मन) ! तब श्रीहरिका स्मरण किया है (तब स्मरणकी इच्छा की है) जब कफने कण्ठ पकड़ लिया है (जब मृत्युके समय कफसे कण्ठ रुक जानेके कारण स्मरण-जप हो ही नहीं सकता) !

राग धनाश्री

[१२८]

जनम गँवायौ ऊआबाई ।
भजे न चरन-कमल जदुपति के, रह्यौ बिलोकत छाईं ॥
धन-जोबन-मद ऐंड़ौ-ऐंड़ौ ताकत नारि पराई ।
लालच लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, सोऊ हाथ न आई ॥
रंच काँच सुख लागि मूढ़-मति कंचन रासि गँवाई ।
सूरदास प्रभु छाँड़ि सुधा रस, बिषय परम बिष खाई ॥

(मैंने) उधेड़-बुनमें ही जीवन नष्ट कर दिया । श्रीयदुपति (श्रीकृष्णचन्द्र) के चरणकमलका भजन नहीं किया, राख देखते (शरीरके मोहमें पड़े) ही रह गया । धन और जवानीके मदसे ऐंठता-ऐंठता (गर्वमें भरा) परस्त्रीको इस प्रकार देखता (परस्त्रियोंके प्रति दुर्भावना करता) रहा, जैसे कुत्ता लालचसे लुब्ध होकर जूठे (अन्न) को देखता है; किंतु वह भी मिली नहीं । अरे मन्दबुद्धि ! (तूने) थोड़े-से काँच-जैसे (सारहीन सांसारिक) सुखके लिये (परमानन्दरूप) सोनेकी ढेरी खो दी । सूरदासजी कहते हैं कि अमृतरसके समान प्रभु (के भजन) को छोड़कर विषयरूपी घोर विष खाता है ।

[१२९]

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलतहीं खोयौ, तरुनाई गरबानौ॥
बहुत प्रपंच किये माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन-जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ॥
सुत-बित-बनिता प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकानौ॥
बिरध भएँ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि-धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु जम कैं हाथ बिकानौ॥

जन्म तो बीत गया, भक्ति कब करोगे ? बाल्यकाल खेल-ही-खेलमें नष्ट कर दिया और युवावस्थामें गर्वसे भर गया। धनके लिये अनेक छल-प्रपञ्च किये, अरे अधम ! इतनेपर भी तेरी तृप्ति नहीं हुई ? नाना प्रकारके प्रयत्नोंसे एकत्र किये धनको न तो कोई दरिद्र अपने साथ ले गया न राजा ही। (तू) पुत्र, धन, स्त्री आदिमें प्रीति करके झूठे (व्यर्थ) ही भ्रम (अज्ञान) में भुला रहा है। जैसे कोई स्वप्न देखता हो, वैसे ही लोभ-मोहके कारण तू सावधान नहीं हुआ और (मायाके द्वारा) ठगा गया। वृद्ध होनेपर गलेको कफने रोक लिया, अब सिर पीट-पीटकर पश्चात्ताप करता है। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान्‌का भजन किये बिना यमराजके हाथ बिक गया (यमराजके वशमें हो गया।)

[१३०]

(मन) राम-नाम सुमिरन बिनु, बादि जनम खोयौ॥
रंचक सुख कारन तैं, अंत क्यौं बिगोयौ।
साधु-संग, भक्ति बिना, तन अकार्थ जाई॥
ज्वारी ज्यौं हाथ झारि, चालै छुटकाई॥
दारा-सुत देह-गेह संपति सुखदाई।
इन मैं कछु नाहिं तेरौ, काल-अवधि आई॥

काम-क्रोध-लोभ-मोह-तृष्ना मन मोयौ।
गोबिंद गुन चित बिसारि, कौन नींद सोयौ॥
सूर कहै चित बिचारि भूल्यौ भ्रम अंधा।
राम नाम भजि लै, तजि और सकल धंधा॥

अरे जीव! राम-नामके स्मरण बिना तूने (मनुष्य) जन्म व्यर्थ खो दिया। तनिक-से (सांसारिक) सुखके लिये तूने अन्त (परलोक) क्यों नष्ट कर दिया? साधु पुरुषोंके संग और (भगवान्‌की) भक्तिके बिना शरीर (जीवन) व्यर्थ नष्ट हो रहा है। जुआरीके समान हाथ झाड़कर (पुण्यरूपी समस्त पूँजी हारकर-नष्ट करके) संसारसे (सगे-सम्बन्धियोंसे) अलग होकर (तुझे) चल देना है (परलोकमें अकेले ही जाना है)। स्त्री, पुत्र, शरीर और भवन आदि जिन्हें सुख देनेवाला मानता है, इनमें तेरा (वास्तविक सम्बन्ध) कुछ नहीं है। अब मृत्युका समय पास आ गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और तृष्णाने (तेरे) मनको मोहित कर लिया, गोविन्दके गुणोंको चित्तसे भुलाकर (भगवान्‌के गुणोंका स्मरण छोड़कर) किस निद्रामें सोया (किस अज्ञानमें पड़ा) है? सूरदासजी कहते हैं--अरे अन्धे! तू भ्रम (अज्ञान) में भूला हुआ है। अपने चित्तमें विचार कर। श्रीरामनामका भजन कर ले और (जगत्‌के) दूसरे सब प्रपञ्चोंको (दूसरी सब आसक्तियोंको) छोड़ दे

राग-कल्याण

[१३१]

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि, सिर शृंग, गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ॥
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
टूटे कंधरु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ॥
लादत जोतत लकुटि बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ?
सीत, घाम, घन, बिपति बहुत बिधि, भार तरैं मरि जैहौ।
हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ॥

भक्ति किये बिना दूसरेके बैल होगे। (अपने बैलको तो फिर भी खिलाया पिलाया जाता है, परंतु भक्तिके बिना मगनी जानेवाले बैल बनोगे। दूसरेका बैल होनेसे मार अधिक पड़ेगी; काम अधिक करना होगा और भोजन कम ही मिलेगा) चार पैर होंगे, सिरपर सींग होंगे, मुखसे गूँगे (मनुष्यभाषा बोलनेमें असमर्थ) होगे; तब (भगवान्का) गुण कैसे गा-सकोगे ? दिनके चारों प्रहर (पूरे दिन) वनमें चरते हुए घूमोगे; फिर भी पेट पूरा नहीं भरेगा। घायल कंधे रहेंगे, (नाथ डालनेके लिये) नाक फूटी (छेद की गयी) होगी। इस प्रकार पता नहीं, कबतक भूसा खाना पड़ेगा। लादते-समय और (हलमें अथवा छकड़ेमें) जोते जानेपर डंडोंकी मार पड़ेगी, तब सिर कहाँ छिपाओगे ? (मारसे बच कैसे सकोगे ?) सर्दी, गर्मी, और वर्षा तथा और भी बहुत-सी विपत्तियाँ भोगनी पड़ेंगी, लादे हुए भारके नीचे दबकर मर जाओगे। (इस समय तो) भगवान् तथा सत्पुरुषोंका आदेश नहीं मानते, परंतु (अन्तमें) अपने कियेका फल पाओगे। सूरदासजी कहते हैं—भगवान्का भजन किये बिना जीवन व्यर्थ खो दोगे।

राग सारंग

[१३२]

तजौ मन, हरि-बिमुखनि कौ संग।
जिनकै संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग।
कहा होत पय पान कराऐं, बिष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाऐं, स्वान न्हवाऐं गंग॥
खर कौं कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाऐं बहुरि धरै वह ढंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजै रंग॥

हे मन ! जिन लोगोंके साथ रहनेसे दुर्बुद्धि (बुरे विचार) उत्पन्न होती है और भगवद्भजनमें बाधा पड़ती है, ऐसे भगवद्विमुख

लोगोंका साथ छोड़ दो। सर्पको दूध पिलानेसे क्या होगा। वह विषका त्याग तो करेगा नहीं। कौएको कपूर चुगानेसे और कुत्तेको गङ्गाजीमें नहलानेसे क्या लाभ है? (न कौआ मधुरभाषी हो सकता है और न कुत्ता पवित्र ही)। गधेको मलयज चन्दनका लेप क्या (उससे वह सुन्दर थोड़े ही होगा) और बंदरके अङ्गोंमें आभूषण पहनानेसे ही क्या लाभ? हाथी-को नदीमें स्नान करानेसे क्या (स्वच्छता होगी) जब कि (शरीरपर धूल डालनेका) वही पुराना ढंग उसे धारण कर लेना है। पत्थरपर मारनेसे बाण पत्थरको वेध तो पाता नहीं, उलटे तरकस खाली हो जाता है। सूरदासजी कहते हैं कि काले कम्बलपर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। (तात्पर्य यह कि हरिविमुख लोगोंको उपदेश देनेसे कोई लाभ नहीं। उनके कलुषित हृदयपर उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनका सङ्ग सर्वथा ही त्याग देना चाहिये।)

राग सोरठा

[१३३]

रे मन, जनम अकारथ खोइसि।
हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि॥
निसि-दिन-फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि।
गोड़ पसारि पर्‌यो दोउ नीकैं, अब कैसी कहा होइसि॥
काल जमनि सौं आनि बनी है, देखि-देखि मुख रोइसि।
सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भई पोइसि॥

अरे मन! तूने (मनुष्य) जीवन व्यर्थ खो दिया। श्रीहरिकी भक्ति तो कभी की नहीं, बस, पेट भरा और पड़कर सो रहा (भोजन और निद्रामें ही समय नष्ट किया)। रात-दिन मुँह बाये (लालसामग्न) घूमता रहता है, अहंकारमें पगे रहकर ही जीवन नष्ट कर दिया। अब तो दोनों पैर फैलाकर भली प्रकार गिर गया है (पूरा ही पतन हो गया है)। अब बता, (परलोकमें) कैसी (दारुण) गति होगी? काल और यमराजसे

आकर पाला पड़ा है, लोगोंका मुख देख-देखकर अब रोता है। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके भजन बिना (काल और यमदूतोंसे) छुड़ा कौन सकता है? अब दौड़-धूप हो चुकी, लड़खड़ाते हुए चले जाओ।

[१३४]

तब तैं गोबिन्द क्यौं न सँभारे ?
भूरि परे तैं सोचन लागे, महा कठिन दुख भारे ॥
अपनौ पिंड पोषिबैं कारन, कोटि सहस जिय मारे ।
इन पापनि तैं क्यौं उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे ॥
आपु लोभ-लालच कैं कारन, पापनि तैं नहिं हारे ।
सूरदास जम कंठ गहे तैं, निकसत प्रान दुखारे ॥

उस समय तुमने गोविन्दका स्मरण क्यों नहीं किया था, जब पृथ्वीपर पड़कर (जन्म लेकर) अत्यन्त कठिन और भारी दुःखोंमें पड़कर चिन्ता करने लगे थे। (उस समय दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये तो भगवान्का सहारा लिया नहीं। उलटे) अपने शरीरके पोषणके लिये अरबों प्राणियोंकी हत्या की। (जीवनमें किये) इन पापोंसे तुम अब कैसे छूटोगे? वे तो तुम्हारे पल्ले बँध गये हैं। लोभ-लालचमें पड़कर तुम स्वयं पाप करते हुए कभी हारे (थके) नहीं हो। सूरदासजी कहते हैं—(इसीलिये) यमराजने गला पकड़ा है, जिसके कारण प्राण दुःखपूर्वक निकल रहे हैं।

राग धनाश्री

[१३५]

रे मन मूरख, जनम गँवायौ ।
करि अभिमान बिषय-रस गीध्यौ, स्याम सरन नहिं आयौ ॥
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुंदर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ ॥
कहा होत अब के पछिताएँ, पहिलैं पाप कमायौ ।
कहत सूर भगवंत भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥

अरे मूर्ख मन ! तूने जीवन खो दिया। अभिमान करके विषय-सुखोंमें लिप्त रहा, श्यामसुन्दरकी शरणमें नहीं आया। तोतेके समान इस संसाररूपी सेमर-वृक्षके फलको सुन्दर देखकर उसपर लुब्ध हो गया। परंतु जब स्वाद लेने चला, तब रूई उड़ गयी (भोगोंकी निःसारता प्रकट हो गयी); तेरे हाथ कुछ भी (शान्ति, सुख, संतोष) नहीं लगा। अब पश्चात्ताप करनेसे क्या होता है, पहले तो पाप कमाया (पापकर्म किया) है। सूरदासजी कहते हैं--भगवान्‌का भजन न करनेसे सिर पीट-पीटकर (भली प्रकार) पश्चात्ताप करता है। (फिर तो पश्चात्ताप ही हाथ रह जाता है।)

राग मारू

[१३६]

औसर हार्‍यौ रे, तैं हार्‍यौ।
मानुष-जनम पाइ नर बौरे, हरि कौ भजन बिसार्‍यौ॥
रुधिर बूँद तैं साजि कियौ तन, सुंदर रूप सँवार्‍यौ।
जठर-अगिनि अंतर उर दाहत, जिहिं दस मास उबार्‍यौ॥
जब तैं जनम लियौ जग भीतर, तब तैं तिहिं प्रतिपार्‍यौ।
अंध, अचेत, मूढ़मति, बौरे सो प्रभु क्यौं न सँभार्‍यौ?
पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिंगार्‍यौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगार्‍यौ॥
मरन भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धार्‍यौ।
सुत दारा कौ मोह अँचै बिष, हरि-अम्रित-फल डार्‍यौ॥
झूठ-साँच करि माया जोरी, रचि-पचि भवन सँवार्‍यौ।
काल-अवधि पूरन भइ जा दिन, तनहू त्यागि सिधार्‍यौ॥
प्रेत-प्रेत तेरौ नाम पर्‍यौ, जब जेंवरि बाँधि निकार्‍यौ।
जिहिं सुत कैं हित बिमुख गोबिंद तैं, प्रथम तिहीं मुख जार्‍यौ॥

भाई-बंधु, कुटुंब सहोदर, सब मिलि यहै बिचार्‌यौ।
जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनुका तोरि उचार्‌यौ॥
सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवार्‌यौ।
हरि भजि, बिलँब छाँड़ि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकार्‌यौ॥

अरे पगले मानव ! तूने सुअवसर खो दिया। निश्चय ही इस अवसर-को तू हार गया, जो मनुष्य-जन्म पाकर (भी) श्रीहरिके भजनको भुला दिया। जिन श्रीहरिने (माताके) रक्त और (पिताके) वीर्यसे तेरा शरीर बनाया और सुन्दर स्वरूप सजा-सँवारकर दिया। जठराग्नि माताके गर्भमें तुझे जला रही थी, वहाँ (उन्होंने) दस महीने तेरी रक्षा की। जबसे तूने संसारमें जन्म लिया है, तबसे सदा उस प्रभुने ही तेरा पालन किया है। अरे अंधे ! अज्ञानी ! मूढ़मति ! पगले ! तूने उस प्रभुका स्मरण क्यों नहीं किया ? पाटम्बर (रेशमी वस्त्र) पहनकर आडम्बर (बाहरी दिखावा) करके तूने इस शरीरका व्यर्थ ही शृङ्गार किया, काम-क्रोध, मद-लोभ और स्त्रीके प्रेममें पड़कर बहुत प्रकारसे (अपने वास्तविक) स्वार्थकी हानि की। मृत्यु होनी है, यह भूल गया और जीवनको स्थिर मानकर अनेक उद्योगों-को करनेका निश्चय चित्तमें कर लिया। पुत्र तथा पत्नीके मोहरूपी विषको पीकर श्रीहरि (के भजन) रूपी अमृत फलको तूने फेंक दिया। झूठ-सच बोलकर धन एकत्र किया, बड़े परिश्रमसे मकान सजाया; किंतु जिस दिन कालकी अवधि (जीवनका समय) पूरा हुआ, उस दिन शरीरको भी छोड़कर जाना पड़ा। तेरा नाम तब प्रेत (मुर्दा) पड़ गया, रस्सीसे बाँध-कर (लोगोंने घरसे बाहर) निकाल दिया। जिस पुत्रके कारण श्रीगोविन्दसे तू विमुख हुआ था, उसी पुत्रने सबसे पहले तेरा मुख जलाया (मुखमें अग्नि दी)। भाई, बन्धु (सम्बन्धी), कुटुम्बके लोग—यहाँतक कि सगे भाइयोंने भी मिलकर यही विचार किया और तृण तोड़कर (दृढ़ निश्चयसे) यही कहा कि 'जैसे कर्म किये हैं, (परलोकमें) वैसा ही फल प्राप्त करो!' सूरदासजी कहते हैं—मैं ऊँचेपर चढ़कर पुकारकर कहता हूँ—'अरे मूर्ख (मन) ! जिन्होंने सारे भ्रमोंको दूर कर दिया है, उन सद्गुरुके उपदेशको हृदयमें धारण करके श्रीहरिका भजन कर। विलम्ब न कर।'

राग देवगंधार

[१३७]

चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-बियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग॥
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा-प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै॥
लछमी-सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात बिषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस॥

अरी (बुद्धिरूपी) चक्रवाकी ! (श्रीहरिके) चरणरूपी उस सरोवर-पर चल, जहाँ प्रेममें वियोग नहीं होता। जहाँ कभी भी भ्रमरूपी रात्रि नहीं होती, वही सरोवर (तेरे लिये) सुखदायी है। जहाँपर सनकादि तथा शंकरजी जैसे राजहंस तथा मुनिगणरूपी मछलियाँ रहती हैं और नखज्योतिरूपी सूर्यका प्रकाश रहता है। जो चरण-कमल सदा खिले ही रहते हैं, एक क्षणके लिये भी जहाँ चन्द्रमाका भय नहीं है, जिनमें श्रुतियोंकी गुंजार और सुगन्ध सदा रहती है। जिस सरोवरमें बड़ा ही सुन्दर मुक्तिरूपी मोती है, वहाँ चलकर पुण्यरूपी अमृत-रसका पान करो (भगवान्के चरणोंमें लगनेसे अपने-आप पुण्य होंगे और पुण्यसे सुख प्राप्त होगा)। अरी कुबुद्धिरूपी पक्षिणी ! उस सरोवरको छोड़कर यहाँ रहकर क्या करना है। (यहाँ तो कोई सुख है नहीं)। सूरदासजी कहते हैं—जहाँ श्रीहरिकी लक्ष्मीके साथ नित्य मनोरम क्रीड़ा होती है, उस समुद्रकी आशामें (उसे पानेकी इच्छासे ही) अब विषय-भोगके सुखका गड्ढा अच्छा नहीं लगता।

[१३८]

चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं ।
जिहिं सरोवर कमल-कमला, रवि बिना विकसाहिं ॥
हंस उज्ज्वल पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिं ।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं ॥
अतिहिं मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिं ।
पदुम-बास सुगंध-सीतल, लेत पाप नसाहिं ॥
सदा प्रफुलित रहैं, जल बिनु निमिष नहिं कुम्हिलाहिं ।
सघन गुंजत बैठि उन पर भौंरहू बिरमाहिं ॥
देखि नीर जु छिलछिलौ जग, समुझि कछु मन माहिं ।
सूर क्यों नहिं चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहिं ॥

हे सखी (बुद्धि) ! चलो उस सरोवरपर चलें, जिस सरोवरके कमलोंकी शोभा बिना सूर्यके ही सदा विकसित रहती है । (ज्ञानरूप) निर्मल पंखवाले श्वेतहंस (ज्ञानीजन) जहाँ शरीर मल-मलकर स्नान करते हैं (जिसमें सम्पूर्ण एकाग्रतासे चित्तको निमग्न रखते हैं) और मुक्तिरूपी अगणित मोतियोंको चुन-चुनकर खाते (मोक्ष प्राप्त करते) हैं । वे (उस सरोवरके आनन्दरूप) अत्यन्त मधुर रसमें अत्यन्त मग्न रहते हैं और अपनी जिह्वाको उसीमें डुबाये रखते (सदा भगवद्गुण-वर्णनमें ही लगाये रखते) हैं । (उस सरोवरके) कमलोंकी गन्ध अत्यन्त लुभावनी और शीतल है, वह समस्त पापोंको लेते (सूँघते) ही नष्ट कर देता है । (प्रभुके वे चरणकमल) सदा ही प्रफुल्लित रहते हैं, (एवं) जलके बिना भी एक क्षणके लिये भी कुम्हिलाते नहीं । निरन्तर गूँजते (गुणगान करते) भौंरे (भक्त) भी उनपर बैठकर (उनके ध्यानमें लगकर) विश्राम करते (शान्ति पाते) हैं । सूरदासजी कहते हैं—संसारके (भोगोंके) छिछले पानीको देखकर कुछ मनमें समझ (विचार कर कि यह सूखनेवाला, नश्वर है) ।

वहाँ क्यों नहीं उड़ चलता, जहाँसे फिर उड़ना नहीं होता (जिन श्रीचरणों-को पाकर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता)।

राग रामकली

[१३९]

भृंगी री, भजि स्याम कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास।
जहँ बिधु-भानु समान एकरस, सो बारिज सुख रास॥
जहँ किंजल्क भक्ति नव लच्छन, काम-ज्ञान रस एक।
निगम, सनक, सुक, नारद, सारद, मुनि जन भृंग अनेक॥
सिव-बिरंचि खंजन, मनरंजन, छिन-छिन करत प्रबेस।
अखिल कोष तहँ भर्‌यौ सुकृत-जल, प्रगटित स्याम-दिनेस॥
सुनि मधुकरि, भ्रम तजि कुमुदनि कौ, राजिववरकी आस।
सूरज प्रेम-सिंधु मैं प्रफुलित, तहँ चलि करै निवास॥

अरी भ्रमरी (बुद्धि)! श्यामसुन्दरके चरण-कमलोंका भजन कर! जहाँ रात्रिका (रात्रिमें कमलके बंद होनेका भय) नहीं है। जिसकी दृष्टिमें सूर्य और चन्द्रमा समान हैं और जो सदा एकरस (नित्य प्रफुल्ल रहने वाला) है, वही कमल सुखोंकी राशि है। (श्रवण, कीर्तन,, अर्चन पाद-सेवन, स्मरण, वन्दन, दास्य एवं आत्म-निवेदन-रूप) भक्तिके नौ अङ्ग ही जिसमें केसर हैं, प्रेम एवं ज्ञानका ऐक्य (ज्ञानमयी प्रेमाभक्ति) जहाँ रस (मधु) है, वेद, सनकादि, शुकदेव, नारद, शारदा आदि मुनि-देवगणरूप अनेक भ्रमर जहाँ गुणगानरूप गुंजार करते रहते हैं। जहाँ मनोरञ्जन करनेवाले खञ्जनके रूपमें शिव तथा ब्रह्मा क्षण-क्षणमें प्रवेश करते हैं (बार-बार जिन चरणोंका स्मरण करते हैं) वह सम्पूर्ण पुण्योंके कोषका ही जल भरा है (सभी पुण्योंके निवास वे चरण ही हैं) तथा श्यामसुन्दर स्वयं सूर्यरूपसे वहाँ प्रत्यक्ष (उदित) रहते हैं। सूरदासजी कहते हैं—अरी भ्रमरी! (अज्ञानरूपी रात्रिमें खिलनेवाली विषय-भोगरूपी) कुमुदिनीका

भ्रम (मोह) छोड़कर उस श्रेष्ठ कमलकी आशा कर, जो प्रेमके समुद्रमें प्रफुल्लित है और वहीं चलकर निवास कर।

राग देवगंधार

[१४०]

सुवा, चलि ता बन कौ रस पीजै।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन पात्र भरि लीजै॥
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर को तेरौ?
काग-सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ-मेरौ॥
बन बारानसि मुक्ति-क्षेत्र है, चलि तोकों दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ॥

हे तोते (मन)! चलकर उस सत्सङ्ग वनका रस पियो, जिस वनमें रामनामका अमृतमय रस है। कानोंके बर्तनमें उसे भर लो। कौन तेरा पुत्र और तू किसका पिता? स्त्री और भवन आदि तेरा क्या है? (यह सब तो झूठा मोह है)। कौए, शृगाल और कुत्तेका भोजन बननेवाली देहको तू 'मेरा-मेरा' कहता है (उसमें ममता किये है)? सूरदासजी कहते हैं कि यदि बड़े सौभाग्यसे साधु-पुरुषोंका सङ्ग मुझे मिल जाय तो चल, तुझे दिखा दूँ कि वह (सत्सङ्गरूप वन) ही वाराणसी (काशी)का मुक्तिदायी धाम है। (सत्सङ्गसे ही मुक्ति होती है, अतः सत्सङ्ग कर और वहाँ भगवद्-गुण श्रवण कर)।

राग कान्हरौ

[१४१]

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट॥

श्रीराम-नामका आश्रय सबसे महान् है। शरणमें जानेपर प्रभु किसीको निकाल नहीं देते (शरणागतका त्याग नहीं करते) अपितु, उसे कृपारूपी दुर्गमें रख लेते हैं। श्रीहरिकी सभामें सभी बैठते हैं (सभी शरण ले सकते हैं), वहाँ कौन बड़ा और कौन छोटा (सभी एक समान हैं)। सूरदासजी कहते हैं कि पारसका स्पर्श होनेपर लोहेका दोष मिट जाता है। (इसी प्रकार भगवान्के शरण होनेपर जीवके दोष नष्ट हो जाते हैं।)

राग धनाश्री

[१४२]

सोइ भलौ जो रामहि गावै।
स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गुपाल द्विज-जनम न भावै।
बाद-बिवाद जज्ञ-ब्रत-साधन, कितहूँ जाइ जनम डहकावै।
होइ अटल जगदीश-भजन मैं, अनायास चारिहु फल पावै॥
कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहुँ दिसि धावै।
सूरदास प्रभु संत-समागम, आनँद अभय निसान बजावै॥

भला वही है, जो रामका गुण-गान करता है। (श्रीहरिकी) चरण-सेवामें लगनेपर चाण्डाल भी श्रेष्ठ हो जाता (सत्कारयोग्य होता) है और गोपाल (के भजन) बिना ब्राह्मणकुलमें जन्म भी शोभा नहीं देता। वाद-विवाद (शास्त्रार्थ), यज्ञ-व्रत तथा और किसी साधनमें लगकर कहीं भी जाकर जीवन नष्ट करे (लाभ कुछ नहीं है; परंतु) जगदीश्वरके भजनमें अविचल हो जाय तो बिना परिश्रमके ही चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा जाय। चाहे भ्रमरीके समान दसों दिशाओंमें दौड़ता रहे, परंतु भगवान्के चरण-कमलोंको छोड़कर और कहीं (शान्ति पानेका) ठिकाना (जीवके लिये) है नहीं। सूरदासजी कहते हैं—संतोंके सङ्गसे प्रभुको पाकर ही निर्भय होकर आनन्द-दुन्दुभि बजा सकता है।

राग रामकली

[१४३]

पढ़ौ भाइ, राम-मुकुंद-मुरारि।
चरन-कमल मन सनमुख राखौ, कहूँ न आवै हारि॥
कहै प्रहलाद, सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि।
को है हिरनकसिप अभिमानी, तुम्हैं सकै जो मारि॥
जनि डरपौ जड़मति काहू सौं, भक्ति करौ इकसारि।
राखनहार अहै कोउ औरै, स्याम धरै भुज चारि॥
सत्यस्वरूप देव नारायन, देखौ हृदय विचारि।
सूरदास प्रभु सब मैं ब्यापक, ज्यौं धरनी मैं बारि॥

'हे भाई! राम, मुकुन्द, मुरारि—इन भगवन्नामोंको पढ़ो (इनका जप करो)। मनको (प्रभुके) चरण-कमलोंके सम्मुख (चरणोंमें लगाये) रखो, इससे कहीं भी पराजय (विफलता) नहीं होगी।' प्रह्लादजी कहते हैं—'हे दैत्य-बालको! सुनो। (भगवान्‌का भजन करके) जीवनको बना लो (सफल कर लो)। अभिमानी हिरण्यकशिपु किस गिनतीमें है, जो तुम्हें मार सके। (तुम) किसी जड-बुद्धि (अज्ञानी) से डरो मत। एक समान (अविचल) भक्ति करो। अपने हृदयमें विचार करके देखो—रक्षा करनेवाला तो चार भुजा धारण करनेवाला श्याम-वर्णका कोई और ही है! वे सत्यस्वरूप श्रीनारायणदेव ही हैं।' सूरदासजी कहते हैं—वे प्रभु सबमें उसी प्रकार व्यापक हैं, जैसे पृथ्वीतत्त्वमें जलतत्त्व। (उन प्रभुको रक्षा करनेके लिये कहींसे आना नहीं है।)

राग सारंग

[१४४]

जो सुख होत गुपालहि गाएँ।
सो सुख होत न जप-तप-कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाएँ॥

दिएँ लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाएँ।
तीन लोक तृन सम करि लेखत, नंद-नँदन उर आएँ॥
वंशीबट, बृंदाबन, जमुना तजि बैकुंठ न जावै।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै॥

श्रीगोपालका गुणगान करनेमें जो सुख होता है, वह सुख जप, तप करने तथा करोड़ों तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी नहीं प्राप्त होता। (भगवान्‌के) चरणकमलोंमें चित्त लगा लेनेपर (भक्त) देनेपर भी (अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप) चारों पदार्थ नहीं लेता। श्रीनन्दनन्दनके हृदयमें आ जानेपर (वह) तीनों लोकों (के वैभव) को तृणके समान (तुच्छ) समझता है। वृन्दावन; वंशीवट और यमुनाजीको छोड़कर वह वैकुण्ठ भी जाना नहीं चाहता। सूरदासजी कहते हैं—(ऐसा भक्त) श्रीहरिका स्मरण करता है; इससे फिर संसार-सागरमें नहीं आता।

राग सोरठ

[१४५]

जौ तू राम-नाम-धन धरतौ।
अब कौ जन्म आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ॥
जम कौ त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ।
तंदुल-घिरत समर्पि स्याम कौं, संत परोसौ करतौ॥
होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठ नहिं टरतौ।
सूरदास बैकुंठ-पैंठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ॥

यदि तू रामनामरूपी धनको एकत्र करता (रामनामका जप करता), तो तेरा यह जन्म और अगला जन्म—इस प्रकार दोनों जीवन सुधर जाते। यमराजका सारा भय मिट जाता और तेरा नाम भक्त पड़ जाता। श्याम-सुन्दरको चावल और घी समर्पित करके (भगवान्‌को भोजनके पदार्थोंका भोग लगाकर) यदि सन्तोंको भोजन कराता तो साधु पुरुषोंका सङ्ग लाभमें मिलता (सत्सङ्ग प्राप्त होता), जिससे रामनाम (भजनरूपी) मूलधन गाँठमेंसे

गिरता नहीं। (सत्सङ्गसे यह ज्ञात हो जाता कि भजनका उपयोग सांसारिक कामना-पूर्तिके लिये नहीं करना चाहिये।) सूरदासजी कहते हैं—फिर वैकुण्ठरूपी बाजारमें कोई तेरी फेंट नहीं पकड़ता (तू यहाँ क्यों आया, यह कहकर कोई नहीं रोकता)।

राग केदारौ

[१४६]

है हरि नाम कौ आधार।
और इहिं कलिकाल नाहीं रह्यौ बिधि-ब्यौहार॥
नारदादि सुकादि मुनि मिलि, कियौ बहुत बिचार।
सकल स्रुति दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार॥
दसौं दिसि तैं कर्म रोक्यौ, मीन कौं ज्यौं जार।
सूर हरि कौ सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार॥

इस कलियुगके समयमें दूसरा कोई विधि-व्यवहार (साधन) नहीं रहा है, केवल श्रीहरिके नामका ही सहारा है। नारद आदि देवर्षि तथा शुकदेवजी आदि मुनियोंने मिलकर बहुत विचार किया। परन्तु समस्त वैदिक ज्ञानरूपी दहीको मथकर साररूप इतना ही घृत उन्होंने पाया है। (हरिनाम ही समस्त वेदोंका सार है) जैसे मछलीको जाल रोक ले, इसी प्रकार कर्मने दशों दिशाओंसे (जीवको) रोक लिया (जकड़ रखा) है। सूरदासजी कहते हैं—(इसीसे मैं) श्रीहरिके सुयशका गान करता हूँ, जिससे संसार-रूपी भार मिट जाय।

राग बिलावल

[१४७]

हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ।
हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ॥

हरि-समान द्वितिया नहिं कोइ।
स्रुती-सुम्रिति देख्यौ सब जोइ॥
हरि हरि सुमिरत होइ सु होइ।
हरि चरननि चित राखौ गोइ॥
बिनु हरि सुमिरन मुक्ति न होइ।
कोटि उपाइ करौ जौ कोइ॥
सत्रु-मित्र हरि गनत न दोइ।
जो सुमिरै ताकी गति होइ॥
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ।
हरि के गुन गावत सब लोइ॥
राव-रंक हरि गनत न दोइ।
जो गावहि ताकी गति होइ॥
हरि हरि हरि सुमिर्यौ जो जहाँ।
हरि तिहि दरसन दीन्ह्यौ तहाँ॥
हरि बिनु सुख नहिं इहाँ न उहाँ।
हरि हरि हरि सुमिरौ जहँ, तहाँ॥
सौ बातनि की एकै बात।
सूर सुमिरि हरि-हरि दिन-रात॥

सब कोई (सब लोग) श्रीहरिका बार-बार स्मरण करें। श्रीहरिका बार-बार स्मरण करनेसे समस्त सुख प्राप्त होते हैं। श्रुति और स्मृति सबकी छान-बीन करके देख लिया, श्रीहरिके समान दूसरा कोई नहीं है। जो कुछ (परम लाभ) होना है, श्रीहरिके स्मरणसे ही होगा। (अतः) श्रीहरिके चरणोंमें ही चित्तको छिपाये (चुपचाप लगाये) रखो। यदि कोई करोड़ों उपाय कर ले, तो भी श्रीहरिके स्मरण बिना मुक्ति नहीं होती। श्रीहरि शत्रु-मित्र—दोनोंमेंसे किसीका विचार नहीं करते (किसी भी भावसे) जो उनका स्मरण करता है, उसीको परमगति प्राप्त होती है। (इसलिये) सभी कोई

बार-बार श्रीहरिका स्मरण करो। (मुनि, देवतादि) सभी लोग श्रीहरिका गुणगान करते हैं। श्रीहरि अमीर-गरीब—दोनोंमेंसे किसीको नहीं गिनते; जो भी उनका गुणगान (भजन-कीर्तन) करता है, उसीकी मुक्ति होती है। जिसने, जहाँ भी 'हरि, हरि, हरि' इस प्रकार नाम-स्मरण किया, उसे वहीं श्रीहरिने दर्शन दिया। श्रीहरिके बिना न इस लोकमें सुख है, न परलोकमें; अतः जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) श्रीहरिका बार-बार स्मरण करो। सूरदासजी कहते हैं—सौ बातकी यह एक ही बात है कि दिन-रात (सर्वदा) श्रीहरि-का स्मरण करो।

राग केदारौ

[१४८]

सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै।
नैननि की छवि यहै चतुरता, जो मुकुंद-मकरंदहि ध्यावै॥
निर्मल चित तौ सोई साँचौ, कृष्न बिना जिहि और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै॥
कर तेई जे स्यामहि सेवैं, चरननि चलि बृंदावन जावैं।
सूरदास जैयै बलि वाकी, जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै॥

जिह्वा वही (सार्थक) है, जो श्रीहरिका गुणगान करे। नेत्रोंकी यही शोभा और चतुरता है कि वे श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दोंकी शोभाका ध्यान करें। वही चित्त सचमुच निर्मल है, जिसे श्रीकृष्णको छोड़कर और कुछ अच्छा न लगे। कानोंकी यही महत्ता है कि श्रीहरि-कथा सुनकर उसमें अमृतके-से स्वाद-का अनुभव करें। वे ही हाथ (सार्थक) हैं, जो श्यामसुन्दरकी सेवा करें और पैर उसीके सार्थक हैं, जो उनसे चलकर वृन्दावन जाय। सूरदासजी कहते हैं—मैं उस-की बलिहारी जाता हूँ (उसपर निछावर हूँ) जो श्रीहरिसे प्रीति बढ़ाता है।

राग सारंग

[१४९]

जब तैं रसना राम कह्यौ।
मानौ धर्म साधि सब बैठ्यौ, पढ़िबे मैं धौं कहा रह्यौ॥

प्रगट प्रताप ज्ञान-गुरु-गम तैं दधि मथि, घृत लै, तज्यौ मह्यौ।
सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख, हनूमान-सिव जानि गह्यौ॥
नाम प्रतीति भई जा जन कौं, लैं आनँद, दुख दूरि दह्यौ।
सूरदास धनि धनि वह प्रानी, जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ॥

जबसे जिह्वाने 'राम' कहा (भगवन्नाम लिया) तबसे मानो सब धर्म साधकर बैठ गया (सब धर्माचरण कर लिया)। पढ़नेमें भला, अब और क्या रह गया, (पढ़नेका मुख्य तात्पर्य तो भगवन्नाम लेना ही है)। जिसका प्रताप प्रत्यक्ष है, विचारपूर्वक, गुरुकृपासे वेद-शास्त्ररूपी दहीसे वह (भगवन्नामरूपी) घृत निकालकर (दूसरे साधनोंरूप) मट्ठेको छोड़ दिया। सार तत्त्वोंका सार, समस्त सुखोंका परमसुख (नामको) जानकर हनुमान्‌जी और शंकरजीने उसे ही पकड़ा (अपनाया) है। जिस भक्तको भगवन्नाममें विश्वास हो गया, उसे आनन्दकी उपलब्धि हुई और दुःख दूर ही भस्म हो गया। सूरदासजी कहते हैं—वह प्राणी परम धन्य है, जिसने श्रीहरिके (भजनके) व्रतको लेकर (उसे जीवनके अन्ततक) निर्वाह दिया।

राग बिलावल

[१५०]

को को न तर्‌यौ हरि-नाम लिएँ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, व्याध तर्‌यौ सर-घात किएँ॥
अंतर-दाह जु मिट्यौ व्यास कौ, इक चित ह्वै भागवत किएँ।
प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिएँ॥
जौ पै राम भक्ति नहिं जानी, कहा सुमेरु-सम दान दिएँ।
सूरदास बिमुख जो हरि तैं, कहा भयौ जुग कोटि जिएँ॥

श्रीहरिका नाम लेनेसे कौन-कौन मुक्त नहीं हुए (महापातकी भी मुक्त हो गये हैं)। तोतेको (रामनाम) पढ़ाते हुए गणिका मुक्त हो गयी और (श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें) बाण मारनेसे व्याध मुक्त हो गया। एकाग्र

चित्तसे श्रीमद्भागवतकी रचना करनेसे व्यासजीके हृदयकी दाह (बेचैनी) मिट गयी। जिस भक्तके हृदयमें जैसी प्रीति होती है, जिस भावसे वह भगवान्‌से व्यवहार (उपासना) करता है, भगवान् भी भक्तसे वैसा (उसके भावके अनुसार) व्यवहार करते हैं। यदि श्रीरामकी भक्ति नहीं जानी (नहीं की) तो सुमेरुके समान (अपार स्वर्णराशि) दान करनेसे भी क्या लाभ। सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिसे जो विमुख है, उसे करोड़ों युगोंतक जीवित रहनेसे क्या लाभ ? (अन्तमें तो उसे नरकमें जाना ही पड़ेगा)

[१५१]

अद्भुत राम नाम के अंक।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक॥
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात।
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि, तीछन बहु बिख्यात॥
अंधकार अज्ञान हरन कौं रवि-ससि जुगल-प्रकास।
बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास॥
दुहूँ लोक सुखकरन, हरन दुख, बेद-पुराननि साखि।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये, प्रेम निरंतर भाखि॥

श्रीराम-नामके (दोनों) अक्षर अद्भुत (शक्तिमय) हैं। (ये दोनों अक्षर) धर्मरूपी अङ्कुरके पावन दो दल हैं (रामनामसे ही धर्मवृक्ष उगता और बढ़ता है,) मुक्तिरूपी वधूके कुण्डल हैं (मुक्ति इनसे ही शोभित होती है); मुनियोंके मनरूपी हंसके ये दोनों पंख हैं, जिनके बलसे उड़कर वे ऊपर (परमधाम) में जाते हैं। जन्म-मरणको काटने (नष्ट करने) के लिये बहुत तीखी कैंचीके रूपमें प्रसिद्ध हैं। अज्ञानरूपी अन्धकारका हरण करनेके लिये सूर्य और चन्द्र दोनोंके प्रकाशस्वरूप हैं। ये दोनों (संसाररूपी) महान् कुपथको दिन और रात्रि सदा बिना परिश्रमके ही प्रकाशित करते रहते हैं। वेद और पुराण (इस बातके) साक्षी हैं कि ये दोनों लोक

(इस लोक और परलोक) में सुख देनेवाले तथा दुःखोंका हरण करनेवाले हैं। सूरदासजी कहते हैं—ये भक्ति और ज्ञानके मार्ग हैं (इनके जपसे ही भक्ति या ज्ञानमें प्रवेश होता है। अतः) निरन्तर प्रेमसे इनका उच्चारण करो।

[१५२]

अब तुम नाम गहौ मन नागर !
जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर ॥
मारि न सकै विघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर।
क्रिया-कर्म करतहु निसि-बासर, भक्ति कौ पंथ उजागर ॥
सोचि बिचारि सकल-स्रुति-सम्मति, हरि तैं और न आगर।
सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि, उतरि चलौ भवसागर ॥

अरे चतुर मन ! अब तुम भगवन्नाम (का आश्रय) पकड़ो, जिससे कालरूपी अग्निसे बचो और सदा सुखके समुद्रमें (निमग्न) रहो। (मृत्यु) मार न सके, विघ्न ग्रस्त न करे और यमराज कागजमें (अपनी पापियोंकी सूचीमें) न चढ़ा लें। (संसारके सारे) काम-काज करते हुए भी भक्तिका मार्ग उज्ज्वल रहे। विचार करके समझ ले, सभी श्रुतियोंकी यही राय है कि श्रीहरिसे अधिक आनन्दधाम और कोई नहीं है। सूरदासजी कहते हैं कि इस (मनुष्य-जीवनरूप) सुअवसरको पाकर प्रभुका भजन करके भवसागरसे पार हो जाओ।

राग सारंग

[१५३]

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम ॥
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसो हरि-नाम।
बैकुँठनाथ सकल सुख दाता, सूरदास सुख-धाम ॥

हम निर्धनोंका धन राम-नाम है। (इसे) चोर चुरा नहीं सकता; कभी (यह) घटता है नहीं और आपत्तिके समय काम आता है। श्रीहरिका नाम ऐसा है कि न तो जलमें डूबता है, न अग्नि उसे जला सकता है। सूरदासजी कहते हैं—सुखधाम श्रीवैकुण्ठनाथ समस्त सुखोंके दाता हैं।

राग गौरी

[१५४]

तुम्हरी एक बड़ी ठकुराई।
प्रति दिन जन-जन कर्म सवासन नाम हरै जदुराई॥
कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग, जउ कोउ करत बनाई।
तदपि विमुख पाँति सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई॥
भक्ति पंथ मेरे अति नियरैं, जब तब कीरति गाई।
भक्ति-प्रभाव सूर लखि पायौ, भजन-छाप नहिं पाई॥

हे श्रीयदुनाथ! आपका यही एक सबसे बड़ा प्रभुत्व है कि आपका नाम प्रत्येक दिन (अपना उच्चारण करनेवाले) प्रत्येक भक्तके कर्मोंको उन कर्मोंकी वासनाके साथ हरण कर लिया करता है। (नाम-जपका कर्म-फल और कर्म-वासना दोनों नष्ट हो जाती हैं।) धर्म-कर्मका मार्ग प्रफुल्लित (सुनने-देखनेमें बहुत आकर्षक परंतु फलहीन) है, यदि कोई सँभालकर भी उन्हें (धर्म-कर्मको) करे, तो भी भगवान्से विमुख लोगोंकी श्रेणीमें ही उसकी गणना होती है; क्योंकि उसके हृदयमें भक्ति नहीं आयी है। भक्तिका मार्ग तो मेरे (मनुष्यमात्रके) अत्यन्त पास है। जब इच्छा होती है, तभी (भगवान्का) यश गा लेता हूँ। सूरदासजी कहते हैं—भक्तिका प्रभाव देख लिया है, भजनकी तुलना (और किसी साधनमें) नहीं है।

राग धनाश्री

[१५५]

हरि जू, तुम तैं कहा न होइ?
बोलै गुंग, पंगु गिरि लंघै, अरु आवै अंधौ जग जोइ॥

पतित अजामिल, दासी कुबिजा, तिन के कलिमल डारे धोइ।
रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम, पांडव-हित कौरव-दल खोइ॥
बालक मृतक जिवाइ दए प्रभु, तब गुरु-द्वारैं आनँद होइ।
सूरदास प्रभु इच्छापूरन, श्रीगुपाल सुमिरौ सब कोइ॥

हे श्रीहरि! आपसे क्या नहीं हो सकता? (आपकी कृपा हो जाय तो) गूँगा बोलने लगे, पंगुल (दोनों पैरोंसे असमर्थ) पर्वत लाँघ जाय और अंधा सारे संसारको देख आवे (आप सब असम्भव सम्भव कर सकते हैं)। अजामिल पतित था, कुब्जा दासी थी; परंतु आपने उनके पापरूपी मलको धो दिया (उन्हें पवित्र कर दिया।) कंगाल सुदामाको इन्द्रके समान (ऐश्वर्य-शाली) बना दिया और पाण्डवोंके भले (विजय) के लिये कौरव दलका नाश कर दिया। प्रभो! जब आपने गुरुके मरे बालकको जीवित कर दिया, तब उसके द्वारपर मङ्गल मनाया जाने लगा। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी (भक्तोंकी) इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं, अतः उन श्रीगोपालका सब लोग स्मरण करें।

राग सोरठ

[१५६]

बिनती करत मरत हौं लाज।
नख-सिख लौं मेरी यह देही, है पाप की जहाज॥
और पतित आवत न आँखि तर, देखत अपनौ साज।
तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ, तऊ न आयौ बाज॥
पाछैं भयो न आगे ह्वैहै, सब पतितनि सिरताज।
नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज॥
अब लौं नान्हें-नून्हें तारे, ते सब बृथा अकाज।
साँचैं बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज॥

(प्रभो!) प्रार्थना करते हुए मैं लज्जासे मरा जा रहा हूँ, क्योंकि मेरा यह शरीर नखसे शिखातक पापका ही जहाज है (सदा इसने पाप ही ढोया

है ।) अपना साज (हाल) देखनेपर (अपने समान) कोई और पतित आँखोंके नीचे (दृष्टिपथमें) नहीं आता। तीनों अवस्था (बाल्य, किशोर, तारुण्य) में भरपूर पाप किया, फिर भी बाज नहीं आया (फिर भी पाप छोड़े नहीं)। (ऐसा पतित) न पहले कोई हुआ है, न आगे कोई होगा, सब पतितोंका मैं मुकुट हूँ (सबसे बड़ा पतित हूँ)। नरक भी मेरा नाम सुनकर भाग गया और धर्मराजने भी (मेरे-जैसे पापीके स्पर्शके भयसे मेरी ओर) पीठ फेर ली। अबतक आपने जो छोटे-छोटे पतित तारे, वह सब तो व्यर्थ और अकाज (निष्प्रयोजन) ही किया। मुझ सूरदासके तारते ही आपके सच्चे यशकी ध्वनि सभी लोकोंमें फैल जायगी।

राग बिहागरौ

[१५७]

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।
बिनु गोपाल बिथा या तन की, कस जाति कटी॥
अपनी रुचि जितहीं-जित ऐंचति इंद्रिय कर्म-गटी।
हौं तितहीं उठि चलत कपट लगि बाँधें नैन-पटी॥
झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी॥
दिन-दिन हीन, छीन भइ काया दुख-जंजाल-जटी।
चिंता कीन्हें भूख भुलानी, नींद फिरति उचटी॥
मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी।
ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी॥
किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी।
सूर सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन तटी॥

हृदयकी जलन कभी कम नहीं हुई। बिना गोपालके इस शरीर (धारण) का दुःख कैसे काटा (दूर किया) जा सकता है। प्रत्येक

इन्द्रियोंमें जिसकी अपनी जैसी रुचि है, उसके अनुसार वहीं वह कर्म-गलीमें खींचती है (अपनी रुचिके अनुसार इन्द्रियाँ कर्म करनेको विवश करती हैं)। मैं आँखोंपर पट्टी बाँधकर (विचारहीन होकर) कपटके लिये (झूठ, छल आदिका आश्रय लेकर) वहीं-वहीं उठकर चल देता हूँ (इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये कर्म करनेमें लगा रहता हूँ)। मन मिथ्या है, शरीर मिथ्या है और जितने आरम्भ (कर्म) हैं, सब मिथ्या हैं (सब नाशवान् हैं) और झूठे (नाशवान् एवं अधर्मरत) लोगोंका मुख देखता (उनसे आशा लगाये) गप हाँकता घूमता रहता हूँ। दुःखोंके जंजालमें जकड़ा हुआ शरीर दिनोंदिन शक्तिहीन और क्षीण होता जा रहा है। चिन्ता करते रहनेके कारण भूख भूल गयी (भूख लगती नहीं) और निद्रा बार-बार उचट जाती (टूट जाती) है। मायाके रसमें लम्पट होकर मग्न हो गया हूँ; (समझानेपर भी) हठी (मन) समझता नहीं कि उस मायाके सिरपर चढ़कर अत्यन्त नीच नर्तकी मृत्यु नाच रही है। नाममात्रके स्वादके लिये इसने कुत्ते और बंदरोंकी (विषमिश्रित भोजन करके जैसे बंदर और कुत्ते मरते हैं, वैसे ही) घातक रीति पकड़ ली है। सूरदासजी कहते हैं—(अब तो) हे कृपानिधि ! (आप ही) अपने जनको अपने चरणरूपी नदीके पवित्र जलसे सींचिये। (अपने चरणोंकी भक्ति देकर पवित्र कीजिये।)

राग केदारौ

[१५८]

अब कैं नाथ ! मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिएँ जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इंद्री तनहि काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार ॥

क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत सुत तिय, नाम-नौका ओर॥
थक्यौ बीच बिहाल बिहवल, सुनौ, करुना-मूल!।
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल॥

हे नाथ! अबकी बार मेरा उद्धार करो! हे कृपासिंधु मुरारि! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ। (इस संसार-सागरमें) मायारूपी अत्यन्त गहरा पानी भरा है, जिसमें लोभकी लहररूपी तरङ्गें उठती रहती हैं। कामदेवरूपी मगर पकड़कर अगाध जलमें मुझे (खींचे) लिये जा रहा है। इन्द्रियाँ इसमें मछलियोंके समान हैं, जो शरीरको काट (दुःख पहुँचा) रही हैं। सिरपर पापकी भारी गठरी है। मोहरूपी सिवारमें उलझे जानेके कारण पैर भी इधर-उधर ठिकानेसे नहीं रखने पाता। क्रोध, दम्भ, गर्व और तृष्णारूपी पवन अत्यन्त वेगसे झंझा बनकर चल रहा है। पुत्र और स्त्री (की आसक्ति) भगवन्नामरूपी नौकाकी ओर देखने ही नहीं देती। हे करुणाकन्द! सुनो, मैं मध्य समुद्रमें थक गया हूँ, बेहाल और विह्वल (अत्यन्त व्याकुल) हो रहा हूँ। हे श्यामसुन्दर! इस सूरदासको हाथ पकड़कर व्रजभूमिरूपी किनारेपर निकाल दीजिये। (व्रजभूमिमें निवास दीजिये।)

राग सारंग

[१५९]

माधौ जू, मन हठ कठिन पर्‌यौ।
जद्यपि विद्यमान सब निरखत, दुक्ख सरीर भर्‌यौ॥
बार-बार निसि-दिन अति आतुर, फिरत दसौं दिसि धाए।
ज्यौं सुक सेमर-फूल बिलोकत, जात नहीं बिनु खाए॥
जुग जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत भेव।
ज्यौं दिनकरहि उलूक न मानत, परि आई यह टेव॥

हौं कुचील, मति-हीन सकल विधि, तुम कृपालु जग जान।
सूर मधुप निसि कमल-कोष-बस, करौ कृपा-दिन-भान ॥

माधवजी ! (मेरे) मनने कठिन हठ पकड़ ली है ! यद्यपि वह यह सब प्रत्यक्ष देखता है कि शरीर दुःखोंसे भरा हुआ है, फिर भी बार-बार अत्यन्त आतुर (उतावला) बना रात-दिन दसों दिशाओंमें दौड़ता रहता है। जैसे तोता सेमरके फूलको देखता है और फिर सेमरके फल खाये बिना वहाँसे जाता नहीं (वैसे ही संसारके बाहरी रूपसे आकर्षित होकर मन उसीमें सुख पानेके लिये लालायित रहता है।) नाना युगोंसे जन्म-मरण और सम्बन्धियोंसे वियोग हो रहा है, यद्यपि यह सब मर्म मैं समझता हूँ; फिर भी जैसे उल्लू सूर्य (की सत्ता) को ही नहीं मानता, वैसे ही इसे भी विषय-सेवनका स्वभाव पड़ गया है। सूरदासजी कहते हैं—मैं तो मलिन हूँ, सब प्रकारसे बुद्धिहीन हूँ और आप कृपालु हैं, यह संसार जानता है। अतः हे कृपा-रूपी दिनके सूर्य (कृपास्वरूप प्रभु)! मेरे मनरूपी भौंरेको (संसार-रूपी रातमें) अपने चरण-कमलोंके कोषमें बन्द कर लो। (संसारमें रहते हुए भी मेरा मन आपके चरणोंका स्मरण त्याग ही न सके, ऐसी कृपा करो।)

राग धनाश्री

[१६०]

आछौ गात अकारथ गार्‌यौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनन जुवा ज्यौं हार्‌यौ ॥
निसि-दिन बिषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तव चार्‌यौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्‌यौ ॥
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर बिसार्‌यौ ॥

(अरे जीव ! तूने) अच्छा शरीर (मानव-देह) व्यर्थ नष्ट कर दिया। कमललोचन भगवान्‌से प्रेम न करके जीवनको जुआके समान हार गया। रात-दिन विषय-सुखोंको भोगते रहनेके कारण तेरे चारों (बाहरी दोनों और ज्ञानरूप हृदयके दोनों) नेत्र फूट गये । अब भाग्यका मारा दुःख पाकर, दीन होकर पश्चात्ताप करने लगा है (लेकिन प्रभो !) आपने कामी, कृपण, मलिन (पापी), कुरूप—किसे कृपा करके नहीं तारा (मुक्त किया) है ? (सभीको तो मुक्त किया है) इसलिये हे दयालु देवशिरोमणि ! मैं कहता हूँ कि इस सूरदासको ही आपने क्यों विस्मृत कर दिया ? (मुझे ही क्यों भूल गये ? मेरा भी उद्धार कीजिये ।)

राग सारंग

[१६१]

माधौ जू, मन सबही विधि पोच ।
अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंता-रहित, असोच ॥
महा मूढ़ अज्ञान-तिमिर महँ, मगन होत सुख मानि ।
तेली के वृष लौं नित भरमत, भजत न सारँगपानि ॥
गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यौं, अति आतुर मति-मंद ।
लुबध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौं अवलोक्यौ नहिं फंद ॥
ज्वाला-प्रीति प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौं पतंग तन जारयौ ।
विषय-असक्त, अमित अघ व्याकुल, तबहूँ कछु न सँभारयौ ॥
ज्यौं कपि सीत हतन हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन ।
त्यौं सठ वृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत विषय-आधीन ॥
सेमर-फूल सुरँग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप ।
परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुक्ख कैं कूप ॥
जहाँ गयौ, तहँ भलौ न भावत, सब कोऊ सकुचानौ ।
ज्ञान और वैराग भक्ति, प्रभु, इन मैं कहूँ न सानौ ॥

और कहाँ लौं कहौं एक मुख, या मन के कृत काज।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज॥

माधवजी! (मेरा) मन सभी प्रकारसे नीच है। अत्यन्त, उन्मत्त अङ्कुश (नियन्त्रण) रहित पागल हाथीके समान चिन्ताहीन और विचार-हीन है। यह (मन) महामूर्ख है, अज्ञानके अन्धकारमें ही सुख मानकर प्रसन्न होता रहता है। तेलीके बैलके समान (जन्म-मरणके चक्रमें) सदा घूमता रहता है, किंतु शार्ङ्गपाणि भगवान्‌का भजन नहीं करता। सोनेसे जैसे चोर परच जाय, वैसे ही यह दुष्ट भी विषयोंसे परच गया है; (विषय-सेवनमें) अत्यन्त उतावला है और मन्दबुद्धि है। जैसे मछली चारेके लोभमें फँसकर बनसीको नहीं देखती और उससे बिंध जाती है, उसी प्रकार इसने भी विषयोंके चसकेमें पड़कर मृत्युके पाशको नहीं देखा। जैसे फतिंगा ज्वालासे प्रेम करके उसके सामने खड़े रहकर हठपूर्वक प्रत्यक्ष अपने शरीरको जला देता है, वैसे ही यह विषयोंमें आसक्त होकर अपार पाप करके व्याकुल होता है; फिर भी तनिक भी नहीं सँभलता (सावधान रहता)। जैसे बंदर सर्दी दूर करनेके लिये गुञ्जा एकत्र करके उसके पास स्थिर होकर बैठता है, वैसे ही यह शठ विषयोंके ही वशमें रहता है, उन्हें व्यर्थ (सुख देनेमें असमर्थ होनेपर भी) कभी छोड़ता नहीं। जैसे पक्षिश्रेष्ठ तोता सेमरके उत्तम रंगके (लाल) फूलको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है; किंतु उसके फलको चोंचसे छूते ही मुखमें रुई भर जाती है, (वैसे ही भोगोंके बाहरी सौन्दर्य-को देखकर मन उनपर लुब्ध होता है; किंतु उनके मिलनेपर कोई सुख तो होता नहीं, निराशा होती है और उनको पानेमें पाप होनेके कारण) दुःख-के कुएँमें (अपार दुःखमें) पड़ता है। जहाँ (जिस योनिमें भी यह) गया, वहाँ अच्छाई (सत्कर्म) इसे अच्छे नहीं लगते। सब किसीसे संकुचित रहता है। ज्ञान, वैराग्य और भगवान्‌की भक्ति—इनमें कहीं निमग्न नहीं हुआ। सूरदासजी कहते हैं—इस मनके किये हुए कर्मोंका एक मुखसे और कहाँतक वर्णन करूँ? प्रभो! मैं पतित हूँ और आप पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः अपने सुयशकी लज्जाकी रक्षा करें।

[१६२]

मेरौ मन मति-हीन गुसाईं ।
सब सुख निधि पद-कमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईं ॥
फिरत वृथा भाजन अवलोकत, सूनैं सदन अज्ञान।
तिहिं लालच कबहूँ, कैसैं हूँ, तृप्ति न पावत प्रान ॥
कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान।
जहँ-जहँ जात, तहीं-तहिं त्रासत, अस्म, लकुट पद-त्रान ॥
तुम सर्वज्ञ, सबै विधि पूरन, अखिल भुवन निज नाथ।
तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ, भ्रमत भ्रमनि कैं साथ ॥

हे स्वामी ! मेरा मन बुद्धिहीन है। समस्त सुखोंकी निधि आपके चरण-कमलोंका (स्मरण) छोड़कर कुत्तेके समान (व्यर्थका) श्रम करता रहता है। यह अज्ञानी सूने घरोंमें (सुखहीन विषयोंमें) बर्तनोंको देखता (पदार्थोंका संचय करता) व्यर्थमें भटकता फिरता है। इस लालचमें कभी, किसी भी प्रकारसे प्राणोंको तृप्ति (संतोष) नहीं मिलती। यह दुर्बुद्धि मूर्ख एक-एक ग्रास (थोड़े-थोड़े सुख) के लिये कितना अपमान सहता है। जहाँ-जहाँ जाता है; वहीं-वहीं पत्थर, डंडे और जूते (नाना प्रकारके दुःख) इसे भयभीत करते हैं ? आप सर्वज्ञ हैं, सब प्रकारसे परिपूर्ण हैं और समस्त लोकोंके तथा मेरे भी स्वामी हैं। सूरदासजी कहते हैं—ऐसे आपको छोड़कर यह महाशठ भ्रमोंको लिये भटकता रहता है।

राग धनाश्री

[१६३]

जन के उपजत दुख किन काटत ?
जैसैं प्रथम अषाढ़ आँजु तृन, खेतिहर निरखि उपाटत ॥
जैसैं मीन किलकिला दरसत, ऐसैं रहो प्रभु डाटत।
पुनि पाछैं अघसिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत ॥

(हे प्रभु !) जैसे कृषक आषाढ़ महीनेमें उगते हुए तृणोंको देखकर बढ़नेसे पहले ही उखाड़ देते हैं, वैसे ही आप भक्तके दुःखोंको उत्पन्न होते ही क्यों नष्ट नहीं कर देते ? हे स्वामी ! जैसे मछलीको किलकिला (मछली खानेवाले) पक्षीका बराबर दर्शन होता रहे, ऐसे ही आप मुझे बराबर डाँटते रहे। सूरदासजी कहते हैं कि पाप फिर पीछे तो समुद्रके समान बढ़ जाते हैं, पर जबतक वे गड्ढेके समान रहते हैं, तभीतक आप उन्हें भर क्यों नहीं देते ?

राग कान्हरौ

[१६४]

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैंकु तिहारैं काज ॥
माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहिं साज।
देखत-सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज ॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज।
दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ़्यौ जहाज ॥
लीजै पार उतारि सूर कौं, महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीब-निवाज ॥

हे प्रभु! अपने सुयशकी लज्जा रखिये। मैं महापतित हूँ; कभी थोड़ा भी तुम्हारे काममें नहीं आया (जरा भी भजन नहीं किया)। अत्यन्त बलवान् मायाके द्वारा भवन, सम्पत्ति, स्त्री आदिके बन्धन (मोह) में बाँध दिया गया हूँ। देखता हूँ, सुनता हूँ और (मोहके दोष) सब जानता हूँ, फिर भी बाज नहीं आया (उसे छोड़ नहीं सका)। कहा जाता है कि आपने बहुत-से पतितोंका उद्धार किया है, मैंने अपने कानोंसे भी यह शब्द (संतोंद्वारा) सुना है। (मेरी दशा यह है कि) केवटको (नदी पार करनेकी) उतराई तो दी नहीं जा पाती और बैठना जहाजपर चाहता हूँ। (किसी सामान्य देवताको प्रसन्न करनेकी शक्ति नहीं और आपकी शरण

लेना चाहता हूँ) हे व्रजराज महाराज ! इस सूरदासको (भवसागरसे) पार उतार दीजिये । हे स्वामी ! मैं आपसे कोई नयी बात करनेको नहीं कहता हूँ, आप तो सदासे गरीबोंपर कृपा करनेवाले हैं ।

राग बिलावल

[१६५]

महा प्रभु, तुम्हें बिरद की लाज ।
कृपा-निधान, दानि, दामोदर, सदा सँवारन काज ॥
जब गज चरन ग्राह गहि राख्यौ, तबहीं नाथ पुकार्‌यौ ।
तजि कै गरुड़ चले अति आतुर, नक्र चक्र करि मार्‌यौ ॥
निसि-निसि ही रिष लिए सहस-दस दुरबासा पग धार्‌यौ ।
ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबार्‌यौ ॥
हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कौं, बहुत सासना जार्‌यौ ।
रहि न सके, नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछार्‌यौ ॥
दुस्सासन गहि केस द्रौपदी, नगन करन कौं ल्यायौ ।
सुमिरतहीं ततकाल कृपानिधि, बसन-प्रवाह बढ़ायौ ॥
मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय मैं गरबाए ।
जीत्यौ जरासंध, रिपु मार्‌यौ, बल करि भूप छुड़ाए ॥
महिमा अति अगाध, करुनामय भक्त हेत हितकारी ।
सूरदास पर कृपा करौ अब, दरसन देहु मुरारी ॥

मेरे महान् स्वामी ! आपको ही अपने सुयशकी लज्जा है ! कृपानिधान परमदानी, हे दामोदर ! आप सदा (भक्तोंके) कार्य बनानेवाले हैं । जब गजराजका पैर ग्राहने पकड़ा तब गजराजने त्रिभुवनके स्वामीको पुकारा, (पुकारते ही) प्रभु गरुड़को भी (पीछे) छोड़कर अत्यन्त उतावलीसे दौड़ पड़े और ग्राहको अपने चक्रसे मार दिया । महर्षि दुर्वासा रात रहते ही (बड़े सबेरे) दस

हजार ऋषि लिये और वनमें (भोजन करने पाण्डवोंके यहाँ) पधारे; तब श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ तत्काल प्रकट हो गये (तथा शाकका पत्ता खाकर विश्वको तृप्त करके) राजा युधिष्ठिरके प्राणोंकी (शापसे) रक्षा कर ली। हिरण्यकशिपुने भक्त प्रह्लादको बहुत कष्ट देकर संतप्त किया, इसपर भगवान् स्थिर नहीं रह सके, नृसिंहरूप धारण करके असुरको अपने हाथों पकड़कर पछाड़ दिया (और मार डाला)। दुःशासन बाल पकड़कर द्रौपदीको (सभामें) नंगी करनेके लिये ले आया; किंतु (द्रौपदीके) स्मरण करते ही कृपानिधान प्रभुने तत्काल वस्त्रका प्रवाह बढ़ा दिया (नदीकी धाराके समान द्रौपदीका वस्त्र अनन्त हो गया)। मगधनरेशने बहुत-से राजाओंको जीत लिया था, इससे उसे अपने मनमें कुछ गर्व हो गया था। उस जरासंधरूपी शत्रुको जीतकर (भीमके द्वारा) मरवा दिया और बलपूर्वक राजाओंको (उसकी कैदसे) छुड़ा दिया। (आपकी) महिमा अत्यन्त अथाह है, (आप) करुणामय और भक्तोंके लिये परम हितकारी हैं। सूरदासजी कहते हैं—हे मुरारि! मुझपर कृपा करके अब दर्शन दो!

राग धनाश्री

[१६६]

सरन आये की प्रभु, लाज धरिये।
सध्यौ नहिं धर्म सुचि सील, तप, व्रत कछू,
कहा मुख लै तुम्हें बिनै करिये॥
कछू चाहौं कहौं, सकुचि मन मैं रहौं,
आपने कर्म लखि त्रास आवै।
यहै निज सार, आधार मेरौ यहै,
पतित-पावन बिरद बेद गावै॥
जन्म तैं एक टक लागि आशा रही,
बिषय-बिष खात नहिं तृप्ति मानी॥

जो छिया छरद करि सकल संतनि तजी,
तासु तैं मूढ़-मति प्रीति ठानी ॥
पाप-मारग जिते, सबै कीन्हे तिते,
बच्यौ नहिं कोउ, जह सुरति मेरी ।
सूर अवगुन भरयौ, आइ द्वारैं परयौ,
तकै गोपाल अब सरन तेरी ॥

हे प्रभु ! शरणमें आयेकी लज्जा रखिये । मुझसे कोई धर्म, पवित्रता, शील, तप, व्रत आदि साधते नहीं बना, तब क्या मुख लेकर आपसे प्रार्थना करूँ । कुछ कहना तो चाहता हूँ; किंतु मनमें संकोच करके चुप रह जाता हूँ, अपने कर्मोंको देखकर (प्रार्थना करनेमें भी) भय लगता है । मुझे यही एक बल है, यही मेरा आधार है कि आपके पतितपावन यशका वेद भी गान करते हैं । जन्मसे लेकर निर्निमेष (निरन्तर) यही आशा लगी रही है (इसी आशाके कारण) विषयरूपी विषको खानेमें (विषयसेवनमें) कभी तृप्ति नहीं मानी । जिस मायाको मल एवं वमनके समान सभी संतोंने त्याग दिया है, उसीसे इस मूढ़बुद्धिने प्रेम कर रखा । जहाँतक मेरी स्मरण-शक्ति है (जहाँतक मुझे स्मरण है) जितने भी पाप-मार्ग हैं, उन सबका मैंने अनुसरण किया है, कोई भी (पाप) मुझसे बचा नहीं है । यह सूरदास अवगुणोंसे भरा है; किंतु हे गोपाल ! अब तुम्हारे दरवाजेपर आकर पड़ गया है और तुम्हारी शरण ताक रहा है । (तुम इसे अब शरणमें ले लो !)

[१६७]

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारौ ।
कीजै लाज सरन आए की, रबि-सुत-त्रास निवारौ ॥
जोग-जज्ञ-जप-तप नहिं कीन्हौ, बेद बिमल नहिं भाख्यौ ।
अति रस-लुब्ध स्वान, जुठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ ॥

जिहिं-जिहिं जोनि फिरयौ संकट बस तिहिं-तिहिं यहै कमायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित ह्वै बिषय परम बिष खायौ॥
जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ।
मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ॥
तुमहिं समान और नहिं दूजौ, काहि भजौं हौं दीन।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी, मति-हीन॥
तुम तौ अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि।
भजन-प्रताप नाहिं मैं जान्यौ, परयौ मोह की फाँसि॥
तुम सरवज्ञ, सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥

हे प्रभु! मेरे गुण-अवगुणका विचार मत कीजिये। मुझ शरणमें आये हुएकी लज्जा रखिये और यमराजके भयको दूर कर दीजिये। मैंने योग, यज्ञ, जप, तप नहीं किया है और निर्मल वेदका पाठ भी नहीं किया है। जूठेके लोभी कुत्तेके समान विषय-रसका अत्यन्त-लोभी रहा, चित्तको विषयसे दूर नहीं रखा। कर्मभोगके संकटसे विवश मैं जिस-जिस योनिमें घूमता रहा, मैंने यही कमाई की कि काम, क्रोध, मद, लोभसे ग्रस्त होकर विषयरूपी तीक्ष्ण विषको ही खाता रहा। यदि पर्वतराज हिमालयको स्याही बनाकर, समुद्रमें घोलकर, (स्वयं) ब्रह्माजी कल्पवृक्षकी कलम हाथमें लेकर सारी पृथ्वीपर मेरे अवगुणोंको लिख डालें, तो भी स्वामी! उनका अन्त नहीं होना है। आपके समान दूसरा कोई (दयामय) है नहीं, अतः दीन, कामी, कुटिल, मलीन, कुदर्शन (जिसको देखना अशुभ हो), अपराधी और बुद्धिहीन मैं दूसरे किसका भजन करूँ। आप तो सर्वरूप, अनन्त, दयानिधान, अविनाशी तथा सुखराशि हैं; किंतु आपके भजनके प्रतापको मैंने जाना नहीं, इसीसे मोहके पाश (बन्धन) में पड़ गया। आप सर्वज्ञ हैं, सब प्रकारसे समर्थ हैं,

अशरणको शरण देनेवाले हैं; अतः हे मुरारि ! मोहके समुद्रमें डूबते हुए सूरदासको भुजा फैलाकर (हाथ बढ़ाकर) पकड़ (उबार) लीजिये ।

राग कान्हरौ

[१६८]

तुम्हरी कृपा गुपाल गुसाईं, हौं अपने अज्ञान न जानत ।
उपजत दोष नैन नहिं सूझत, रबि की किरनि उलूक न मानत ॥
सब सुख निधि हरिनाम महामनि, सो पाएहुँ नाहीं पहिचानत ।
परम कुबुद्धि, तुच्छ रस लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत ॥
सिव कौ धन, संतनि कौ सरबस, महिमा बेद-पुरान बखानत ।
इते मान यह सूर महा सठ, हरि-नग बदलि, बिषय-बिष आनत ॥

मेरे स्वामी गोपाल ! अपने अज्ञानके कारण मैं आपकी कृपाको नहीं जानता हूँ । जैसे नेत्रोंमें उत्पन्न दोष नेत्रोंसे दीखता नहीं, जैसे उल्लू सूर्य-की किरणोंको नहीं मानता, वैसे ही समस्त सुखोंकी निधि हरिनामरूपी महा-मणिको पाकर भी मैं पहचानता नहीं हूँ । अत्यन्त कुबुद्धि होनेके कारण तुच्छ (विषय-) रसका लोभी बनकर कौड़ियोंके लिये (तुच्छ भोगपदार्थोंके लिये) रास्तेकी धूल छानता (व्यर्थ कष्ट उठाता) हूँ । जो भगवान् शंकरका धन है, संतोंका सर्वस्व है, वेद-पुराण जिसकी महिमाका वर्णन करते हैं, सूरदासजी कहते हैं—इतने महामूल्यवान् हरिनामरूपी मणिको बदलकर यह महाशठ विषयरूपी विष ले आता है (नाम-स्मरणके बदले सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति चाहता है) ।

राग बिलावल

[१६९]

अपनैं जान मैं बहुत करी ।
कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी ॥
दूरि गयौ दरसन के ताईं, ब्यापक प्रभुता सब बिसरी ।
मनसा-बाचा-कर्म-अगोचर, सो मूरति नहिं नैन धरी ॥

गुन बिन गुनी, सुरूप रूप बिन, नाम बिना श्रीस्याम हरी ॥
कृपा-सिंधु-अपराध अपरिमित, छमौ, सूर तैं सब बिगरी ॥

अपनी समझसे मैंने बहुत उद्योग किया; किंतु मेरे स्वामी श्रीहरि ! आपकी कृपा किस प्रकार हो, मेरी समझमें नहीं आया । आपका दर्शन करनेके लिये दूर-दूर गया, परंतु आप सर्वव्यापक हैं (सर्वत्र हैं), यह आपका सब प्रभुत्व भूल गया । आप मन, वाणी और कर्मसे अगोचर हैं, ऐसी आपकी मूर्ति मैंने नेत्रोंमें नहीं रखी । निर्गुण होकर भी श्यामसुन्दर निखिल गुणमय हैं, निराकार होकर भी भुवनसुन्दर रूपधारी हैं, वे श्रीहरि अनाम कहे जाते हैं । सूरदासजी कहते हैं—हे कृपासिन्धु ! मेरे अपराध अपरिमित हैं (उनकी कोई सीमा नहीं । आपके रूपको मैं भूल ही गया) । मुझसे तो सब बिगड़ी ही है, आप मुझे क्षमा करें ।

[१७०]

तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी ।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी ॥
गरभ-बास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक जठर जरन नहिं दीन्हौ, कंचन-सी मम देह करी ॥
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हें, आदि-अंत लौं सब बिगरी ।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ॥

हे प्रभु ! आपने मेरे साथ बहुत उपकार किये । अपना स्मरण करनेके लिये मुझे मनुष्य-शरीर दिया; किंतु मुझ पापीसे कुछ नहीं हो सका । गर्भ-वासके समय मैं नीचे मुख किये लटक रहा था, अत्यन्त संकटमें था, वहाँ भी आपने मेरी याद भुलायी नहीं । (माताकी) जठराग्निमें मुझे जलने नहीं दिया, मेरे शरीरको सोनेके समान सुन्दर बना दिया । संसारमें जन्म लेकर मैंने बहुत पाप किये, प्रारम्भ (जन्म) से अन्त (मरण) तक मेरी सब बिगड़ी ही है । सूरदास तो पतित है, किंतु आप पतितोंका उद्धार

करनेवाले हैं, आपने अपने सुयशकी लज्जा रखी (अपने सुयशका ध्यान करके मेरा उद्धार किया)।

राग धनाश्री

[१७१]

माधौ जू, जौ जन तैं बिगरै।
तउ कृपाल, करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै॥
जैसैं जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै।
तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै॥
जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै।
तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै॥
धर बिधंसि नल करत किरषि हल, बारि, बीज बिथरै।
सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै॥
रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै?
छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै॥
कारन-करन, दयालु, दयानिधि, निज भय दीन डरै।
इहिं कलिकाल-ब्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै॥

माधवजी! यदि सेवकसे भूल हो जाय, तो भी करुणामय केशव! दयालु स्वामी (सेवककी उस भूलको) चित्तमें नहीं धारण करता (उसपर ध्यान नहीं देता)। जैसे माताके गर्भमें स्थित पुत्र (माताका) कोई अपराध करे (हाथ-पैर पटके), तो भी माता उसकी रक्षा और पोषण करती है और प्रसव होनेपर (प्रसन्नतासे) उसे गोदमें लेती है। यद्यपि मूर्ख (वृक्ष काटनेवाला) हाथमें कुल्हाड़ी लेकर चन्दनके वृक्षको जड़से काटता है, तब भी चन्दन अपनी स्वाभाविक शीतलताका त्याग नहीं करता, अपने शत्रु, काटनेवालेके शरीरके तापका हरण करता है। (उसे भी शीतलता देता है।) पृथ्वीको खोदकर, हल जोतकर (कृषक) नालियाँ बनाते हैं

पानीसे गीला करते हैं और बीज बिखेर देते हैं; इतनेपर भी (उनके अपराधपर ध्यान न देकर) पृथ्वी सर्दी-गर्मीको प्रत्यक्ष सहन करके उन बीजोंसे सुन्दर फल प्रदान करती है। दाँतोंसे कटनेपर जीभ बहुत दुःखित होती है, फिर भी क्या वह क्रोध करती है ? (दाँतोंका अपराध) क्षमा करके, सब क्षोभ छोड़कर (भोजनके) छहों रस लेकर उनके पास ही घूमती है। समस्त कारणोंके परम कारण, दयालु, दयानिधान प्रभु! यह दीन तो अपने (अपराधके) भयसे ही डरता है। इस कलिकालरूपी अजगरके मुखमें पड़ा हुआ सूरदास आपकी शरण जानेसे उद्धार पा जाय। (मैं आपकी शरण हूँ। मेरा उद्धार कर दें।)

राग कान्हरौ

[१७२]

दीन-नाथ ! अब बारि तुम्हारी।
पतित-उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँवारी॥
बालापन खेलत हीं खोयौ, जुवा बिषय रस मातैं।
बृद्ध भएँ सुधि प्रगटी मोकौं, दुखित पुकारत तातैं॥
सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भइ न्यारी।
स्रवन न सुनत, चरन-गति थाकी, नैन भए जलधारी॥
पलित केस, कफ कंठ बिरुंध्यौ, कल न परति दिन-राती।
माया-मोह न छाँड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख-थाती॥
अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई।
सूरदास-प्रभु करुना-सागर, तुम तैं होइ सो होई॥

हे दीनानाथ ! अब आपकी बारी है। पतितोंका उद्धार करनेवाले आप हैं, ऐसा आपका सुयश है—यह समझकर (अपने यशकी रक्षाके लिये) मेरी बिगड़ी (स्थिति) सुधार लीजिये। बचपन तो मैंने खेलनेमें नष्ट कर दिया और युवावस्था विषय-सुखसे मतवाला होकर बिता दी। वृद्ध होनेपर अब

मुझे ज्ञान हुआ है, इससे दुःखित होकर आपको पुकारता हूँ । (मुझे) पुत्रोंने छोड़ दिया, स्त्रीने छोड़ दिया, भाईने छोड़ दिया (यहाँतक कि) शरीरका चमड़ा भी अलग हो गया (चमड़ेने मांस छोड़ दिया और झूल पड़ा), कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, चरणोंकी गति शिथिल हो गयी, नेत्रोंसे बराबर पानी बहता रहता है, केश पक गये, गलेको कफने रोक लिया, रात-दिन चैन नहीं पड़ता, (फिर भी) न तो तृष्णा पिंड छोड़ती है और न माया-मोह ही । ये ही दोनों दुःख देनेवाली पूँजी शेष हैं । सूरदासजी कहते हैं—अब यह कष्ट दूर करनेमें दूसरा कोई समर्थ नहीं है । हे मेरे करुणासागर स्वामी ! आपसे ही जो कुछ होगा, वह होगा ।

राग मारू

[१७३]

सो कहा जु मैं न कियौ (जौ) सोइ चित धरिहौ ।
पतित-पावन बिरद साँच (तौ) कौन भाँति करिहौ ॥
जब तैं जग जनम लियौ, जीव नाम पायौ ।
तब तैं छुटि औगुन इक नाम न कहि आयौ ॥
साधु-निंदक, स्वाद-लंपट, कपटी, गुरु-द्रोही ।
जेते अपराध जगत, लागत सब मोही ॥
गृह-गृह, प्रति द्वार फिर्‌यौ, तुम कौं प्रभु छाँड़े ।
अंध अंध टेकि चलै, क्यौं न परै गाड़े ॥
सुकृती सुचि सेवक जन काहि न जिय भावै ।
प्रभु की प्रभुता यहै जु दीन सरन पावै ॥
कमल-नैन करुनामय, सकल-अँतरजामी ।
बिनय कहा करै सूर, कूर, कुटिल, कामी ॥

वह क्या (पाप) है जो मैंने नहीं किया (मैंने तो सभी पाप किये हैं; किंतु) आप यदि उसीको चित्तमें रखेंगे (मेरे कर्मोंपर ही ध्यान

देंगे) तो आपका जो पतित-पावन होनेका यश है, उसे किस प्रकार सत्य बनायेंगे ? जबसे मैंने संसारमें जन्म लिया। (केवल इस जन्मकी बात नहीं,) जबसे मेरा जीव नाम पड़ा, तबसे (अपने जीवत्वके प्रारम्भसे) अबतक दुर्गुणोंको छोड़कर आपका एक भी नाम मुझसे कहा नहीं गया। (मैं) सत्पुरुषोंकी निन्दा करनेवाला, स्वादका लोभी, कपटी और गुरुजनोंसे शत्रुता करनेवाला हूँ, संसारमें जितने अपराध हैं, सभी मुझपर लागू होते हैं। हे स्वामी ! आपको छोड़कर घर-घर, दरवाजे-दरवाजे भटकता फिरा हूँ। अंधा यदि अंधेका ही सहारा लेकर चले तो गड्ढेमें क्यों नहीं गिरेगा ? (मैं अज्ञानी अज्ञानियोंकी सम्मतिसे ही कार्य करता रहा, फिर मेरा पतन स्वाभाविक ही है।) पुण्यात्मा और पवित्र सेवक एवं भक्त भला, किसके चित्त-को अच्छे नहीं लगते; किंतु स्वामीका स्वामित्व तो इसमें सफल है कि दीन पुरुष उसकी शरण प्राप्त कर ले। हे कमललोचन ! आप करुणामय हैं और सबके हृदयकी बात जाननेवाले हैं (मेरे हृदयकी दशा जानकर दया करें।) यह क्रूर, कुटिल, कामी सूरदास (और क्या) प्रार्थना करे ?

राग सारंग

[१७४]

कौन गति करिहौ मेरी नाथ !
हौं तौ कुटिल, कुचील, कुदरसन, रहत विषय के साथ ॥
दिन बीतत माया कैं लालच, कुल-कुटुंब कैं हेत।
सिगरी रैनि नींद भरि सोवत, जैसैं पसू अचेत ॥
कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल सायर मसि घोरै।
लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दोष नहिं ओरै ॥
गज, गनिका अरु बिप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे।
यहै जानि अपराध करे मैं, तिनहू सौं अति भारे ॥
लिखि लिखि मम अपराध जनम के, चित्रगुप्त अकुलाए।
भृगु रिषि आदि सुनत चक्रित भए, जम सुनि सीस डुलाए ॥

आपको किस प्रकार प्रसन्न करूँ? हे सर्वसमर्थ ! सर्वज्ञ ! कृपानिधि ! अशरण-शरण ! संसार-रूपी जालके हरणकर्ता ! दयानिधान ! आप ही सूरदासकी यह गति (हाल) सुनें । यह (मैं) कृपण इस समय और किससे (अपनी यह दशा) कहूँ ?

राग गूजरी

[१७७]

कृपा अब कीजिऐ, बलि जाउँ ।
नाहिन मेरैं और कोउ, बलि, चरन-कमल बिन ठाउँ ॥
हौं असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ ।
तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम-उधारन नाउँ ॥
काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढ़ौ, देखत काहि सुहाउँ !
असरन-सरन नाम तुम्हरौ, हौं कामी, कुटिल, निभाउँ ॥
कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ ।
सूर पतितपावन पद-अंबुज, सो क्यौं परिहरि जाउँ ॥

(प्रभो !) मैं आपपर बार-बार बलिहारी हूँ, अब मुझपर कृपा कीजिये । आपके चरण-कमलोंको छोड़कर मेरे लिये और (कोई आश्रय) स्थान नहीं है । मैं अपवित्र, अकर्मी और अपराधी हूँ; अतः आपके सम्मुख होनेमें (शरण आनेमें) लज्जित हो रहा हूँ । लेकिन हे केशव ! आप तो कृपालु हैं, करुणानिधि हैं, आपका नाम ही अधमोद्धारण है । (आपको छोड़) किसके दरवाजेपर जाकर खड़ा होऊँ, किसे देखनेमें मैं भला लगूँगा । मैं तो कामी और कुटिल हूँ और आपका नाम अशरण-शरण है; अतः आपके यहाँ ही मेरा निर्वाह हो सकता है । मैं बहुत ही पापी और मलिन-मन हूँ, सेंत-मेंतमें (बिना मूल्य) भी बिक नहीं सकता (कोई मुझे पूछनेवाला नहीं) सूरदासजी कहते हैं—(प्रभो !) आपके चरण-कमल पतितोंको पावन करनेवाले हैं, उन्हें छोड़कर मैं अन्यत्र क्यों जाऊँ ।

राग सारंग

[१७८]

दीन-दयाल, पतित-पावन प्रभु, बिरद बुलावत कैसौ ?
कहा भयौ गज-गनिका तारैं, जो न तारौ जन ऐसौ ॥
जो कबहूँ नर-जन्म पाइ नहिं नाम तुम्हारौ लीनौ ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तजि, अनत नहीं चित दीनौ ॥
अकमर, अबिधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति ।
जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति ॥
इंद्री-रस-बस भयौ, भ्रमत रह्यौ, जोइ कह्यौ सो कीनौ ।
नेम-धर्म-ब्रत, जप-तप-संजम, साधु संग नहिं चीनौ ॥
दरस-मलीन, दीन-दुरबल अति, तिन कौं मैं दुख-दानी ।
ऐसौ सूरदास जन हरि कौ, सब अधमनि मैं मानी ॥

जिसने मनुष्य-जन्म पाकर कभी तुम्हारा नाम नहीं लिया, काम-क्रोध-मद-लोभ और मोहको छोड़कर जिसने और कहीं चित्त नहीं लगाया; अकर्म (निषिद्ध कर्म), अविधि, अज्ञान, (बड़ोंका) अपमान, कुमार्ग, रीतिविरुद्ध आचरण आदि जिन कामोंका नाम लेनेसे ही पाप लगता है, वे ही अन्याय जो करता रहा; इन्द्रियोंके सुखके वश होकर भटकता रहा और जो इन्द्रियोंने कहा, वही किया; नियम, धर्म, व्रत, जप, तप, संयम तथा साधु पुरुषोंके सङ्गको जिसने पहिचाना ही नहीं; देखनेमें मलिन, दीन, अत्यन्त दुर्बल लोगोंको भी मैंने दुःख दिया। सूरदासजी कहते हैं कि मैं सभी अधम लोगोंमें भी अधिक अभिमानी होकर भी अपनेको श्रीहरिका भक्त कहता हूँ। हे प्रभो ! आपने गजराज और गणिकाका उद्धार कर दिया तो क्या हुआ ? जबतक ऐसे (मेरे समान) जनका उद्धार न कर लो, तबतक हे स्वामी ! आप अपने दीन-दयाल, पतित-पावन आदि सुयश-का ख्यापन कैसे करते हो ? (मेरा उद्धार किये बिना तो आपका सुयश सच्चा है नहीं)।

राग देवगंधार

[१७९]

मोहि प्रभु तुम सौं होड़ परी।
ना जानौं करिहौऽब कहा तुम, नागर नवल हरी॥
हुतीं जिती जग मैं अधमाई, सो मैं सबै करी।
अधम-समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी॥
मैं जु रह्यौ राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार दरी।
पावहु मोहि कहाँ तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी॥
एक अधार साधु-संगति कौ, रचि-पचि-मति सँचरी।
याहू सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी॥
मोकौं मुक्ति विचारत हौ प्रभु, पचिहौ, पहर-घरी।
श्रम तैं तुम्है पसीना ऐहै, कत यह टेक करी?
सूरदास विनती कह विनवै, दोषनि देह भरी।
अपनौ विरद सम्हारहुगे तौ, यामैं सब निवरी॥

हे प्रभु! मेरी आपसे होड़ (प्रतिस्पर्धा) पड़ गयी (ठन गयी) है। हे नवल-नागर (नित्य-नवीन चतुर) श्रीहरि! नहीं जानता कि आप अब क्या करेंगे। संसारमें जितनी अधमता थी, वह सब मैंने की है और अधमों (पापियों) के समूहका उद्धार करनेके लिये आपने अपने चित्तमें झक (हठ) पकड़ ली है। हे कमललोचन! मैं तो पापके पर्वतकी निगूढ़, गहरी एवं सीधी (दुरूह) कन्दरामें छिपा बैठा हूँ। मेरा उद्धार करनेके लिये आप मुझे कहाँ पायेंगे? (मेरे-जैसोंके उद्धारके लिये) एक सत्पुरुषोंकी संगतिका ही आधार आपने बड़े श्रमसे बनाया और बुद्धिमें उसका संचार भी किया (बुद्धिको यह बात आपने समझायी भी); किंतु यह सामग्री भी (मैंने) सम्हालकर नहीं रखी, अपने स्वभावकी ही हठ किये रहा (कुसङ्गमें ही पड़ा रहा)। हे प्रभु! आप मेरा उद्धार करनेका विचार करते हैं—परंतु इसमें घड़ी-प्रहर

(बहुत देर) आपको सिरपच्ची करनी पड़ेगी। परिश्रमके कारण आपको पसीना आ जायगा। (मेरे उद्धारकी) यह हठ ही आपने क्यों पकड़ी है। सूरदास यही प्रार्थना करता है कि यह शरीर तो दोषोंसे भरा है। आप अपना सुयश सम्हाल लेंगे (अपने पतित-पावन यशका विचार करेंगे) तो इसमें सब मेरे दोष निवृत्त हो जायँगे।

राग धनाश्री

(१८०)

नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ।
पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ॥
बड़े पतित पासंगहु नाहिं, अजामिल कौन बिचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यौ हठि तारौ॥
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ।
सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ?॥

हे स्वामी! यदि कर सकें तो आप मेरा उद्धार करें। मैं समस्त पतितोंमें प्रसिद्ध पतित हूँ और आपका नाम पतित-पावन है। बड़े-बड़े पतित मेरी तुलनामें पासंगके समान भी नहीं हैं, फिर बिचारा अजामिल तो कौन होता है (उसकी तो गणना ही क्या) नरक भी मेरा नाम सुनकर भाग खड़े हुए और यमराजने अपने यहाँ बलपूर्वक ताला लगा दिया (कि यह महापापी यहाँ आ न जाय) हे रमानाथ! तुमने अबतक क्षुद्र (बहुत तुच्छ) पतितोंको तारा (मुक्त किया) है, अब हृदयमें अभिमान मत करो। यदि आपके यहाँ सूरदास-जैसे पतितके लिये स्थान नहीं है तो (पतित-पावन होनेका) भारी सुयश आप क्यों ढोते हैं।

[१८१]

तुम कब मोसौ पतित उधार्‍यौ।
काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत कौ तार्‍यौ॥

गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उन कौ कौन निहोरौ।
गनिका तरी आपनौं करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ॥
अजामील तौ विप्र, तिहारौ हुतौ पुरातन दास।
नैंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास॥
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यो न कोऊ खोट।
तौ जानौं जौ मोहि तारिहौ, सूर कूर कबि ढोट॥

(प्रभो !) आपने मेरे-जैसे पतितका कब उद्धार किया ? हे हरि ! आप अपना (पतित-पावन) सुयश क्यों कहलवाते हैं ? (अबतक) आपने ही ऐसे लोगोंको तारा है, जिनके लिये आपको कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा। गीधराज जटायु, व्याध, गजराज, अहल्याको तारनेमें आपका क्या अहसान ? गणिका तो अपने कर्मसे (स्वयं तोतेको भगवन्नाम पढ़ाकर) तरी और प्रभु ! तुम्हारा यश हो गया। रहा अजामिल, वह ठहरा ब्राह्मण और तुम्हारा पुराना भक्त, थोड़ी-सी भूलसे आपने उसकी पहले तो इतनी दुर्गति की और फिर वैकुण्ठमें निवास दिया। जिन सब लोगोंका आपने पतित समझकर उद्धार किया, उनमें तो कोई बुरा था ही नहीं। सूरदासजी कहते हैं—मैं झूठा एवं मूर्ख कवि हूँ (मेरी बातका बुरा न मानें) मैं तो तब (आपको पतित-पावन) जानूँगा, जब आप मेरा उद्धार करेंगे।

[१८२]

पतित-पावन हरि, बिरद तुम्हारो, कौनैं नाम धर्‌यौ ?
हौं तौ दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारैं रटत पर्‌यौ॥
चारि पदारथ दिए, सुदामा तंदुल भेंट धर्‌यौ।
द्रुपद-सुता की तुम पति राखी, अंबर दान कर्‌यौ॥
संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, बिद्या-पाठ कर्‌यौ।
बेर सूर की निठुर भए प्रभु, मेरौ कछु न सर्‌यौ॥

हे हरि ! आप पतित-पावन हैं, ऐसी आपकी ख्याति (अवश्य) है, पर आपका यह पतित-पावन नाम रखा किसने है ? मैं तो दीन हूँ, दुखी हूँ, अत्यन्त दुर्बल हूँ और आपके दरवाजेपर पड़ा पुकार रहा हूँ, (किंतु आपने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया) सुदामाने जब आपके आगे चावलकी भेंट रखी, तब आपने उसे चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) दिये। द्रौपदीने (कटी अंगुली बाँधनेके लिये साड़ी फाड़कर) आपको वस्त्र दिया था, इससे आपने उसकी लज्जा बचायी। गुरु सान्दीपनिसे तुमने विद्या पढ़ी थी, अतः हे स्वामी ! आपने उन्हें (मरा हुआ) पुत्र लाकर दिया। किंतु सूरदासकी बार आप निष्ठुर बन गये। हे नाथ ! मेरा कुछ काम नहीं बना।

[१८३]

आजु हौं एक-एक करी टरिहौं।
कै तुमहीं, कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं॥
हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अबहौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिन करिहौं॥
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं उठिहै प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा॥

आज मैं एक-एक करके (पूरा निबटारा करके) टलूँगा। हे माधव ! या तो मेरी ही रहेगी या आपकी ही—अपने भरोसे (अपने बलपर) आपसे लड़ूँगा। मैं तो (आजसे नहीं) सात पीढ़ीसे (वंश-परम्परासे) पतित हूँ और पतित होकर ही (पुण्यात्मा बनकर नहीं) मुक्त होऊँगा। परन्तु अब मैं नंगा होकर नाचना चाहता हूँ (संकोच छोड़कर आपके विरुद्ध प्रचार करना चाहता हूँ)। आपको यशोहीन करके छोड़ूँगा। आप अपना विश्वास क्यों नष्ट करते हैं, मैंने तो हरिनामरूपी हीरा (बहु-मूल्य रत्न) पा लिया है। यह पतित सूरदास (आपके सामनेसे) तभी उठेगा, जब स्वामी ! आप हँसकर बीड़ा देंगे (आश्वासन देंगे कि आपने मुझे अपना लिया है)।

राग नट

[१८४]

कहावत ऐसे त्यागी दानि ।
चारि पदारथ दिए सुदामहि, अरु गुरु के सुत आनि ॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँग-पानि ।
लंका दई विभीषन जन कौं, पूरवली पहिचानि ॥
बिप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि ।
सूरदास सौं कहा निहोरौ, नैननि हू की हानि ! ॥

(प्रभो !) आप ऐसे त्यागी और दानी कहलाते हैं कि (मित्र) सुदामाको चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) दिये तथा गुरु सान्दीपनिको (यमलोकसे) पुत्र लाकर दिया । हे शार्ङ्गपाणि ! आपने बाण चलाकर रावणके दस मस्तक काट दिये और पूर्वजन्मके परिचयके कारण अपने भक्त विभीषणको लङ्काका राज्य दे दिया । ब्राह्मण सुदामाको पुराना प्रेम (गुरुगृहकी मित्रता) पहचानकर आपने अयाचक (माला-माल) कर दिया । (सभी अपने परिचितोंकी ही आपने भलाई की) सूरदाससे भला, क्या निहोरा है (मेरे द्वारा आपकी क्या भलाई हुई है कि आप मेरा भला करेंगे) मेरे तो नेत्रोंकी भी हानि हुई । (आपके पथमें लगकर तो मैं अंधा ही बना ।)

राग धनाश्री

[१८५]

मोसौं बात सकुच तजि कहियै ।
कत ब्रीड़त, कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियै ॥
कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं, कै कछु मो मैं झोलौ ।
तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, बचन एक जौ बोलौ ॥

तीन्यौ पन मैं ओर निवाहे, इहै स्वाँग कौं काछें।
सूरदास कौं यहै बड़ौ दुख, परत सबनिके पाछें॥

(हे प्रभो !) मुझसे संकोच छोड़कर जो बात हो, कह दीजिये। (यदि आपसे मेरा उद्धार न हो सके तो) लज्जा क्यों करते हैं, किसी दूसरेको बता दीजिये। उसीका (सेवक) होकर रहा जाय। हे प्रभु ! या तो आप पतितपावन नहीं हैं या मुझमें ही कोई दोष है। आप यदि कोई बात कह दें तो मैं अपनी (दशा) और सुधारूँ। इसी (पतितपनेके) स्वाँग (वेष) को धरे हुए मैंने तीनों अवस्थाएँ (बचपन, जवानी, बुढ़ापा) अन्ततक निभा दीं (बिता दीं)। अब तो सूरदासको यही बड़ा दुःख है कि सबसे पीछे पड़ रहा हूँ। (सबका उद्धार हुआ, पर मेरा उद्धार अबतक नहीं हुआ।)

राग सारंग

[१८६]

प्रभु, हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे, तिनहीं मैं लिखि काढ़ौ॥
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं?
कै प्रभु हारि मानि कै बैठौ, कै करौ बिरद सही।
सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि बही॥

हे स्वामी ! मैं बहुत देरसे (आशा लिये आपके द्वारपर) खड़ा हूँ। आपने जैसे दूसरे पतितोंका उद्धार किया है, उन्हींकी सूचीमें मेरा भी नाम लिखकर मुझे भी (संसारसागरसे) निकाल दीजिये। युग-युगसे आपका यही सुयश चला आया है (कि आप पतितपावन हैं), इसीसे पुकारकर प्रार्थना करता हूँ। पाँच पतितों (पतितोंके समाज) में मैं इसी लज्जासे मरा जाता हूँ कि मैं अब किससे कम (छोटा) पतित हूँ। हे स्वामी ! या तो पराजय मानकर बैठ जाइये (कि मेरा उद्धार कर नहीं सकते) या फिर अपने (पतित-पावन)

यशको सच्चा कीजिये। यदि यह पतित सूरदास झूठ कहता हो (कि मैं पतित हूँ) तो अपनी बही (कर्मका लेखा) खोजकर देख लो।

[१८७]

प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौं जनमत ही कौ॥
बधिक, अजामिल, गनिका तारी, और पूतना ही कौ।
मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ?॥
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहू तैं को नीकौ?॥

हे प्रभु! मैं सब पतितोंका तिलक (सबसे बड़ा पतित) हूँ। दूसरे सब पतित तो चार दिनके (थोड़े समयके) पतित होते हैं, मैं तो जन्मसे ही पतित हूँ। व्याध, अजामिल, गणिका और पूतनाका ही आपने उद्धार किया—मुझे छोड़कर आपने दूसरोंका उद्धार किया, यह हृदयका शूल (हार्दिक वेदना) कैसे मिटे। मैं लकीर खींचकर (दृढ़तापूर्वक) कहता हूँ कि मेरे समान पाप करनेमें समर्थ कोई नहीं है। सूरदास पतितोंमें इसी लज्जासे मरा जाता है कि मुझसे भी अच्छा (बड़ा पतित) कौन हो गया (जिसका उद्धार करके आप पतित-पावन कहलाते हैं)।

[१८८]

हौं तौ पतित-सिरोमनि, माधौ!
अजामील बातनि हीं तार्‌यौ, हुतौ जु, मोतैं आधौ॥
कै प्रभु हार मानि कै बैठौ, कै अबहीं निस्तारौ।
सूर पतित कौं और ठौर नहिं, है हरि-नाम सहारौ॥

हे माधव! मैं तो पतित शिरोमणि हूँ। आपने उस अजामिलका बात-बातमें (सहज ही) उद्धार कर दिया, जो मुझसे (पाप करनेमें) आधा ही था। हे स्वामी! या तो (मेरा उद्धार करनेमें) हार मानकर बैठ जाओ या अभी मेरा उद्धार करो। इस पतित सूरदासके लिये और कोई (आश्रय) स्थान नहीं है, केवल हरि-नामका ही सहारा है।

[१८९]

माधौ जू, मोतैं और न पापी।
घातक, कुटिल, चबाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी॥
लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, बिषय-जाप कौ जापी।
भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी॥
कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा-थापी।
मन-क्रम-बचन-दुसह सबहिनि सौं कटुक बचन-आलापी॥
जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम, तिन की गति मैं नापी।
सागर-सूर बिकार भर्यौ जल, बधिक-अजामिल बापी॥

हे माधवजी! मुझसे बड़ा और कोई पापी नहीं है। मैं हत्यारा, कुटिल, चुगलखोर, कपटी, अत्यन्त क्रूर तथा सबको कष्ट देनेवाला, लम्पट, धूर्त, दमड़ीका पुत्र (अत्यन्त लोभी) और विषयभोगोंके जपको ही जपनेवाला (सदा विषय-भोगोंकी चर्चा और चिन्तन करनेवाला) हूँ। अभक्ष्य पदार्थ खाकर और न पीने योग्य (शराब आदि) पीकर कभी भी मनसे तृप्त नहीं हुआ (सदा उनकी लालसा बनी रही)। कामी हूँ, स्त्री-सुखके सदा वशमें रहा और लोभ तथा तृष्णाकी स्थापना (पोषण) करता रहा। सभीके लिये मन, वाणी तथा कर्मसे दुस्सह हूँ (मेरे द्वारा सबको सब प्रकारसे कष्ट ही होता है) तथा कड़वी बात कहनेवाला हूँ। हे प्रभु! आपने जितने पापियोंका उद्धार किया है, उनकी गति (स्थिति) तो मेरी नापी हुई है। व्याध और अजामिल तो बावलीके समान (छोटे) पापी थे और सूरदास तो विकारों (पापों) के जलसे भरा समुद्र है।

राग कान्हरौ

[१९०]

हरि, हौं सब पतितनि पतितेस।
और न सरि करिबे कौं दूजौ, महामोह मम देस॥

आसा कैं सिंहासन बैठ्यौ, दंभ छत्र सिर तान्यौ।
अपजस अति नकीब कहि टेर्यौ, सब सिर आयसु मान्यौ॥
मंत्री काम-क्रोध निज दोऊ, अपनी अपनी रीति।
दुविधा-दुंद रहैं निसि-बासर, उपजावत बिपरीति॥
मादी लोभ, खवास मोहके, द्वारपाल अहँकार।
पाट बिरध ममता है मेरैं, माया कौ अधिकार॥
दासी तृष्ना भ्रमर तहल हित, लहत न छिन बिश्राम।
अनाचार-सेवक सौं मिलि कै करत चबाइनि काम॥
बाजि मनोरथ, गर्व मत्त गज, असत-कुमत रथ सूत।
पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट-मति दूत॥
गढ़वै भयौ नरकपति मोसौं, दीन्हे रहत किवार।
सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हे पाप अपार॥
निंदा जग उपहास करत, मग बंदीजन जस गावत।
हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत॥

हे हरि ! मैं सब पतितोंमें पतितेश (सबका राजा) हूँ। मेरी समानता करने योग्य दूसरा कोई (पतित) नहीं है। महामोह मेरा देश है। (महामोहमें सदा रहता हूँ।) आशाके सिंहासनपर बैठा हूँ (सदा आशा लगाये रहता हूँ)। दम्भरूपी छत्र मस्तकपर तना है (दम्भ करके शोभा बढ़ा रखी है)। बहुत बड़ा अपयशरूप चारण ही उच्चस्वरसे मेरी आज्ञाकी घोषणा करता है। सबने उस ही आज्ञाको शिरोधार्य करके मान लिया है (सभी मेरे अयशका वर्णन करते हैं)। काम और क्रोध मेरे दोनों मन्त्री हैं, जो अपनी-अपनी रीतिसे सलाह देते हैं (मैं काम या क्रोधके वश होकर ही विचार करता हूँ)। द्विविधा (संदेह) और द्वन्द्व (राग-द्वेष) सदा रात-दिन पास रहते और उलटी बुद्धि देते हैं (संदेह या द्वन्द्वके वश होकर उलटे आचरण करता रहता

हूँ)। लोभ मेरा दूकानदार है (लोभसे ही सब संग्रह करता हूँ)। मोह निजी सेवक है (मोहके वस रहता हूँ) और अहंकार द्वारपाल है (इससे ही मेरा अहंकार प्रकट होता रहता है)। बूढ़ी (पुरानी) ममता मेरा सिंहासन है (ममतापर ही मैं सदा आरूढ़ रहता हूँ) और मायाका ही (मेरे राज्यमें) अधिकार है। तृष्णा दासी बनकर सेवाके लिये घूमती रहती है, एक क्षण भी विश्राम नहीं पाती। (निरन्तर मैं तृष्णामग्न रहता हूँ)। अनाचाररूपी सेवकसे मिलकर चुगलखोरीके काम करता रहता हूँ (अनाचारी और चुगलखोर हूँ)। मनोरथ घोड़े हैं, गर्व मतवाला हाथी है, असत्य और कुमार्ग ही रथ एवं सारथि हैं (नाना मनोरथ करता, गर्वमें मतवाला रहता तथा असत्य एवं कुमार्गमें लगा रहता हूँ)। मन अग्रदूत है (मनकी ही बात मानता हूँ)। अधैर्य सैनिक है तथा दुष्टबुद्धि ही मेरा दूत है। गढ़पति बने हुए नरकके स्वामी यमराज मुझसे किवाड़ बंद रखते हैं (कहीं नरकमें मुझ-जैसा पापी घुस न जाय यह उन्हें भी भय है।) मैंने जो अपार पाप किये हैं, वे ही मेरी सेना है। जगत्‌के लोग जो मेरी निन्दा और हँसी करते हैं, मानो बंदीलोग वह मेरा सुयश गाते हैं। सूरदासजी कहते हैं—हठ, अन्याय और अधर्म नित्य मेरे द्वारपर नौबत बजाते हैं (हठ, अन्याय और अधर्मका ही मेरे यहाँ बोलबाला है)।

राग सारंग

[१९१]

हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा।
निंदा पर मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा॥
तृष्ना देसऽरु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी।
मंत्री काम कुमति दैबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी॥
गज-अहँकार चढ्यौ दिग-बिजयी, लोभ-छत्र करि सीस।
फौज असत-संगति की मेरी, ऐसौ हौं मैं ईस॥

मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार।
सूर पाप कौ गढ़ दृढ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार॥

हे हरि! मैं सब पतितोंका राजा हूँ। दूसरेकी निन्दासे जो मेरा मुख सदा भरा रहता है। (मैं सदा दूसरोंकी निन्दा करता रहता हूँ) वही संसारमें नित्य मेरी दुंदुभि बजती रहती है। तृष्णा मेरा देश है, मनोरथ (कामनाएँ) मेरी वीर सैनिक हैं और इन्द्रियाँ मेरी तलवार हैं। कुबुद्धि देनेके लिये काम मेरा मन्त्री है और क्रोध मेरा द्वारपाल बना हुआ है। अहंकारके हाथीपर चढ़ा मैं दिग्विजयी हूँ। मेरे मस्तकपर लोभरूपी छत्र है। असज्जन (दुष्ट पुरुषोंका) का सङ्ग मेरी सेना है, मैं ऐसा (पाप करनेमें) समर्थ हूँ। मोह और माया वंदीके समान मेरे गुण गाते हैं और अपार दोष मेरा यश गानेवाले मागध (भाट) हैं। इस सूरदासने सुदृढ़ किवाड़ लगाकर अपने पापरूपी किलेको दृढ़ बना लिया है।

राग धनाश्री

[१९२]

हरि, हौं सब पतितनि कौ राउ।
को करि सकै बराबरि मेरी, सो धौं मोहि बताउ॥
ब्याध, गीध, अरु पतित पूतना, तिन तैं बड़ौ जु और।
तिन मैं अजामील, गनिकादिक, उन मैं मैं सिरमौर॥
जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई, मो समान नहिं आन।
और हैं आज-काल के राजा, मैं तिन मैं सुलतान॥
अब लगि प्रभु तुम बिरद बुलाए, भई न मोसौं भेंट।
तजौ बिरद कै मोहि उधारौ, सूर कहै कसि भेंट॥

हे हरि! मैं सब पतितोंका राजा हूँ। भला, मेरी बराबरी (पाप करनेमें) कौन कर सकता है। (यदि कोई हो तो) उसे मुझे बता दीजिये। व्याध, गीध, जटायु और पतित पूतना तथा उनमें भी जो दूसरे बड़े हैं,

वे अजामिल, गणिका आदि—इन सबमें मैं शिरमौर—सर्वश्रेष्ठ (पापी) हूँ। जहाँ-तहाँ—सब कहीं मेरी यही बड़ाई सुनायी पड़ती है कि मेरे समान दूसरा कोई (पापी) नहीं है, दूसरे सब पापी तो आजकलके राजाओंके समान हैं और मैं उनमें सम्राट् हूँ। हे प्रभु ! अबतक आपने इसीलिये अपना (पतित-पावन) सुयश ख्यापित किया कि मुझसे आपकी भेंट नहीं हुई थी। सूरदास कमर कसकर कहता है कि या तो अब उस सुयशको छोड़ दें या मेरा उद्धार करें।

राग सारंग

[१९३]

हरि, हौं सब पतितनि को नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक॥
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ॥
बचन बाँह लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी।
यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी॥
यह सुनि जहाँ-तहाँ तैं सिमिटैं, आइ होइ इक ठौर।
अब कैं तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और॥
होड़ा-होड़ी मनहि भावते किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय तर डारौं, यहै हमारी भेंट॥
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हें भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरतहीं सूर पतित को टाँड़ौ॥

हे हरि ! मैं सब पतितोंका नायक हूँ। मेरी बराबरी कौन कर सकता है, दूसरा कोई इस योग्य नहीं है। हे स्वामी ! अजामिलको आपने जो पट्टा (आश्वासन) दिया था, वही पट्टा यदि लिखा हुआ मैं पा जाऊँ (आप मुझे भी आश्वासन दे दें कि एक बार किसी प्रकार

आपका नाम लेनेसे उद्धार हो जायगा) तो मेरे मनमें विश्वास हो जाय और दूसरे पतित भी बुला लूँ। आपके वचनोंके सहारेको गाँठ बाँध कर (दृढ़तासे) ले चलूँ और महान् सुख प्राप्त करूँ। यह शरणागतिका मार्ग चौगुना चलाऊँ, तब मुझे पूरा (पक्का) व्यापारी समझिये। आपका यह आश्वासन सुनकर जहाँ-तहाँ सब ओरसे पापीलोग एक स्थानपर आकर एकत्र हो जायँ। इस बार तो मैं अपने-आपको ही ले आया हूँ (अकेला ही शरणमें आया हूँ)। दूसरी बार और भी ले आऊँगा। परस्पर प्रति-स्पर्धा करके जिन्होंने भरपेट मनमाने पाप किये हैं, वे सब पापी लाकर आपके पैरोंके नीचे (शरणमें) डाल दूँ, यही मेरा उपहार होगा। आपका बहुत भरोसा समझकर ही पात्र भरकर (जीवनभर) पाप किये हैं। सूरदास कहते हैं—हे स्वामी ! पतितोंके इस समूहका तुरंत उद्धार कर दीजिये।

राग धनाश्री

[१९४]

मोसौं पतित न और गुसाईं।
अवगुन मोपैं अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यौ अब ताईं॥
जनम जनम तैं हौं भ्रमि आयौ, कपि गुंजा की नाईं।
परसत सीत जात नहिं क्यौंहू, लै लै निकट बनाईं॥
मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि-रस, ममता मोह बढ़ाईं।
जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौं उरझ्यौ, सूझी नहीं फँदाईं॥
सोवत मुदित भयौ सपने मैं पाई निधि जो पराईं।
जागि परैं कछु हाथ न आयौ, यौं जगकी प्रभुताईं॥
सेए नाहिं चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याईं।
सूर पतित कौं ठौर कहूँ नहिं, राखि लेहु सरनाईं॥

हे स्वामी ! मेरे समान पतित और कोई नहीं है। अबतक मैंने बहुत प्रयत्न किया; किंतु अब भी मुझसे अवगुण (दोष) छूटते नहीं।

जैसे बन्दर घुँघुचियोंको एकत्र करके पास सँभालकर रखता है, किंतु उनको छूनेसे किसी प्रकार भी सर्दी मिटती नहीं, वैसे ही (दुःख-निवारणके लिये भोगोंको एकत्र करनेके प्रयत्नमें व्यर्थ ही लगकर) अनेक जन्मोंसे मैं भटकता आ रहा हूँ । स्त्री और धनके सुखसे मोहित हुआ और उनमें ही ममता और मोह बढ़ाये रहा ! जैसे मछली चारेके लोभसे कँटियाँमें फँस जाती है, वैसे ही मैं जीभके स्वादमें उलझा रहा, मृत्युका फंदा मुझे दीखा ही नहीं । जैसे कोई सो रहा हो और स्वप्नमें दूसरेकी सम्पत्ति पाकर हर्षित हो, किंतु जग जानेपर कुछ हाथ न लगे वैसे ही संसारकी सब प्रभुता (क्षणभंगुर एवं मिथ्या) है । श्रीगिरिधरलालके चरणोंकी सेवा नहीं की, (उलटे) बहुत अन्याय किये । प्रभो ! इस पतित सूरदासके लिये कहीं स्थान नहीं है, अतः इसे आप अपनी शरणमें रख लें ।

राग जंगला--तिताला

[१९५]

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अन्तरजामी ॥
जो तन दियौ, ताहि बिसरायौ, ऐसौ, नोन-हरामी ।
भरि भरि उदर बिषै कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि सँग बिसरामी ।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी ॥
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी ।
सूरदास प्रभु अधम-उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ॥

मेरे समान कुटिल, दुष्ट और कामी कौन है ? हे करुणामय ! आपसे क्या छिपा है, आप तो अन्तर्यामी (हृदयकी बात जाननेवाले) हैं । मैं ऐसा नमकहराम (कृतघ्न) हूँ कि जिस प्रभुने शरीर दिया, उसको मैंने भुलवा दिया । गाँवके सूअरकी भाँति बार-बार पेट भरकर विषय-भोगके

लिये दौड़ता हूँ। सत्सङ्ग सुनकर (वहाँ जानेमें) आलस्य होता है (अथवा सत्सङ्गमें बैठनेपर आलस्य, निद्रा आती है) और विषयी (संसारासक्त) लोगोंके साथ विश्राम (सुख) मानता हूँ। श्रीहरिके चरणों (की सेवा) को छोड़कर भगवान्से विमुख लोगोंकी रात-दिन दासता करता हूँ। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्रीरमानाथ ! मैं तो परम पापी, अधम, अपराधी और सब पतितोंमें प्रसिद्ध पतित हूँ; किंतु नाथ ! आप अधमोंका उद्धार करनेवाले सुने जाते हैं। (मेरा भी उद्धार करें।)

राग धनाश्री

[१९६]

हरि, हौं महापतित, अभिमानी।
परमारथ सौं बिरत, विषय-रत भाव भगति नहिं नैंकहुँ जानी॥
निसि-दिन दुखित मनोरथ करि करि, पावतहुँ तृष्ना न बुझानी।
सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यों अंजुलि-पानी॥
बिमुखनि सौं रति जोरत दिन प्रति, साधुनि सौं न कबहुँ पहिचानी॥
तिहिं बिनु रहत नहीं निसि-बासर, जिहिं सब दिन रस-विषय बखानी
माया-मोह-लाभ के लीन्हैं, जानि न बृंदावन रजधानी।
नवल किसोर जलद-तनु सुंदर, बिसरयौ सूर सकल सुखदानी॥

हे हरि ! मैं महापतित और अभिमानी हूँ, परमार्थसे उदासीन और विषयभोगोंमें लगा रहता हूँ। भावपूर्वक भक्ति करना तनिक भी नहीं जानता। नाना कामनाएँ करता हुआ रात-दिन दुखी रहता हूँ, (कामनाके अनुसार भोग) मिलनेपर भी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। मृत्यु सिरपर सवार है, आयु अञ्जलिमें भरे पानीके समान बराबर घट रही है, परंतु मैं नीच इसे देखता नहीं। प्रतिदिन भगवान्से विमुख लोगोंके साथ प्रेम-सम्बन्ध जोड़ता रहता हूँ और साधु-पुरुषोंसे कभी परिचयतक नहीं किया। जो सभी दिन (सब समय) विषयसुखोंका वर्णन करता है, उसके बिना मैं रात-दिनमें

किसी समय रह नहीं पाता (सदा मुझे बहिर्मुख, विषय-चर्चा करनेवालोंका साथ अच्छा लगता है) माया, मोह और लोभके कारण (प्रेमकी) राजधानी श्रीवृन्दावनको नहीं जाना। सूरदासजी कहते हैं कि समस्त सुखोंके दाता नव-जलधरवर्ण परम सुन्दर श्रीव्रजराजकुमारको मैं भूल ही गया।

[१९७]

माधो जू, मोहि काहे की लाज।
जनम जनम यौं हीं भरमायौ, अभिमानी, बेकाज॥
जल-थल जीव जिते जग-जीवन निरखि दुखित भए देव।
गुन-अवगुन की समुझ न संका, परि आई यह टेव!॥
अब अनखाइ कहौं, घर अपनैं राखौ बाँधि बिचारि।
सूर स्वान के पालनहारै आवति हैं नित गारि॥

माधवजी! मुझे किस बातकी लज्जा? मैं तो अभिमानी हूँ और अनेक जन्मोंसे इसी प्रकार बिना काम—व्यर्थ भटक रहा हूँ। संसारमें जल और स्थलके जितने जीव हैं, हे देव! मेरे जीवनको (मेरी दशाको) देखकर सभी (दयासे) दुखी हुए, किंतु मुझे गुण-अवगुणकी न तो समझ है और न (अवगुण करनेमें) कोई शङ्का (भय) ही है; मुझे तो इसकी बान पड़ गयी है। अब झुँझलाकर कहता हूँ कि इस सूरदासरूपी कुत्तेको पालनेवाले स्वामी! विचार करके इसे अपने घर ही बाँधकर रखो; क्योंकि (इसके कारण आपको) सदा औरोंसे गाली आती (मिलती) है।

राग सारंग

[१९८]

माधौ जू, सो अपराधी हौं।
जनम पाइ कछु भलौ न कीन्हौ, कहौ सु क्यौं निबहौं॥
सब सौं बात कहत जमपुर की, गज पिपीलिका लौं।
पाप-पुन्य कौ फल दुख-सुख है, भोग करौ जोइ गौं॥

मोकौं पंथ बतायौ सोई, नरक कि सरग लहौं।
काकैं बल हौं करौं गुसाईं, कछु न भक्ति मोमैं॥
हँसि बोलौ जगदीस जगति-पति, बात तुम्हारी यौं।
करुनासिंधु कृपाल कृपा बिनु काकी सरन तकौं॥
बात सुनें तैं बहुत हँसौगे, चरन-कमल की सौं।
मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं॥
लै लै ते हथियार आपने सान धराए त्यौं।
जिनके दारुन दरस देखि कै, पतित करत ज्यौं-ज्यौं॥
दाँत चबात चले जमपुर तैं, धाम हमारे कौं।
ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न बतायौ, स्वपच कोरिया लौं॥
रिस भरि गए परस किंकर तब, पकर्‌यौ छुटि न सकौं।
लै लै फिरे नगर मैं घर-घर, जहाँ मृतक हो हौं॥
ता रिस मैं मोहि बहुतक मार्‌यौ, कहँ लगि बरनि सकौं।
हाय-हाय मैं पर्‌यौ पुकारौं, राम-नाम न कहौं॥
ताल-पखावज चले बजावत, समधी सोभा कौं।
सूरदास की भली बनी है, गर्जी गई अरु पौं॥

माधवजी! मैं वह अपराधी हूँ, जिसने (मनुष्य) जन्म पाकर कोई भलाई नहीं की; अब आप ही बताइये कि मेरा निर्वाह (उद्धार) किस प्रकार हो? हाथीमें चींटीतक (बड़े-छोटे) सबसे यमपुर (नरक)की बात कही गयी है कि पापका फल दुःख और पुण्यका फल सुख है, जिसके भोगका अवसर हो, उसे भोगना ही पड़ता है। मुझे भी (शास्त्रका) यही मार्ग बता दिया, फिर (अपने कर्मके अनुसार) नरक पाऊँ या स्वर्ग। किंतु हे स्वामी! किसके बलसे मैं (संसार-सागरसे) पार होऊँ? मुझमें तो कुछ भी भक्ति नहीं है। हे जगत्पति, जगदीश्वर! हँसकर बता दो कि 'तुम्हारी बात यों पटेगी (इस प्रकार तुम्हारा उद्धार होगा)।' हे

करुणासागर ! हे कृपालु ! आपकी कृपाको छोड़कर दूसरे किसकी शरण देखूँ ? आपके चरणकमलोंकी शपथ—मेरी बात (दशा) सुनकर आप बहुत हँसेंगे ! जब मेरा शरीर छूटने लगा, तब यमराजके घर (यमलोक) में जितने दूत थे, सबको उन्होंने (मुझे पकड़ने) भेज दिया। जिन यमदूतोंके दारुण स्वरूपको देखकर पापीलोग म्याऊँ-म्याऊँ (भयपूर्ण आर्त-स्वर) करने लगते हैं, वे अपने-अपने शान धराये (तीक्ष्ण) हथियार लेकर दाँत पीसते हुए (क्रोधमें भरे) यमलोकसे हमारे घरके लिये चल पड़े । (गाँवमें आकर) मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये; किंतु (मुझ पापीका नाम लेनेसे पाप होगा, इस भयसे) कोरी और चाण्डालतक किसीने उन्हें मेरा घर नहीं बतलाया। यमराजके वे सेवक तब अत्यन्त क्रोधमें भर गये, उन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं छूट सकता नहीं था। जहाँ मैं मृतक पड़ा था, वहाँसे लेकर नगरमें घर-घर मुझे घुमाते फिरे और उसी क्रोधमें मुझे बहुत मारा, (इतना मारा कि) उसका वर्णन मैं कहाँतक कर सकता हूँ। (यमदूतोंकी मारसे) पड़ा-पड़ा मैं 'हाय ! हाय !' करके पुकार किया; किंतु राम-नाम नहीं कहता था (राम-नाम मुखसे निकलता ही नहीं था)। सम्बन्धी लोग करताल-ढोलक बजाते हुए मेरे शवको सजाकर (श्मशानको) ले चले। सूरदासजी कहते हैं—मेरी अच्छी बनी (बड़ी दुर्गति हुई), दाव (पौ) तो गया ही, वस्त्र (चौपड़ खेलनेका कपड़ा) भी चला गया। (भजनका अवसर तो गया ही, मनुष्य-जन्म भी समाप्त हो गया।)

राग कान्हरौ

[१९९]

थोरे जीवन भयौ तन भारौ ।
कियौ न संत-समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ ॥
अति उनमत्त मोह-माया-बस, नहिं कछु बात बिचारौ ।
करत उपाव न पूछत काहू गनत न खाटौ-खारौ ॥
इंद्री-स्वाद-बिबस निसि-बासर, आप अपुनपौ हारौ ।
जल औंढ़े मैं चहुँ दिसि पैर्‍यो, पाउँ कुल्हारौ मारौ ॥

बाँधी मोट पसारि त्रिविध गुन, नहिं कहुँ बीच उतारौ।
देख्यौ सूर बिचारि सीस परि, तब तुम सरन पुकारौ॥

थोड़े-से जीवनमें ही शरीर भाररूप हो गया। कभी संतोंका सङ्ग नहीं किया और न आपका नाम ही लिया। मोह एवं मायाके वश होकर अत्यन्त उन्मत्त हो गया; किसी बातका कुछ विचार नहीं किया। न तो स्वयं (संसारसे पार होनेका) उपाय करता हूँ, न और किसीसे पूछता ही हूँ; खट्टे-कड़ुए (पाप-अन्याय) की कुछ गणना नहीं करता। इन्द्रियोंके स्वादमें रात-दिन विवश होकर स्वयं ही अपनेपन (मनुष्यत्व) को हार गया। गहरे पानीमें मैं चारों ओर तैरता रहा, अपने पैरमें स्वयं कुल्हाड़ी मार ली (स्वयं अपनी हानि कर ली)। तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) की गठरी फैलाकर बाँध ली और बीचमें कहीं पड़ाव नहीं है। सूरदासने (अपनी दशा) विचार करके देख ली, अब तो जब सिर पड़ी (मृत्युका समय आया) है, तब आपकी शरणकी पुकार की है (कि आप मुझे शरणमें ले लें)।

राग धनाश्री

[२००]

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल !
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ बिषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ, पखावज, चलत असंगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

*

हे गोपाल ! अब मैं बहुत नाच चुका। काम और क्रोधका जामा पहिनकर, विषय (चिन्तन) की माला गलेमें डालकर, महामोहरूपी नूपुर बजाता हुआ, जिनसे निन्दाका रसमय शब्द निकलता है (महामोहग्रस्त होनेसे निन्दा करनेमें ही मुझे सुख मिलता है), नाचता रहा। भ्रम (अज्ञान) से भ्रमित मन ही पखावज (मृदंग) बना। कुसङ्गरूपी चाल मैं चलता हूँ। अनेक प्रकारके ताल देती हुई तृष्णा हृदयके भीतर नाद (शब्द) कर रही है। कमरमें मायाका फेटा (कमरपट्टा) बाँध रखा है और ललाटपर लोभका तिलक लगा लिया है। जल और स्थलमें (विविध) स्वाँग धारणकर (अनेकों प्रकारसे जन्म लेकर) कितने समयसे—यह तो मुझे स्मरण नहीं (अनादि कालसे)—करोड़ों कलाएँ मैंने भली प्रकार दिखलायी हैं (अनेक प्रकारके कर्म करता रहा हूँ)। हे नन्दलाल ! अब तो सूरदासकी सभी अविद्या (सारा अज्ञान) दूर कर दो।

[२०१]

ऐसैं करत अनेक जन्म गए, मन संतोष न पायौ।
दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यौ, सकल लोक भ्रमि आयौ॥
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल तहाँ-तहाँ उठि धायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनि तैं कहूँ न जरत बुझायौ॥
सुत-तनया-बनिता-बिनोद रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ।
मैं अग्यान अकुलाइ अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ॥
भ्रमि-भ्रमि अब हार्‌यौ हिय अपनैं, देखि अनल जग छायौ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, कैसें जात नसायौ !॥

ऐसे (कर्म) करते हुए अनेक जन्म बीत गये, किंतु मनको संतोष नहीं प्राप्त हुआ। दिनोंदिन दुराशा बढ़ती ही गयी, उस दुराशामें लगा सम्पूर्ण लोकोंमें घूम आया। स्वर्ग, रसातल तथा पृथ्वी (के सुखों) की

बातें बार-बार सुनकर बार-बार उन-उन स्थानोंमें उठकर दौड़ा गया, किंतु काम-क्रोध-मद और लोभकी अग्निकी ज्वाला, कहीं भी बुझी नहीं (सर्वत्र इन दोषोंसे संतप्त ही रहा) ? पुत्र-पुत्री, स्त्री (परिवार) के आमोद-विनोदकी आसक्ति ज्वरके समान है, इस ज्वरके तापसे सदा जलता रहा । मैं अज्ञानी हूँ, व्याकुल होकर ज्वालामें मैंने और अधिक घी डाल दिया (भोग-तृष्णासे व्याकुल होकर और भोग पदार्थोंका सेवन करता रहता) भटकते-भटकते अब अपने हृदयमें यह देखकर हार गया (निराश हो गया) हूँ कि सारे संसारमें अग्नि व्यापक हो गयी है (सारा विश्व तृष्णासे जल रहा है) सूरदासजी कहते हैं—हे प्रभो ! आपकी कृपाके बिना यह संताप कैसे नष्ट किया जा सकता है ?

[२०२]

जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ ।
हरि-सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ ॥
अब की बार मनुष्य-देह धरि कियौ न कछू उपाइ ।
भटकत फिर्‌यौ-स्वान की नाईं नैंकु जूठ कै चाइ ॥
कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल-बिमल जस गाइ ।
प्रेम सहित पग बाँधि घूँघुरु सक्यौ न अंग नचाइ ॥
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहुँ रुचि उपजाइ ।
आनि भक्ति करि, हरि-भक्तनि के कबहुँ न धोए पाइ ॥
अब हौं कहा करौं करुनामय, कीजै कौन उपाइ ।
भव-अंबोधि, नाम निज नौका, सूरहि लेहु चढ़ाइ ॥

(मनुष्य) जीवन तो व्यर्थ ही समाप्त हो गया । न तो श्रीहरिका स्मरण किया, न गुरुदेवकी सेवा की और न व्रजभूमिमें जाकर निवास ही किया । इस बार मनुष्य-शरीर धारण करके (संसारसे मुक्त होनेका) कोई उपाय नहीं किया । थोड़ी-सी जूठन (विषयभोग) पानेकी लालसासे कुत्तेकी भाँति भटकता रहा, किंतु निर्मल यशका गान करके श्रीगिरिधरलालको कभी

प्रसन्न नहीं किया। प्रेमके साथ पैरोंमें घुँघरू बाँधकर (भगवान्‌के सामने कीर्तन करते हुए) शरीरको कभी नचा नहीं सका (कीर्तन करते हुए लोक-लज्जा त्यागकर नृत्य नहीं कर सका)। तनिक भी रुचि उत्पन्न करके (प्रेमपूर्वक) श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं किया और भगवद्भक्तोंको भक्ति-पूर्वक (अपने घर) ले आकर (उनके) चरण भी नहीं धोये। हे करुणामय ! अब मैं क्या करूँ? कौन साधन (उपाय किया) जाय ? (हे प्रभो ! अब तो) इस भवसागरमें सूरदासको अपने नामकी नौकापर चढ़ा लो (नाममें अनुराग दो) !

राग गौरी

[२०३]

माधौ जू, तुम कत जिय बिसर्‌यौ ?
जानत सब अंतर की करनी, जो मैं करम कर्‌यौ ॥
पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भर्‌यौ ।
हौं उन तैं न्यारौ करि डार्‌यौ, इहिं दुख जात मर्‌यौ ॥
फिरि-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौ, अब सुख-सरन पर्‌यौ।
इहिं अवसर कत बाहँ-छुड़ावत, इहि डर अधिक डर्‌यौ ॥
हौं पापी, तुम पतित-उधारन, डारे हौं कत देत ?
जौ जानौ यह सूर पतित नहिं, तौ तारौ निज हेत ॥

माधवजी ! आपने क्यों मुझे हृदयसे विस्मृत कर दिया ? सबके हृदयके कर्म (संकल्प) आप जानते हैं, अतः मैंने जो कर्म किये, उन्हें भी आप जानते ही हैं। संसारमें जो पतितोंका समूह भरा हुआ था; उसमें सबका आपने उद्धार कर दिया, किंतु मुझे उन सबसे अलग करके आपने छोड़ दिया, इसी दुःखसे मैं मरा जाता हूँ। बार-बार मैं अनन्त-अनन्त योनियोंमें भटकता रहा हूँ, अब आप सुखस्वरूपकी शरणमें आया हूँ, इस अवसरपर आप मुझसे अपना हाथ (सहारा) क्यों छुड़ा रहे हैं—इस भयसे तो मैं अत्यन्त भयभीत हो गया हूँ। मैं पापी हूँ और आप पतितोंका

उद्धार करनेवाले हैं, फिर मेरा त्याग क्यों कर रहे हैं ? यदि आप यह समझते हों कि सूरदास पतित नहीं है तो अपना प्रेम समझकर मेरा उद्धार कीजिये (क्योंकि जो पतित नहीं होगा वह तो आपका प्रेमी होगा ही)।

राग केदारौ

[२०४]

जौ पै तुमही बिरद बिसारौ।
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय, कृपिन करम कौ मारौ !
दीन-दयाल, पतित-पावन, जस बेद बखानत चारौ।
सुनियत कथा पुराननि, गनिका, ब्याध, अजामिल तारौ ॥
राग-द्वेष, बिधि-अबिधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारौ।
कियौ न कबहुँ बिलंब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ ॥
अगनित गुण हरि नाम तिहारैं, अजौं अपुनपौ धारौ।
सूरदास-स्वामी, यह जन अब करत करत स्रम हारौ ॥

हे करुणामय ! यदि आप ही अपने (पतित-पावन) सुयशको विस्मृत कर दें तो कहिये कर्मका मारा (भाग्यहीन) यह कृपण कहाँ (किसकी शरणमें) जाय ? चारों वेद आपका सुयश वर्णन करते हैं कि आप दीन-दयाल और पतित-पावन हैं। पुराणोंमें यह कथा भी सुनी जाती है कि आपने गणिका, व्याध और अजामिल (जैसे पापियों) का उद्धार किया है। प्रेमसे, द्वेषसे, विधिपूर्वक या बिना किसी विधिके, अपवित्र दशामें या पवित्र होकर (किसी भी प्रकारसे) जिस किसीने जहाँ कहीं भी हे प्रभु ! आपका स्मरण किया, आपने वहीं बड़े आदरसे (तत्परतासे) उसके शोकको दूर किया, कभी भी (इसमें) हे कृपानिधि ! आपने विलम्ब नहीं किया। हे श्रीहरि ! आपके अगणित गुण और अगणित नाम हैं। अब भी आप अपनेपन (पतित-पावन स्वरूप) को धारण कीजिये (मेरा उद्धार कीजिये) ! सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! आपका यह सेवक तो अब परिश्रम करते-करते हार गया (थक गया) है।

राग गौरी

[२०५]

प्रभु मेरे, मोसौ पतित उधारौ।
कामी, कृपिन, कुटिल, अपराधी, अघनिभरयौ बहु भारौ॥
तीनौ पन मैं भक्ति न कीन्ही, काजर हू तैं कारौ।
अब आयौ हौं सरन तिहारी, ज्यौं जानौ त्यौं तारौ॥
गीध-ब्याध-गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ।
सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै लै भक्तनि मैं डारौ॥

मेरे स्वामी! मेरे-जैसे पतितका उद्धार कीजिये। मैं कामी, कृपण, कुटिल, अपराधी और पापके भारी भारसे भरा हुआ हूँ। कज्जलसे भी अधिक काला (मलिन) हूँ। तीनों अवस्थाओं (बालकपन, किशोरावस्था और तरुणावस्था) में मैंने भक्ति नहीं की। अब (बुढ़ापेमें) आपकी शरणमें आया हूँ, जैसे आप उचित समझें वैसे ही मेरा उद्धार करें। गीध, व्याध, गजराज, गणिका आदिने आपका नाम ले-लेकर अपना उद्धार कर लिया। सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी! कृपालु होकर आप मुझे भी अपने भक्तोंमें सम्मिलित कर लीजिये।

[२०६]

जानिहौं अब बाने की बात।
मोसौ पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ बदिहौं निज तात॥
गीध-ब्याध, गनिकाऽरु अजामिल, ये को आहिं बिचारे।
ये सब पतित न पूजत मो सम, जिते पतित तुम तारे॥
जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौंहू पतित न छोटौ।
बिरद आपुनो और तिहारौ, करिहौं लोटक-पोटौ॥
कै हौं पतित रहौं पावन ह्वै, कै तुम बिरद छुड़ाऊँ।
द्वै मैं एक करौं निरवारौ, पतितनि-राव कहाऊँ॥

सुनियत है, तुम बहु पतितनि कौं, दीन्हौ है सुखधाम ।
अब तौ आनि पर्‌यौ है गाढ़ौ, सूर पतित सौं काम ॥

अब आपके (पतित-पावन) स्वरूपकी बात (वास्तविकता) जानूँगा । हे प्रभु ! मेरे-जैसे पतितका उद्धार करें, तब आपको अपना पिता मानूँगा । गीध, व्याध, गणिका, अजामिल—ये बेचारे क्या होते हैं, जितने पतितोंका आपने उद्धार किया, वे सब पतित मेरी समता नहीं कर सकते । यदि आप पतितोंको पावन करनेवाले हैं तो मैं भी छोटा पतित नहीं हूँ । अपने (पतित होनेके) और आपके (पतित-पावन होनेके) सुयशमें लोटपोट (द्वन्द्वयुद्ध) कराके रहूँगा या तो मैं पतित-पावन होकर रहूँगा या आपका यश-छुड़ाकर रहूँगा । दोमेंसे एक निबटारा (निर्णय) करूँगा ही और पतितोंका राजा कहा जाऊँगा । सुना जाता है कि आपने बहुत-से पतितोंको (अपना) सुखमय धाम दिया है, किंतु अब तो बड़ी कठिनाई (आपके लिये) आ पड़ी है, सूरदास-जैसे पतितसे आपको काम पड़ा है ।

राग धनाश्री

[२०७]

माधौ जू, हौं पतित-सिरोमनि ।
और न कोई लायक देखौं, सत-सत अघ प्रति रोमनि ॥
अजामील, गनिकाऽरु ब्याध, नृग, ये सब मेरे चटिया ।
उनहूँ जाइ सौंह दै पूछौ, मैं करि पठयौ सटिया ॥
यह प्रसिद्ध सबही कौ संमत, बड़ौ बड़ाई पावै ।
ऐसौ को अपने ठाकुर कौ इहिं बिधि महत घटावै ॥
नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी ।
यह तौ कथा चलैगी आगैं सब पतितनि मैं हाँसी ॥
सूर सुमारग फेरि चलैगो, बेद-बचन उर धारौ ।
बिरद छुड़ाइ लेहु बलि अपनौ, अब इति तैं हद पारौ ॥

माधवजी मैं पतित-शिरोमणि हूँ। और कोई अपने योग्य (अपने समान पापी) नहीं देखता हूँ। मेरे रोम-रोममें सैकड़ों पाप हैं! अजामिल, गणिका, व्याध और नृग—ये सब तो मेरे उच्छिष्टभोजी (मुझसे छूटा-छटका पाप करनेवाले) हैं। उनके पास जाकर शपथ दिलाकर पूछ लीजिये, मैंने उन्हें अपना छड़ीबरदार (आगे चलनेवाला सेवक) बनाकर भेजा है। यह (नियम) प्रसिद्ध है और सबकी राय भी यही है कि जो बड़ा होता है वही बड़प्पन प्राप्त करता है। ऐसा कौन हो सकता है जो अपने स्वामीका ही इस प्रकार महत्त्व घटा दे। (अजामिल आदि मेरे सेवकके समान छोटे पापी थे, पर उन्होंने मेरा पतित होनेका महत्त्व ही घटा दिया।) व्यर्थ ही मैं लज्जासे मरा जा रहा हूँ कि यहाँ (आपके सम्मुख) आकर सब (मेरा महत्त्व) नष्ट हो गया। (आपने उन सबोंको ही बड़ा पतित समझकर उनका उद्धार कर दिया।) यह कथा आगे भी चलती रहेगी (सब मुझे छोटा पतित मानते रहेंगे)। सब पतितोंमें मेरी हँसी होती रहेगी। सूरदासजी कहते हैं—आप वेदके वचनोंको हृदयमें धारण करें (वेद आपको पतित-पावन कहते हैं, यह स्मरण करके मुझ पतितका उद्धार कर दें) तो फिर सुमार्ग (आपकी शरणागतिका मार्ग) चलने लगे। अथवा अपने (पतित-पावन) सुयशको छोड़ दें और अब यही सीमा बना दें (कि मेरे-जैसे महान् पापीका उद्धार नहीं कर सकेंगे)।

राग आसावरी

[२०८]

हरि जू, मोसौ पतित न आन।
मन-क्रम-बचन पाप जे कीन्हे, तिन कौ नाहिं प्रमान॥
चित्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैं, मेरे पातक झारि।
तिनहूँ त्राहि करी सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि॥

औरनि कौं जम क अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं।
सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवैं॥
हौं ऐसौ, तुम वैसे पावन गावत हैं जे तारे।
अवगाहौं पूरन गुन स्वामी, सूर-से अधम उधारे॥

हे हरिजी ! मेरे समान कोई पतित नहीं है। मन, वाणी और कर्मसे मैंने जो पाप किये हैं, उनकी कोई गणना नहीं है। यमराजके द्वारपर बैठे चित्रगुप्तजी मेरे समस्त पापोंको लिख रहे थे, किंतु उन्होंने भी मेरे अवगुण सुनकर 'त्राहि' कर लिया (हार मान ली) और कागज रख दिया। यमराजकी आज्ञा पाकर दूसरों (पापी जीवों) को लेनेके लिये उनके करोड़ों सेवक दौड़ पड़ते हैं; किंतु मेरे अपराध और मेरी अधमताको सुनकर कोई मेरे पास भी नहीं आता। (यमदूत भी मेरे स्पर्शसे अपवित्र हो जानेका भय मानते हैं।) मैं तो ऐसा (महान् पापी) हूँ और आप वैसे पतित-पावन हैं। जिनका आपने उद्धार किया, वे आपका गुणगान करते हैं। सम्पूर्ण गुणोंके स्वामी आपकी मैं शरण लेता हूँ, जिन्होंने मुझ सूरदास जैसे अधमका उद्धार किया।

राग धनाश्री

[२०९]

मोसौ पतित न और हरे।
जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जे मैं कर्म करे॥
ऐसौ अंध, अधम, अबिबेकी, खोटनि करत खरे।
बिषई भजे, बिरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे॥
ज्यौं माखी मृगमद-मंडित-तन परिहरि, पूय परे।
त्यौं मन मूढ़ बिषय-गुंजा गहि, चिंतामनि बिसरै॥
ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माहि तरे।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, बिरद कि लाज धरे॥

श्रीहरि! मेरे समान पतित और कोई नहीं है। हे प्रभु! आप अन्तर्यामी हैं; मैंने जो कर्म किये हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। मैं ऐसा अंधा (अज्ञानी), अधम, विचारहीन हूँ कि असत्य (भोगों) को भी सत्य कहता (मानता) हूँ। मैंने विषयी पुरुषोंकी सेवा की; किंतु विरक्त संतोंकी सेवा नहीं की। धन और भवनमें मन लगाये रहा। जैसे मक्खी कस्तूरीसे उपलिप्त शरीरको छोड़कर दुर्गन्धित पीब आदिपर बैठती है, वैसे ही मेरा मूर्ख मन विषय-भोगरूपी गुंजाको लेकर (भगवन्नामरूपी) चिन्तामणिको भूल गया। ऐसे दूसरे भी पतित हुए हैं, जो आपपर अवलम्बित होनेसे (आपकी शरण लेनेसे) एक क्षणमें तर गये (मुक्त हो गये)। यह सूरदास पतित है और आप पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं, इस अपने सुयशकी लज्जा कीजिये (अपने सुयशकी रक्षाके लिये मेरा उद्धार कीजिये)!

राग नट

[२१०]

मेरी बेर क्यों रहे सोचि?
काटि कै अघ-फाँस पठवहु, ज्यौं दियौ गज मोचि॥
कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि।
न्याइ कै नहिं खुनुस कीजै, चूक पल्लैं बाँधि॥
मैं कछू करिबे न छाँड्यौ, या सरीरहि पाइ।
तऊ मेरौ मन न मानत, रह्यौ अघ पर छाइ॥
अब कछू हरि! कसरि नाहीं, कत लगावत बार।
सूर प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिं आर॥

(हे प्रभु!) मेरी बार (मेरे उद्धार करनेमें) ही क्यों विचार करने लगे? जैसे आपने गजराजको मुक्त कर दिया, वैसे ही पापका बन्धन काटकर मुझे भी अपने धाम भेज दीजिये। (पाप करनेमें) मुझसे कौन-सा

कर्म कम हुआ है ?' उसे फिर कंधा लगाकर (दृढ़तासे) कर लूँ। मेरी भूलोंको पल्ले बाँधकर (मेरे दोषोंका विचार करके) क्रोध मत कीजिये। न्याय कीजिये। इस शरीरको पाकर मैंने कुछ (पाप) करना छोड़ा नहीं (सब पाप किये); इतनेपर भी मेरा मन मानता नहीं है; अब भी पापपर ही छाया रहता (पापोंके चिन्तनमें ही लगा रहता) है। हे हरि ! (मेरे पतित होनेमें) अब कोई कमी नहीं है, आप (मुझे पावन करनेमें) देर क्यों कर रहे हैं ? सूरदासजी कहते हैं--हे स्वामी ! यह नियम समझ लीजिये कि चलते हुए बैलको (जो चल सकता है, उसे) ही लकड़ीमें लगी कील (सुतारी) से उत्तेजित किया जाता है। (आप पतितोंका उद्धार करते हैं, इसीलिये आपको मैं उलटी-सीधी सुनाकर अपने उद्धारकी प्रार्थना करता हूँ)।

राग धनाश्री

[२११]

अपुने कौं को न आदर देइ ?
ज्यौं बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेइ ॥
ते बेली कैसैं दहियत हैं, जे अपनैं रस भेइ।
श्रीसंकर बहु रतन त्यागि कै, बिषहि कंठ धरि लेइ ॥
माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजाकंठ-कुच सेइ।
जद्यपि सूरज महा पतित है, पतित-पावन तुम तेइ ॥

अपने (स्वजन-सेवक) को कौन सम्मानित नहीं करता। जैसे बालक अनेक अपराध करता है, परंतु माता उनको नहीं मानती (उनपर ध्यान नहीं देती)। वह लता कैसे जलायी जाय, जिसे स्वयं जलसे सींचा गया हो (मैं आपके द्वारा ही पालित हूँ, आप मेरा अहित कैसे होने दे सकते हैं)। भगवान् शंकरने (क्षीरसागरसे निकले) बहुत-से रत्नोंको छोड़कर विषको अपने कण्ठमें रख लिया (इसी प्रकार आप मुझ दोषीको भी अपना लें)। माताके रहते हुए पुत्र बकरीके गलेके स्तनोंका सेवन

करके (भूखों) मर जाय (यह कितने दुःखकी बात है—इसी प्रकार आप-जैसे दयामय पालकके होते मायाके सारहीन भोगोंका सेवन करके मैं नष्ट हो रहा हूँ) यद्यपि सूरदास महापतित है, फिर भी आप तो वे ही पतितपावन हैं (अतः मुझ पतितको पवित्र कर दें ।)

[२१२]

जौ जग और बियौ कोउ पाऊँ ।
तौ हौं बिनती बार-बार करि, कत प्रभु तुमहिं सुनाऊँ ॥
सिव,बिरंचि,सुर-असुर, नाग,मुनि, सु तौ जाँचि जन आयौ ।
भूल्यौ भ्रम्यौ तृषातुर मृग लौं, काहूँ स्रम न गँवायौ ॥
अपथ सकल चलि, चाहि चहूँ दिसि, भ्रम उघटत मतिमंद ।
थकित होत रथ चक्र-हीन ज्यौं, निरखि कर्म-गुन-फंद ॥
पौरुष रहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यौं गज पंक पर्‌यौ ।
विषयासक्त, नटी के कपि ज्यौं, जोई-जोई कह्यौ कर्‌यौ ॥
भव अगाध जल मग्न महा सठ, तजि, पद-कूल रह्यौ ।
गिरा-रहित, वृक-ग्रसित अजा लौं, अंतक आनि गह्यौ ॥
अपने ही अँखियानि दोष तैं, रबिहि उलूक न मानत ।
अतिसय सुकृत-रहित, अघ-ब्याकुल,बृथा स्रमित रज छानत ॥
सुनु त्रयताप-हरन, करुनामय, संतत दीनदयाल ।
सूर कुटिल राखौ सरनाईं इहिं ब्याकुल कलिकाल ॥

हे प्रभु ! यदि संसारमें और कोई आश्रयदाता पा जाता तो मैं क्यों बार-बार आपको (अपनी) प्रार्थना सुनाता । शिव, ब्रह्मा, देवता, असुर, नाग, मुनि—इन सबसे तो यह जन याचना कर आया । प्याससे व्याकुल मृगके समान भूला हुआ भटकता फिरा; किंतु किसीने मेरे श्रमको दूर नहीं किया । सारे कुमार्गोंसे चलकर चारों ओर देखनेपर जब मुझ मन्दबुद्धिका भ्रम (अज्ञान) प्रकट हुआ, तब (अपने) कर्मों तथा

गुणों (सत्त्व, रज, तम) के फंदे (बन्धन) को देखकर पहियारहित रथ-की भाँति गतिहीन (किंकर्तव्यविमूढ़) हो गया । पुरुषार्थहीन, बिना जीती हुई इन्द्रियोंके वशमें होकर जैसे हाथी दल-दलमें फँस गया हो (वैसे ही मैं पाप-पङ्कमें फँस गया हूँ) । विषयोंमें आसक्त होनेके कारण नटिनीके बंदरके समान (इन्द्रियोंने) जो-जो कहा (जो-जो चाहा), वही-वही मैंने किया । यह महाशठ आपके चरणरूपी किनारेको छोड़कर संसार-सागरके (माया-मोहरूपी) अगाध जलमें डूबा रहा । जैसे गूँगी बकरीको भेड़िया पकड़ ले—वैसे ही कालने मुझे आकर पकड़ लिया । जैसे उल्लू अपनी ही आँखोंके दोषसे सूर्यकी सत्ता स्वीकार नहीं करता (वैसे ही अपने अज्ञानके कारण ही मैंने भजनका महत्त्व नहीं माना) । अत्यन्त पुण्यहीन, पापोंसे व्याकुल, व्यर्थ ही धूलि छानता हुआ (मायाके भोगोंमें सुख पानेका प्रयत्न करता हुआ) थकता रहा । हे त्रिताप-हरण ! करुणामय ! सदा दीनोंपर दया करनेवाले प्रभु ! सुनो——इस कलिकाल (कलियुग)से व्याकुल कुटिल सूरदासको अपनी शरणमें रख लो ।

राग केदारौ

[२१३]

प्रभु, तुम दीन के दुःख हरन ।
स्यामसुंदर, मदन-मोहन, बान असरन-सरन ॥
दूर देखि सुदामा आवत, धाइ पर्‍यौ चरन ।
लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर-ढरन ॥
छल कियौ पांडवनि कौरव, कपट-पासा ढरन ।
खाय बिष, गृह लाय दीन्हौं, तउ न पाए जरन ॥
बूड़तहिं ब्रज राखि लीन्हौं, नखहिं गिरिवर धरन ।
सूर प्रभु कौ सुजस गावत, नाम-नौका तरन ॥

हे प्रभु ! आप दीनोंके दुःखहर्ता हैं । हे श्यामसुन्दर ! मदनमोहन ! अशरणको शरण देना आपका स्वभाव ही है । दूरसे ही सुदामाको आते

देखकर दौड़कर आप उनके चरणोंपर गिर पड़े और व्याजसे अकारण दयालु आपने उन्हें अनेक लाखकी सम्पत्ति दानमें दे दी, कौरवोंने कपटके पासोंकी चाल डालकर पाण्डवोंके साथ छल किया और (उससे पहले भी भीमसेनको) विष खिलाया (तथा) लाक्षागृहमें अग्नि लगा दी थी; किंतु वे (पाण्डव आपकी कृपासे) जलने नहीं पाये (आपने उनकी सब कहीं रक्षा की) अँगुलीके नखपर गिरिराज गोवर्धनको धारण करके व्रजको डूबनेसे आपने बचा लिया। हे स्वामी! यह सूरदास आपके सुयशका गान करता है। आपका नाम ही भवसागरसे पार होनेके लिये नौका है।

राग धनाश्री

[२१४]

भक्ति बिना जौं कृपा न करते, तौ हौं आस न करतौ।
बहुत पतित उद्धार किए तुम, हौं तिन कौं अनुसरतौ॥
सुखमृदु-बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ।
कर्म-बासना छाँड़ि कबहुँ नहिं, साप पाप आचरतौ॥
सुजन-बेष-रचना प्रति जनमनि, आयौ पर-धन हरतौ।
धर्म-धुजा, अंतर कछु नाहीं, लोक दिखावत फिरतौ॥
परतिय-रति-अभिलाष निसा-दिन, मन-पिटरी लै भरतौ।
दुर्मति, अति अभिमान, ज्ञान बिन सब साधन तैं टरतौ॥
उदर-अर्थ चोरी-हिंसा करि, मित्र-बंधु सौं लरतौ।
रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट ह्वै, अघटित भोजन करतौ॥
यह ब्यौहार लिखाइ रात-दिन पुनि-जीतौ पुनि मरतौ।
रबि-सुत-दूत बारि नहिं सकते, कपट घनौ उर बरतौ॥
साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उच्चरतौ।
औघड़-असत-कुचीलनि सौं मिलि माया-जल मैं तरतौ॥

कबहुँक राज-मान-मद-पूरन, कालहु तैं नहिं डरतौ।
मिथ्या बाद आप-जस सुनि सुनि मूछहिं पकरि अकरतौ ॥
इहिं बिधि उच्च-अनुच तन धरि-धरि, देस-बिदेस बिचरतौ।
तहँ सुख मानि, बिसारि नाथ-पद, अपनैं रंग बिहरतौ ॥
अब मोहि राखि लेहु मनमोहन, अधम-अंग पद-परतौ।
खर-कूकरकी नाइँ मानि सुख, विषय-अगिनि मैं जरतौ ॥
तुम गुन की जैसैं मिति नाहिन, हौं अघ कोटि बिचरतौ।
तुम्हें हमैं प्रति बाद भए तैं गौरव काकौ गरतौ ॥
मोतैं कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ।
अजहूँ सूर पतित पद तजतौ, जौ औरहु निस्तरतौ ॥

(हे प्रभु !) आप यदि भक्तिके बिना कृपा न करते तो मैं (उसकी) आशा न करता। आपने बहुत-से पतितोंका उद्धार किया है; मैंने भी उनका ही अनुसरण (उनके समान ही पापाचरण) किया है, मुखसे कोमल वाणी बोलता हूँ, इससे मत समझ लीजिये कि मैं शुद्ध (सदाचारके) मार्गपर पैर रख सकता (धर्माचरण कर सकता) था। कभी भी कर्मोंकी वासना मैंने छोड़ी नहीं, शापके समान (दुःखदायी) पापका ही आचरण करता रहा। प्रत्येक जन्ममें सज्जनोंका वेष बनाकर (दम्भके द्वारा) दूसरोंके धनका हरण ही करता आया हूँ। भीतर (हृदयमें) तो कुछ (श्रद्धा, विश्वास, धर्म-प्रेम) था नहीं, ऊपर धर्मकी ध्वजा ले रखी थी (अपनेको धर्मात्मा प्रसिद्ध कर रखा था)। इस प्रकार लोकदिखावा (झूठा प्रदर्शन) करता फिरता था। रात-दिन मनरूपी पिटारीमें परस्त्री-गमनकी लालसा ही भरता रहा। मैं दुर्मति हूँ, अभिमानी हूँ, अज्ञानी हूँ, सब साधनोंसे दूर हटा रहा। केवल पेट भरनेके लिये चोरी की, हत्या की और अपने मित्रों तथा सम्बन्धियोंसे लड़ाई करता रहा। जीभके स्वादसे विवश और लम्पट होकर जो पच न सके या जो खानेयोग्य न हो (अभक्ष्य, अपाच्य, अत्यधिक) भोजन करता था। अपने भाग्यमें रात-दिन यही व्यवहार करना लिखवा लिया

था (ये असदाचरण मेरे लिये स्वाभाविक बन गये थे)। इस प्रकार बार-बार जन्म लेता और मरता रहा। यमराजके दूत (नरकका भय) भी मुझे (कुमार्गसे) रोक नहीं सकते थे, कपटकी अग्नि मेरे हृदयमें प्रचण्ड रूपसे जलती थी। अच्छे शीलवान्, अच्छे वेशधारी पुरुषका अपयश बहुत कहा करता था (मैं सत्पुरुषोंकी निन्दामें ही लगा रहता था)। अघोरी (शौचाचारहीन), असज्जन तथा मलिन लोगोंसे मिलकर (कुसंग-में पड़कर) मायाके जलमें ही तैरता (मायामें ही लिप्त रहता) था। कभी (राज्य पाकर) राजाके अभिमानमें पूर्णतः मतवाला होकर कालका भी भय नही मानता था। झूठा वाद-विवाद करके (पण्डितका जन्म पाने-पर शास्त्रार्थमें जीतकर) अपना यश सुन-सुनकर मूँछ उमेठते हुए अकड़ता रहता था। इस प्रकार ऊँच और नीच अनेकों शरीर धारण करके (अनेक जन्म लेकर) देश-विदेश घूमता रहा। वहीं (उन शरीरोंमें ही) सुख मानकर, हे स्वामी ! आपके चरणोंको भूलकर अपनी रुचिके अनुसार ही विहार (आचरण) करता रहा। हे मनमोहन ! अब मेरी रक्षा कर लो ! मैं आपका अधमाङ्ग (अत्यन्त क्षुद्र सेवक) हूँ और आपके पैर पड़ रहा हूँ। (अबतक मैं) गधे और कुत्तेके समान विषय-भोगमें ही सुख मानकर विषयरूपी अग्निमें ही जलता रहा हूँ। जैसे आपके गुणोंकी सीमा नहीं है, वैसे ही मैंने भी करोड़ों पाप किये हैं। हमारे और आपमें विवाद होनेपर (सोचिये तो सही) किसका गौरव नष्ट होगा ? हे हरिजी ! मुझसे कुछ (पाप) बचा नहीं है। (अनेक जन्मोंमें) चढ़ता-उतरता (कभी अधिक, कभी कुछ कम पाप करता) ही आया हूँ। यह सूरदास इतना पतित है कि यदि किसी औरके द्वारा उद्धार पा सकता तो (आपमें इसकी निष्ठा अब भी नहीं है, आपके) चरणोंको तो अब भी छोड़ देता। (भक्तिसे नहीं, कहीं और आश्रय न होनेसे विवश होकर आपके चरणोंका सहारा पकड़ रखा है।)

राग बिलावल

[२१५]

तुम्हरौ नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तौ कहौ मेरे और कहा बल ?
बुधि-बिबेक-अनुमान आपनैं, सोधि गह्यौ सब सुकृतनिकौ फल ॥
बेद, पुरान, सुमृति, संतनिकौं, यह आधार मीन कौं ज्यौं जल ।
अष्टसिद्धि, नवनिधि सुर-संपति, तुम बिनु तुस-कन, कहुँ न कछू लल
अजामील, गनिका, जु ब्याध, नृग जासौं-जलधि तरे ऐसेउ खल ।
सोइ प्रसाद सूरहि अब दीजै, नहीं बहुत तौ अंत एक पल ॥

हे स्वामी ! हे जगदीश्वर ! कहिये तो सही, आपके नामको छोड़कर मेरे पास और क्या बल है ? अपनी बुद्धि, विचार और अनुमानके अनुसार ढूँढ़कर (जानकर) मैंने समस्त पुण्योंका फल (नामका सहारा) पकड़ा है। जैसे मछलीका आधार जल होता है, वैसे ही वेद, पुराण, स्मृति तथा सभी संतोंका यह (नाम ही) आधार है। आठों सिद्धियाँ नवों निधियाँ तथा देवताओंकी सब सम्पत्ति आपके बिना भूसीके कणके समान है; किसीमें कुछ भी सारतत्त्व नहीं है। अजामिल, गणिका, व्याध, नृग-जैसे दुष्ट (पापी) आपकी जिस कृपासे संसार-सागरसे पार हो गये, वही कृपा-प्रसाद अब, अधिक नहीं तो, जीवनके अन्तिम एक क्षणतक (भी सूरदासको प्रदान कीजिये ।)

राग सारंग

[२१६]

अब हौं हरि, सरनागत आयौ ।
कृपानिधान ! सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ ॥
ताल, मृदंग, झाँझ, इंद्रिनि मिलि, बाना, बेनु बजायौ ।
मन मेरे नट के नायक ज्यौं तिनही नाच नचायौ ॥

उघट्यौ सकल सगीत रीति-भव अंगनि-अंग बनायौ।
काम-क्रोध मद-लोभ-मोह की, तान-तरंगनि गायौ॥
सूर अनेक देह धरि भूतल, नाना भाव दिखायौ।
नाच्यौं नाच लच्छ चौरासी, कबहुँ न पूरौ पायौ॥

हे हरि! अब मैं शरणागत हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ। हे कृपानिधान! जिस कृपादृष्टिसे देखकर आपने (अन्य) पतितोंको अपनाया है, उसी कृपादृष्टिसे मुझे भी देखिये। मेरी इन्द्रियोंने मिलकर करताल, मृदंग, झाँझ, वीणा और वंशी बजायी (अपनी-अपनी तृप्तिका राग छेड़ रखा) और उन सबोंने मेरे मनको नटोंके नायककी भाँति नचाया (मन उनकी तृप्तिके उपाय सोचनेमें ही चञ्चल रहा)। रीतिके अनुकूल संसारका सारा संगीत उसने प्रकट किया और अङ्ग-प्रत्यङ्ग बनाकर नाचता रहा। (सब प्रकारसे संसारकी आसक्ति ही प्रकट हुई—सांसारिक भोगोंको पानेके ही सब उद्योग किये।) काम, क्रोध, मद, लोभ और मोहरूपी तीनोंकी तरंगमें ही गाता रहा। (इनके आवेशमें ही मग्न रहा।) सूरदासजी कहते हैं—पृथ्वीपर अनेक शरीर धारण करके अनेक प्रकारके भाव दिखाये (अनेक प्रकारके कर्म किये), चौरासी लाख प्रकारके नृत्य नाच आया (चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेता भटका किया), किंतु कभी पूरा नहीं पड़ा। (कभी पूर्णत्व—परमसुखकी प्राप्ति नहीं हुई।)

राग नट

[२१७]

मन बस होत नाहिंनै मेरैं।
जिनि बातनि तैं बह्यौ फिरत हौं, सोई लै लै प्रेरैं॥
कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरे, औरै आनि खचेरैं।
तुम तौ दोष लगावन कौं सिर, बैठे देखत नेरैं॥
कहा करौं, यह चर्‍यौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरैं।
अब करि सूरदास प्रभु आपुन, द्वार पर्‍यौ है तेरैं॥

मन मेरे वशमें नहीं होता। जिन बातों (कामों)से (संसार-सागर-में) बहता घूम रहा हूँ, उन्हीं-उन्हींकी ला-लाकर प्रेरणा करता है। आपके यशका वर्णन कैसे करूँ और कैसे सुनूँ। यह मन तो दूसरा ही कुछ लाकर मुझे खोदता रहता है। आप तो मेरे सिर दोष लगानेके लिये पास (हृदयमें) बैठे देखते रहते हैं (इसे मना करते नहीं)। क्या करूँ, यह मन बहुत दिनोंतक बिना अंकुश (नियन्त्रण) के छुट्टा घूमता रहा है। सूरदासजी कहते हैं—'हे प्रभु ! अब इसे अपना बना लो ! यह तुम्हारे दरवाजेपर पड़ा है।'

राग धनाश्री

[२१८]

मैं तौ अपनी कही बड़ाई।
अपने कृत तैं हौं नहिं बिरमत, सुनि कृपालु ब्रजराई॥
जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोक बिदित दृढ़ताई।
तौ क्यौं तजै नाथ अपनौ प्रन ? है प्रभु की प्रभुताई !
पाँच लोक मिलि कह्यौ, तुम्हारैं नहिं अंतर मुकताई।
तब सुमिरन-छल दुर्भर के हित, माला तिलक बनाई॥
काँपन लागी धरा पाप तैं ताड़ित, लखि जदुराई !
आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकैं राई॥
अब मिथ्या तप, जाप, ज्ञान, सब प्रगट भई ठकुराई।
सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई॥

मैंने तो अपने ही बड़प्पनका वर्णन किया है। हे कृपालु व्रजराज ! सुनो, अपने (नीच) कर्मोंको करनेसे मैं विरत नहीं होता। सभी लोकोंमें यह दृढ़ता प्रसिद्ध है कि जीव अपने जीवपनेका स्वभाव नहीं छोड़ता; तो फिर स्वामी अपने (पतित-पावन) प्रणको क्यों छोड़ते हैं ? प्रभुका प्रभुत्व तो इसीमें है। पाँच लोगोंने (पंचोंने, समाजने),

मिलकर (मुझसे) कहा कि आप मुक्ति देनेमें भेदभाव नहीं करते। तब इस कठिनाईसे भरनेवाले पेटके लिये (आपका) स्मरण करनेके बहाने मैंने माला पहिन ली और तिलक लगा लिया। हे यदुनाथ ! देखो, मेरे पापसे ताड़ित (पीड़ित) होकर पृथ्वी काँपने लगी है। किंतु मैंने यह अच्छी प्रकार समाचार पाया है कि आपने जगत्‌का उद्धार करनेके लिये ही अवतार लिया था। अब तपस्या, जप, ज्ञान आदि तो सब (साधन) झूठे (सार-हीन) सिद्ध हो गये हैं, केवल आपके स्वामित्वका (दयामय) प्रभाव ही प्रत्यक्ष प्रकट हुआ है। इसलिये (आपकी कृपासे) अपना उद्धार सहज समझकर सूरदासने सारी चिन्ता छोड़ दी है ! (आपकी कृपापर विश्वास करके निश्चिन्त हो गया हूँ)।

राग गौरी

[२१९]

अब मोहि सरन राखियै नाथ !
कृपा करी जो गुरुजन पठए, बह्यौ जात गह्यौ हाथ ॥
अहंभाव तैं तुम बिसराए, इतनेहिं छूट्यौ साथ।
भवसागर मैं पर्‌यौ प्रकृति बस, बाँध्यौ फिर्‌यौ अनाथ ॥
भ्रमित भयौ, जैसैं मृग चितवत, देखि देखि भ्रम पाथ।
जनम न लख्यौ संत की संगति, कह्यौ-सुन्यौ गुन-गाथ ॥
कर्म, धर्म, तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ।
अभय-दान दै, अपनौ कर धरि सूरदास कैं माथ ॥

हे नाथ ! अब मुझे शरणमें रख लीजिये। आपने बड़ी कृपा की जो गुरुजनोंको (संतों एवं आचार्योंको) भेजा; (मैं तो संसार-सागरमें) बहता जा रहा था, (उन्होंने) हाथ पकड़ लिया। 'मैं भी कुछ हूँ' इस अहंकारका भाव आनेके कारण तुमको भूल गया और इतनेसे ही आपका साथ छूट गया (अन्यथा आप तो जीवके सदा साथ ही हैं)! फलतः

प्रकृति (माया) के अधीन होकर संसार-सागरमें गिर पड़ा और अनाथ होकर (कर्म-बन्धनसे) बँधा फिरता रहा। थका हुआ हिरण जैसे मृगतृष्णाको (मरुस्थलमें सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर जानेकी इच्छा करके) बार-बार देखता है, वैसे ही मैं भी अज्ञानवश विषयोंको ही देखता (संसारके विषयोंमें सुख मानकर उनमें ही लगा) रहा। किसी जन्ममें न तो संतोंके सङ्गकी ओर देखा, न आपके गुणोंका वर्णन किया या सुना। आपकी आराधना किये बिना मेरे सब कर्म, धर्माचरण, तीर्थयात्रा आदि व्यर्थ हो गये। हे प्रभु ! अब सूरदासके सिरपर अपना कर-कमल रखकर अभय-दान दीजिये (निर्भय कर दीजिये) !

राग जैतश्री

[२२०]

तब बिलंब नहिं कियौ, जबै हिरनाकुस मार्‍यौ ॥
तब बिलंब नहिं कियौ, केस गहि कंस पछार्‍यौ ॥
तब बिलंब नहिं कियौ, सीस दस रावन कट्टे ।
तब बिलंब नहिं कियौ, सबै दानव दहपट्टे ॥
कर जोरि सूर बिनती करै, सुनहु न हो रुकुमिनि-रवन !
काटौ न फंद मो अंध के, अब बिलंब कारन कवन ?

आपने जब हिरण्यकशिपुका वध किया, तब तो देर नहीं की; जब केश पकड़कर कंसको पछाड़ा था, तब भी देर नहीं की; जब रावणके दस सिर काटे थे, तब विलम्ब नहीं किया था और तब भी विलम्ब नहीं किया, जब समस्त असुरोंका दलन किया था; हे रुक्मिणीरमण ! सुनो न ! यह सूरदास हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा है, मुझ अन्धेका फंदा (कर्मपाश) आप काटते नहीं, अब (मेरी ही बार) आप विलम्ब कर रहे हैं, इसका कारण क्या है ?

राग धनाश्री

[२२१]

ताहू सकुच सरन आए की, होत जु निपट निकाज ।
जद्यपि बुधि बल विभव-बिहूनौ, वहत कृपा करि लाज ॥
तृन जड़, मलिन, बहत बपु राखै, निज कर गहै जु जाइ ।
कैसैं कूल-मूल आस्रित कौं तजै आपु अकुलाइ ?
तुम प्रभु अजित, अनादि, लोक-पति हौं अजान, मतिहीन ।
कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन ॥
परिहस-सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत ।
सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत ॥

जो अत्यन्त उपयोगहीन होता है, उसके भी शरणमें आनेकी लज्जा (शरणदाताको) होती ही है । यद्यपि मैं बुद्धि, बल एवं वैभवसे रहित हूँ, फिर भी आप अपनी कृपाकी लज्जा रखते हैं; अतः मेरा निर्वाह हो रहा है । यदि धारामें बहता हुआ कोई अपने हाथसे किनारेके तिनकेको पकड़ ले तो वह जड़ एवं मलिन तिनका भी उसके शरीरकी रक्षा करता है, रक्षा करनेमें असमर्थ होनेपर अपनी जड़ एवं किनारेको ही व्याकुल होकर छोड़ देता है, परन्तु अपने आश्रितको नहीं छोड़ता । (जब एक तृणमें इतनी शरणागतवत्सलता है) तब हे प्रभु ! तुम तो अजेय, अनादि एवं समस्त लोकोंके स्वामी हो और मैं अज्ञानी बुद्धिहीन हूँ । वहाँ आपके लिये तो मेरे समीप लगा लेनेमें (मुझे अपना लेनेमें) कुछ लगता नहीं और यहाँ यह दीप मग्न (आनन्दित) हो जाता है । सूरदासजी कहते हैं—(लोगोंके) परिहासकी अत्यन्त प्रबल वेदना रात-दिन रहती है (लोग रात-दिन परिहास किया करते हैं, भक्तिका मजाक उड़ाते हैं); इसीसे यह बात मुखसे निकल जाती है कि श्रीगोपालके शरणागत होनेपर किसने सद्गति नहीं प्राप्त की (शरणागत तो सद्गति पायेगा ही) ।

राग सोरठ

[२२२]

(हरि) पतितपावन, दीन बँधु, अनाथनि के नाथ ।
संतत सब लोकनि श्रुति, गावत यह गाथ ॥
मोसौ कोउ पतित नहिं अनाथ-हीन-दीन ।
काहे न निस्तारत प्रभु, गुननि-अँगनि हीन ॥
गज, गनिका, गौतम-तिय मोचन मुनि-साप ।
अरु जन-संताप-दमन, हरत सकल पाप ॥
मनसा-वाचा-कर्मना, कछू कही राखि ?
सूर सकल अन्तर के तुमही हौ साखि ॥

सदा सब लोकोंमें वेद यह गाथा गाते हैं कि श्रीहरि पतित-पावन, दीन-बन्धु और अनाथोंके नाथ हैं। मेरे समान अनाथ, नीच, दीन कोई पतित नहीं है; मैं गुणोंके सब अङ्गों (सभी गुणों) से रहित हूँ, अतः प्रभु ! आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ? आप तो गज और गणिकाका उद्धार करनेवाले, अहल्याको उसके पति गौतम मुनिने पत्थर हो जानेका जो शाप दिया था; उससे छुड़ानेवाले तथा भक्तोंके संताप-नाशक एवं सकल पापहारी हैं। मनसे, वाणीसे, कर्मसे यदि मैंने अपनी दशा कहनेमें कुछ रख लिया हो (कोई बात छिपा ली हो), सूरदासजी कहते हैं तो हे प्रभु ! हृदयके भी तुम्हीं साक्षी हो (तुम हृदयकी बात भी जानते ही हो)।

[२२३]

जौ प्रभु, मेरे दोष विचारैं ।
करि अपराध अनेक जनम लौं, नख-सिख भरौ विकारैं ॥
पुहुमि पत्र करि सिंधु मसानी गिरि-मसि कौ लै डारैं ।
सूर-तरुवर की साख लेखनी, लिखत सारदा हारैं !

पतित-उधारन बिरद बुलावैं, चारौं बेद पुकारैं।
सूर स्याम हौं पतित-सिरोमनि, तारि सकैं तौ तारैं॥

हे प्रभु! यदि आप मेरे दोषोंका विचार करेंगे (तो मेरा उद्धार कैसे हो सकेगा)। अनेक जन्मोंतक अपराध करके मैं नखसे शिखातक (सम्पूर्ण रूपसे) विकारों (पापों) से ही भरा हूँ। भूमिको कागज बनाकर, समुद्रोंकी दावातमें पर्वतोंको स्याही बनाकर डाल दें और कल्प-वृक्षकी डालीकी कलम बनाकर सरस्वती मेरे पापोंका वर्णन लिखने बैठें, तो भी वे हार जायँगी। आप पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं, यह आपका सुयश कहा जाता है, चारों वेद यही बात पुकारकर कहते हैं; किंतु श्यामसुन्दर! यह सूरदास तो पतित-शिरोमणि है, आपसे इसका उद्धार हो सके तो उद्धार कीजिये।

[२२४]

हमारी तुम कौं लाज हरी।
जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जो मोहि माँझ परी॥
अपने औगुन कहँ लौं बरनौं, पल-पल घरी-घरी।
अति प्रपंच की मोट बाँधि कै अपनैं सीस धरी॥
खेवनहार न खेवट मेरैं, अब मो नाव अरी।
सूरदास प्रभु, तव चरननि की आस लागि उबरी॥

हे श्रीहरि! अब मेरी लज्जा आपको ही है। हे स्वामी! आप अन्तर्यामी हैं, अतः जो कुछ मेरे हृदयमें छिपी बात है, उसे आप जानते ही हैं, क्षण-क्षण और घड़ी-घड़ीमें (सर्वदा) मैंने जो दोष किये हैं, उन अपने दोषोंका कहाँतक वर्णन करूँ। मैंने तो प्रपञ्च (माया-मोह) की भारी गठरी बाँधकर अपने सिरपर रख ली है। मेरे पास खेनेवाला कोई केवट नहीं है और अब मेरी नौका (भवसागरमें) अड़ (उलझ) गयी है। सूरदासजी कहते हैं कि हे स्वामी! उद्धारके लिये अब आपके चरणोंकी ही आशा लगी है।

[२२५]

प्रभु जू ! यौं कीन्ही हम खेती ।
बंजर भूमि, गाउँ हर जोते, अरु जेता की तेती ॥
काम-क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज-तामस सब कीन्हौ ।
अति कुबुद्धि मन हाँकनहारैं, माया जूआ दीन्हौ ॥
इंद्रिय-मूल किसान महातृन-अग्रज-बीज बई ।
जन्म-जन्म की बिषय-बासना, उपजत लता नई ॥
पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-बिधान जौ कीनौ ।
अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ ॥
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं ।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौं ॥
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही ।
लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही ॥
सोई करौ, जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउँ ।
अपने नाम की बैरख बाँधौ, सुबस बसौं इहिं गाउँ ॥
कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई ।
सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान-कटाई ॥

प्रभुजी ! मैंने इस प्रकारकी खेती की है । बंजर (जहाँ कोई तृण न उग सके) भूमिमें गाँवमें ही हल जोता और वह भी जहाँ-तहाँ (बराबर जुताई भी नहीं की अर्थात् मायाके तथ्यहीन क्षेत्रमें, जहाँ सब प्रयत्न करते हैं, मैंने अधूरा प्रयत्न किया, लौकिक कर्म भी ठिकानेसे नहीं किये) । काम और क्रोधरूपी दो बलवान् बैलोंने मिलकर सब रजोगुण और तमोगुण-के ही कार्य किये; क्योंकि अत्यन्त दुर्बुद्धियुक्त मन उन्हें हाँकनेवाला था और उसने मायाका जुआ उनके कंधोंपर रख दिया था । इन्द्रियोंरूपी किसानने अपने मूल विषयोंके शीघ्र उगनेवाले महान् तृणोंका बीज बोया, फलतः जन्म-

जन्मकी विषय-वासनारूपी बीजसे नवीन लताएँ (नवीन वासनाएँ) उत्पन्न हुईं। पंच (सम्बन्धी) और संतान अत्यन्त बलवान् थीं (सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंमें बड़ा मोह था); अतएव उन्होंने बलपूर्वक जो व्यवस्था उनके मनमें आयी वह की (परिवारकी इच्छाकी तुष्टिमें ही मुझे विवश होकर लगना पड़ा)। अब संसाररूपी राज्यके अधिकारी यमराज कर्मोंका विवरण माँगते हैं, इससे मैं उनके परवश हो गया हूँ। घरमें आपका भजनरूपी धन है नहीं, जिसे देकर मैं छूट जाऊँ (भजन किये होता तो यमराजसे छुटकारा हो जाता) धर्मरूपी जमानत भी मिलना नहीं चाहती (कोई धर्माचरण भी नहीं किया कि वही सहायक हो), इससे इस खेतीका स्वामी मैं लूटा (नरकमें भेजा) जा रहा हूँ। अहंकाररूपी कपटी पटवारी झूठी बही लिखता है, जहाँ धर्मकार्य हुआ, वहाँ भी अधर्म बतलाता है (जो पुण्यकार्य करता हूँ, वे भी पाप ही बन जाते हैं, क्योंकि उन्हें अहंकारके वश होकर करता हूँ)। जो कुछ शेष था, वह यहीं रह गया (सब लौकिक सम्पत्ति और सम्बन्धी यहीं छूट गये)। अब आप वही कीजिये, जिससे बसा रहूँ (उजड़ न जाऊँ अर्थात् मेरा विनाश न हो)। अपना नाम रख लीजिये (कि मैं आपका सेवक हूँ)। अपने नामका झंडा उड़ा दीजिये (मुझमें अपने नामकी रुचि दीजिये), जिससे इस गाँव (मनुष्यदेह) में मैं अपने वशमें रहकर (मन-इन्द्रियोंपर अधिकार करके) रह सकूँ। सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! आपके सेवककी शोभा नष्ट हो रही है, अब तो कृपा दृष्टिकी वर्षा कीजिये। वही कीजिये जिससे कानकटायी (उपहास, निन्दा) न हो।

[२२६]

प्रभु जू, हौं तो महा अधर्मी।
अपत, उतार, अभागौ, कामी, बिषयी, निपट कुकर्मी ॥
घाती, कुटिल, ढीठ, अति क्रोधी, कपटी, कुमति जुलाई।
औगुन की कछु सोच न संका, बड़ौ दुष्ट, अन्याई ॥

बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठि-कटा, लठबाँसी।
चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, लिए मोह की फाँसी॥
चुगल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटौ-खूटा।
लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ौ पढैलौ, लूटा॥
लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, कौड़ी-कौड़ी जोरै।
कृपन, सूम, नहिं खाइ-खवावै, खाइ मारि कै औरै॥
लंगर, ढीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा।
मचला, अकलै-मूल, अपातर खाउ-खाउँ करै भूखा॥
निर्घिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धी, भोदूँ, नित कौ रोऊ।
तृष्ना हाथ पसारे निसि-दिन, पेट भरे पर सोऊ॥
बात बनावन कौं है नीकौ बचन-रचन समुझावै।
खाद-अखाद न छाँड़ै अब लौं, सब मैं साधु कहावै॥
महा कठोर सुन्न हिरदै कौ दोष देन कौ नीकौ।
बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, बेधन, राँकौ, फीकौ॥
महा मत्त बुधि-बल कौ हीनौ, देखि करै अंधेरा।
बमनहि खाइ, खाइ सो डारै, भाषा कहि-कहि टेरा॥
मूकू, निंद, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, काम बनावै।
कलहा, कुही, मूष रोगी अरु, काहू नैंकु न भावै॥
पर-निंदक, परधन कौ द्रोही, पर-संतापनि बोरौ।
औगुन और बहुत हैं मो मैं, कह्यौ सूर मैं थोरौ॥

प्रभुजी! मैं तो महान् अधर्मी हूँ। सम्मानहीन, नीच, भाग्यहीन, कामी, विषयी एवं अत्यन्त कुकर्मी हूँ। हत्यारा, कुटिल, ढीठ, अत्यन्त क्रोधी, कपटी, कुबुद्धि, धोखेबाज, दुर्गुणोंका कुछ विचार एवं शङ्का न करनेवाला, बड़ा ही दुष्ट और अन्यायी हूँ। बटमार (यात्रियोंकी हत्या करनेवाला), ठग, चोर, उठाईगीर, गिरहकट (जेब काटनेवाला)

महामूर्ख, चञ्चल, अस्थिरचित्त, निन्दक, विनाश करनेवाला और सदा मोहकी फाँसी लिये रहनेवाला (मोहपाशमें बँधा) हूँ । चुगलखोर, जुआरी, दयाहीन, अपराधी, झूठा, खोटा और नीरस हूँ । लोभी, लौंदा (शक्ति एवं समझहीन), वचन देकर टल जाने (अस्वीकार करने) वाला, झगड़ालू, बड़ा पढ़ा हुआ और लुटेरा हूँ । लम्पट, धूर्त, दमड़ीका पुत्र (केवल धनका दास) और कौड़ी-कौड़ी एकत्र करनेवाला हूँ । कृपण-कंजूस हूँ, न खाता हूँ, न खिलाता ही हूँ, दूसरोंका भी स्वत्व मारकर हड़प लेता हूँ । अकारण लोगोंको छेड़नेवाला, ढीठ, गर्व करनेवाला, टुच्चा (ओछी प्रकृतिका), अत्यन्त मसखरा और रूखे स्वभावका हूँ । मचलनेवाला (हठी), विकल, अपात्र, सदा भोजनके लिये लालायित भूखा हूँ । घृणारहित, नीच कुलमें उत्पन्न, दुर्बुद्धि, भोंदू, सदा रोते रहनेवाला हूँ । रात-दिन तृष्णासे हाथ फैलाये रहनेवाला (भिखारी) और पेट भर जानेपर सो जानेवाला (आलसी) हूँ । बात बनानेमें मैं बहुत अच्छा हूँ, बातें गढ़-गढ़कर लोगोंको उपदेश करता हूँ; किंतु स्वयं भक्ष्य-अभक्ष्य किसीको अबतक नहीं छोड़ा, इतनेपर भी सब (समाज) में साधु कहलाता हूँ । महान् कठोर, शून्य-हृदय और दूसरोंपर दोष लगानेमें चतुर हूँ । बड़ा ही कृतघ्न और निकम्मा हूँ, निर्धन, कंगाल और प्रीतिरहित हूँ । महान् मतवाला, बुद्धि-बलसे हीन, (स्वयं) देखकर दूसरोंको अन्धकारमें रखनेवाला हूँ । वमनको (त्यागे हुए भोगोंको) खाता (सेवन करता) हूँ और खाये हुएको फिर उगलता (गुप्त बातोंको प्रकट करता)—उन्हें प्राकृत भाषामें पुकार-पुकारकर कहता हूँ । चुप्पा, निन्दक, कमीना, व्यावहारिक, ज्ञानहीन, कायर और अपना स्वार्थ-सिद्ध करनेवाला हूँ । कलह करनेवाला, मनमें कुढ़ता रहनेवाला, चोर और रोगी हूँ और किसीको थोड़ा भी पसंद नहीं हूँ । दूसरोंकी निन्दा करनेवाला, दूसरोंकी सम्पत्तिसे शत्रुता करनेवाला और दूसरोंको कष्ट देनेवाला थैला (इन दुर्गुणोंकी ढेरी) हूँ । सूरदासजी कहते हैं—मुझमें अवगुण तो बहुत हैं, यहाँ तो थोड़े-से ही मैंने कहे हैं ।

राग धनाश्री

[२२७]

अधम की जौ देखौ अधमाई।
सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तौ कछु कह्यौ न जाई॥
जब तैं जनम-मरन-अंतर हरि, करत न अघहि अघाई।
अजहूँ लौं मन मगन काम सौं, बिरति नाहिं उपजाई॥
परम कुबुद्धि, अजान ज्ञान तैं, हिय जु बसति जड़ताई।
पाँचौ देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि ठगौरी खाई॥
सुम्रति-बेद मारग हरि-पुर कौ, तातैं लियौ भुलाई।
कंटक-कर्म कामना-कानन कौ मग दियौ दिखाई॥
हौं कहा कहौं, सबै जानत हौ मेरी कुमति कन्हाई।
सूर पतित कौ नाहिं कहूँ गति, राखि लेहु सरनाई॥

हे त्रिभुवनपति ! हे मेरे स्वामी ! सुनो, यदि आप मुझ अधमकी अधमता देखें, तब तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। हे हरि ! जबसे जन्म हुआ और मृत्यु होनेके पूर्वतक (जीवनभर) पाप करनेसे कभी तृप्ति नहीं हुई, अबतक भी मन कामनाओंमें ही मग्न है, वैराग्य उत्पन्न ही नहीं हुआ। अत्यन्त दुर्बुद्धि, ज्ञानसे अनभिज्ञ हूँ, हृदयमें मूर्खता ही निवास करती है। (काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद—इन) पाँचों ठगोंको प्रत्यक्ष खड़े देखकर भी हठपूर्वक स्वयं ठगा गया। इसीलिये वेद और स्मृतियोंकी आज्ञाको तो, जो भगवद्धाममें जानेका मार्ग है, मैंने भुला दिया और जो कर्मरूपी काँटोंसे भरा कामनारूपी वन है, उसीका मार्ग मुझे दिखायी पड़ा (कामनापूर्तिके लिये ही कर्म करता रहा)। मैं क्या कहूँ, हे कन्हाई ! आप तो मेरी सब दुर्बुद्धि जानते ही हैं। इस पतित सूरदासका कहीं ठिकाना नहीं है, इसे (आप ही) अपनी शरणमें रख लें।

राग केदार

[२२८]

बहुरि की कृपाहू कहा कृपाल ।
बिद्यमान जन दुखित जगत मैं, तुम प्रभु दीन-दयाल ॥
जीवत जाँचत कन-कन निर्धन, दर-दर रटत बिहाल ।
तन छूटें तैं धर्म नहीं कछु, जौ दीजै मनि-माल ॥
कहा दाता जो द्रवै न दीनहि देखि दुखित ततकाल ।
सूर स्याम कौ कहा निहोरौ, चलत बेद की चाल ॥

हे कृपालु ! आपकी भविष्यमें होनेवाली कृपासे भी क्या लाभ है ? जब कि आप-जैसे दीनोंपर दया करनेवाले स्वामीके रहते आपका यह सेवक संसारमें दुखी है । जीवित रहते तो यह निर्धन एक-एक कण माँगता हुआ बुरी दशामें द्वार-द्वारपर भटक रहा है और शरीर छूटनेपर भी इसने कोई धर्म तो किया नहीं, जिससे आप इसे मणियोंकी माला (परलोकमें) पहना देंगे । वह दानी ही क्या, जो दीनको दुखी देखकर तत्काल द्रवित न हो । सूरदासजी कहते हैं—हे श्यामसुन्दर ! यदि मैं वेदके बताये मार्गसे चलता तो आपका निहोरा (उपकार) क्या था । (मैं पतित हूँ, इसीलिये तो मुझे आपकी दया मिलनी चाहिये ।)

[२२९]

कौन सुनै यह बात हमारी ।
समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी ॥
तुम अबिगत अनाथ के स्वामी, दीन-दयालु, निकुंज-बिहारी ।
सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी ॥
अब किहि सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु बलि, त्रास निवारी ।
सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी ॥

मेरी यह बात (प्रार्थना) कौन सुनेगा ? हे वनमाली ! आपको छोड़कर और किसीको (अपना दुःख दूर करनेमें) समर्थ नहीं देखता, (फिर) किससे मैं अपना कष्ट निवेदन करूँ। निकुञ्ज-विहारी ! अविज्ञात-गति होनेपर भी आप अनाथोंके नाथ और दीनोंपर दया करनेवाले हैं। अपने सेवकोंकी आपने सदा सहायता की है, जिसने जो मनोरथ किया, उसको ही आपने पूर्ण किया है। हे यादवपति ! अब मैं किसकी शरणमें जाऊँ ? आपकी बलिहारी हूँ, मेरा भय दूर करके मुझे अपनी शरणमें रख लीजिये। सूरदास आपके चरणोंपर बार-बार न्यौछावर है, किस अपराधसे आप मुझपर कृपा करना भूल गये हैं ?

राग कल्यान

[२३०]

जैसैं राखहु तैसैं रहौं।
जानत हौ दुख-सुख सब जनके, मुख करि कहा कहौं॥
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महा गज, कबहुँक भार बहौं॥
कमल-नयन, घन-स्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहौं।
सूरदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं॥

(हे प्रभु !) आप जैसे मुझे रखेंगे, वैसे ही रहूँगा। आप सेवकके सब दुःख-सुख जानते ही हैं, फिर मुखसे क्या प्रार्थना करूँ ? हे कृपा-निधान ! कभी मुझे भोजन मिल जाता है और कभी भूख सह लेता (भूखा रह जाता) हूँ। कभी घोड़े या विशाल हाथीपर चढ़ता हूँ और कभी (स्वयं) भार (बोझा) ढोता हूँ। सूरदासजी कहते हैं—हे कमलनयन ! नव जलधर-के समान श्यामसुन्दर ! (संसारमें मेरी चाहे जो दशा रहे; परंतु) आपका दास होकर रहूँ। हे स्वामी ! हे भक्तोंके लिये कृपाके निधि ! मैं आपके चरण पकड़ता हूँ (मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये)।

राग धनाश्री

[२३१]

कब लगि फिरिहौं दीन बह्यौ ।
सुरति-सरित-भ्रम-भौंर-लोल मैं, मन परि तट न लह्यौ ॥
वात-चक्र बासना-प्रकृति मलि, तन-तृन तुच्छ गह्यौ ।
उरझ्यौ बिबस कर्म निर-अंतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ ॥
बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिंन परत रह्यौ ।
सूर करनि-तरु रच्यौ जु निज कर, सो कर नाहिं गह्यौ ॥

मैं दीन कबतक बहता फिरूगा ? चित्तवृत्तियोंके प्रवाहकी नदीमें भ्रम-रूपी चंचल भँवर उठ रहे हैं, उसमें पड़कर मेरे मनको किनारा नहीं प्राप्त हुआ ! स्वाभाविक वासनाओंके बवंडरमें पड़कर शरीररूपी तुच्छ तृणको मैंने पकड़ा (शरीरसे ही आसक्ति की) निरन्तर विवश होकर कर्मोंमें उलझा रहा । अब थककर सुखस्वरूप आपकी शरण चाहता हूँ । किंतु हे करुणा-निधान ! प्रार्थना करते डरता हूँ और रहा भी नहीं जाता । अपने जिन हाथोंसे इस कर्मरूपी वृक्षकी मैंने रचना की, सूरदासके उन हाथोंको आपने (अभीतक) पकड़ा नहीं ।

[२३२]

तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी ।
जिन कैं बस अनिमिष अनेक गन अनुचर आज्ञाकारी ॥
बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सिर न डुलावै ।
दाहक गुन तजि सकत न पावक, सिंधु न सलिल बढ़ावै ॥
सिव-बिरंचि सुरपति-समेत सब सेवत प्रभु-पद चाए ।
जो कछु करन कहत, सोई-सोइ कीजत अति अकुलाए ॥
तुम अनादि, अबिगत, अनंत गुन पूरन परमानन्द ।
सूरदास पर कृपा करौ प्रभु, श्रीबृंदाबन-चन्द ॥

हे प्रभु ! जिनके वशमें अनेक देवगण आज्ञाकारी सेवक बनकर रहते हैं, वे (ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि) भी आपकी कृपा चाहते हैं। (आपके भयसे) वायु चलता है, चन्द्रमा और सूर्य घूमते रहते हैं तथा शेषनाग अपना सिर हिलातेतक नहीं। (आपके भयसे ही) अग्नि अपना जलानेका गुण (उष्णता) छोड़ नहीं सकते, समुद्र (तटसे बाहर) अपना जल नहीं बढ़ाता (मर्यादाके भीतर रहता है)। शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्रसहित सब आपके चरणोंकी बड़े चावसे सेवा करते हैं और आप उन्हें जो कुछ करनेकी आज्ञा देते हैं, वही-वही काम वे अत्यन्त आकुल होकर (तत्परतासे) करते हैं। आप अनादि हैं, अज्ञेय हैं, अनन्त गुणोंसे पूर्ण परमानन्दस्वरूप हैं। हे मेरे स्वामी श्रीवृन्दावनचन्द्र ! सूरदासपर कृपा करो।

राग मलार

[२३३]

तुम तजि और कौन पैं जाउँ।
काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाउँ॥
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दिऐं अघाउँ।
अन्त काल तुम्हरैं सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाउँ॥
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाउँ।
कामधेनु, चिंतामनि दीन्हौं, कल्पबृच्छ-तर छाउँ॥
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ॥

आपको छोड़कर और किसके पास जाऊँ ? किसके दरवाजेपर जाकर मस्तक झुकाऊँ ? दूसरे किसके हाथ अपनेको बेचूँ ? ऐसा दूसरा कौन समर्थ दाता है, जिसके देनेसे मैं तृप्त होऊँ ? अन्तिम समय (मृत्युके समय)में एकमात्र आपके स्मरणसे ही गति (उद्धार सम्भव) है और कहीं भी स्थान नहीं है। कंगाल सुदामाको आपने अयाचक (मालामाल) कर दिया और अभयपद

*

(वैकुण्ठ) में उन्हें स्थान दिया । उन्हें कामधेनु, चिन्तामणि और कल्प-वृक्षकी छाया प्रदान की (कल्पवृक्ष भी उनके यहाँ लगा दिया)। अत्यन्त भयानक संसाररूपी समुद्रको देखकर मैं अपने मनमें बहुत डर रहा हूँ। यह सूरदास आपपर न्यौछावर है, अपने (पतित-पावन) प्रणको स्मरण करके (मुझपर) कृपा कीजिये ।

राग सारंग

[२३४]

अब धौं कहौ, कौन दर जाउँ ।
तुम जगपाल, चतुर चिंतामनि, दीनबंधु सुनि नाउँ ॥
माया कपट-जुवा, कौरव-सुत लोभ मोह मद भारी ।
परबस परी सुनौ करुनामय, मम मति-तिय अब हारी ॥
क्रोध-दुसासन गहे लाज-पट, सर्व अंध-गति मेरी ।
सुर, नर, मुनि, कोउ निकट न आवत, सूर समुझि हरि-चेरी ॥

अब भला, मैं और किसके द्वारपर (शरण लेने) जाऊँ ? आप संसारके पालनकर्ता परम चतुर एवं (भक्तोंके लिये) चिन्तामणिरूप हैं और आपका नाम 'दीनबन्धु' मैंने सुना है । माया ही कपटका जूआ है और लोभ, मोह, मद आदि भारी दोष (दुर्योधनादि) कौरव हैं; हे करुणामय ! मेरी बुद्धि-रूपी स्त्री (द्रौपदी) इनके परवश हो गयी है और अब हार (निराश हो) गयी है, आप इसकी पुकार सुनें । क्रोधरूपी दुःशासन लज्जारूपी वस्त्र पकड़े है (क्रोध मुझे निर्लज्ज बना रहा है) । सब प्रकारसे मेरी दशा अंधे (धृतराष्ट्र) के समान (किंकर्तव्यविमूढ़) हो गयी है । सूरदासजी कहते हैं—(प्रभो !) श्रीहरिकी दासी समझकर (मेरी बुद्धिका उद्धार करने) देवता, मनुष्य (सत्पुरुष) एवं मुनि—कोई पास नहीं आता (अतः आप ही अब इसका उद्धार करें) ।

राग मारू

[२३५]

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ।
हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ॥
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ।
हयगयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ॥
कंचन-मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ।
कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ॥
पाटंबर-अंबर तजि, गूदरि पहिराऊँ।
अंब सुफल छाँड़ि, कहा सेमर कौं धाऊँ॥
सागर की लहरि छाँड़ि, छीलर कस न्हाऊँ।
सूर कूर, आँधरौ, मैं द्वार पर्‌यौ गाऊँ॥

मेरी तो आप ही शरण हैं, आप ही मेरे स्वामी हैं, अन्यत्र कहीं भी जानेमें मुझे दुःख होता है। मैं आपका (सेवक) कहलाकर अब और दूसरे किसका (सेवक) कहलाऊँ ? (सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले आप) कामधेनुको छोड़कर क्या बकरी लेकर दुहूँ (मायासे आशा करूँ) ? घोड़े और हाथीसे उतरकर क्या गधेपर चढ़कर दौड़ूँ ? स्वर्ण-मणि (पारस) को खोलकर फेंक दूँ और क्या गलेमें काँच बँधवा लूँ ? केसरका लेप मिटाकर मुखमें काजल पोत लूँ ? रेशमी वस्त्र छोड़कर गुदड़ी पहनूँ ? आमका सुन्दर फल छोड़कर सेमरका फल लेने दौड़ूँ ? समुद्रकी लहरोंका त्याग करके गड्ढेमें कैसे स्नान करूँ ? (आपकी शरण त्यागकर दूसरोंकी शरण लेना तो ऐसे ही अज्ञानपूर्ण कार्य होंगे।) सूरदासजी कहते हैं—प्रभो ! मैं मूर्ख और अंधा आपके दरवाजेपर पड़ा (आपका सुयश) गाता रहूँ (यही कृपा मुझपर होनी चाहिये)।

राग धनाश्री

[२३६]

जौ हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे ॥
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे।
तुम प्रताप बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे ॥
और देव सब रंक-भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा तैं, पाए सुख जु घनेरे ॥

हम यदि अच्छे हैं तो और बुरे हैं तो भी, हैं आपके (ही)। हमारे दोषोंकी लज्जा और हमारे गुणोंका बड़प्पन आपको ही है (आप ही बुरे या भले सेवकके स्वामी कहे जायँगे) अतः हे मेरे स्वामी! मेरी प्रार्थना सुनिये। सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ। आपके चरणोंको दृढ़तासे पकड़ लिया है। आपके प्रतापके बलसे किसीकी परवा नहीं करता। आपके घरके सेवक (आपके भरोसे) निर्भय हो गये हैं। और सब देवता तो कंगाल हैं, भिक्षुक हैं, ऐसे बहुतोंको निकम्मा समझकर मैंने त्याग दिया है; क्योंकि हे प्रभु! आपकी कृपासे सूरदासने बहुत अधिक सुख पाया है।

राग कान्हरौ

[२३७]

भक्त-बछल प्रभु! नाम तुम्हारौ।
जल-संकट तैं राखि लियौ गज, ग्वालनि हित गोबर्धन धारौ ॥
द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख, जबहीं सो हरि टेरि पुकारौ।
हौं अनाथ, नाहिंन कोउ मेरौ, दुस्सासन तन करत उघारौ ॥
भूप अनेक बंदि तैं छोरे, राज-रवनि जस अति बिस्तारौ।
कीजै लाज नाम अपने की, जरासंध-सौ असुर सँघारौ ॥

धर्म-सत्त मेरे पितु-माता, ते दोउ दिये बिडारी।
ज्ञान-बिबेक बिरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी॥
बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी।
सील-सँतोष सखा दोउ मेरे, तिन्हैं बिगोवति भारी॥
कपट-लोभ वाके दोउ भैया, ते घर के अधिकारी।
तृष्ना बहिनि, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी॥
अति निसंक,निरलज्ज, अभागिनि, घर-घर फिरत न हारी।
मैं तौ बृद्ध भयौं, वह तरुनी, सदा वयस इकसारी॥
याकैं बस मैं बहु दुःख पायौ, सोभा सबै बिगारी।
करियै कहा, लाज मरियै, जब अपनी जाँघ उघारी॥
अधिक कष्ट मोहि परयौ लोक मैं, जब यह बात उचारी।
सूरदास प्रभु हँसत कहा हौ, मेटौ बिपति हमारी॥

हे हरि! मैं महान् अधम और संसारासक्त हूँ। दूसरोंकी समझ (सलाह) से मैंने आशारूपी कुबुद्धिवाली बुरी एवं जबर्दस्त स्त्रीसे विवाह कर लिया। धर्म और सत्य पिता और माता थे, उन दोनोंको तो डराके भगा दिया। ज्ञान और विचार—ये दोनों मेरा हित करनेवाले भाई थे, उनसे विरोध कर लिया। दयारूपी बहिनसे शत्रुता बाँध ली (दृढ़ कर ली), इसलिये वह बेचारी भागकर छिप गयी। शील और संतोष—ये दोनों मेरे मित्र हैं, उन्हें वह बहुत तंग कर रही है। उस (आशारूपी कुनारी) के दो भाई हैं—कपट और लोभ, वे ही (अब मेरे) घरके अधिकारी (संचालक) बन गये हैं! अपनी बहिन तृष्णा और सहेली दीनतासे उसने बहुत अधिक प्रेमका विस्तार कर लिया है। (यह आशारूपी स्त्री) अत्यन्त निःशङ्क है, निर्लज्ज है, भाग्यहीना है, घर-घर घूमती हुई भी थकती नहीं। मैं तो वृद्ध हो गया; किन्तु वह तरुणी ही है, उसकी अवस्था सदा एक-सी रहती है (आशा कभी बूढ़ी नहीं होती, बुढ़ापेमें भी प्रबल रहती है); इसके वशमें होकर मैंने बहुत दुःख पाया है, इसने मेरी सारी शोभा (सम्मान) नष्ट कर दी। क्या किया जाय, जब अपनी जङ्घा ही नंगी है

(स्वयं ही लज्जा-रक्षामें असमर्थ है) तो लाज मरना ही है (विवश होकर लज्जा सहनी है) । संसारमें (सहायता–सहानुभूतिकी आशासे) जब भी मैंने यह बात कही, तभी मुझपर अधिक कष्ट पड़ा (संसारमें जहाँ आशा की, वहीं निराशाका अधिक दुःख भोगना पड़ा) सूरदासजी कहते हैं–हे स्वामी ! हँसते क्या हैं ? हमारी विपत्तिको आप मिटा दीजिये ।

राग नट

[२३९]

तिहारे आगैं बहुत नच्यौ ।
निसि-दिन दीन-दयाल, देवमनि, बहुबिधि रूप रच्यौ ॥
कीन्हे स्वाँग, जिते जाने मैं, एकौ तौ न बच्यौ ।
सोधि सकल गुन काछि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ ॥
जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं, तौ कत जात जँच्यौ ।
इतही कहौ, सूर पूरौ है, काहैं मरत पच्यौ ॥

आपके आगे मैं बहुत नाच चुका। हे दीनदयालु ! देवशिरोमणि ! रात-दिन मैंने अनेक प्रकारके रूप धारण किये । (अनेक योनियोंमें जन्म लेकर उनके अनुरूप आचरण किये) मुझे जितने स्वाँग ज्ञात थे, मैंने सब कर लिये; एक भी अब शेष नहीं है। मेरे हृदयमें जितने गुण संचित थे, सबको ढूँढ़कर उनके अनुसार वेष बनाकर आपको दिखा दिया । हे नाथ ! हे स्वामी ! यदि (इसपर भी) आप (मेरे अभिनयसे) प्रसन्न नहीं होते तो मेरी परीक्षा क्यों ली जा रही है ? इतना कह दीजिये कि 'सूरदास ! अब रहने दे, क्यों परिश्रम करके थका जाता है ?' (अर्थात् नाना जन्म लेनेके इस अभिनयसे मुझे मुक्त कर दीजिये ।)

राग अहीरी

[२४०]

भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ ।
इन पतितनि कौं देखि-देखि कै पाछैं सोच न कीन्हौ ॥

अंजामील-गनिकादि आदि दै, पैरी पार गहि पेलौ।
संग लगाइ बीचहीं छाँड़्यौ, निपट अनाथ, अकेलौ॥
अति गंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं बिधि उतर्‌यौ जात।
नहीं अधार नाम अवलोकत, जित-तित गोता खात॥
मोहि देखि सब हँसत परस्पर, दै-दै तारी तार।
उन तौ करी पाछिले की गति, गुन तोर्‌यौ बिच धार॥
पद-नौका की आस लगाएँ, बूड़त हौ बिनु छाहँ।
अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, बेगि गहौ किन बाहँ॥

संसार-सागरको मैंने तैरकर पार नहीं कर लिया। इन पतितोंकी ओर देख-देखकर (अपने उद्धारकी भी उनके समान ही आशा करके) पीछे होनेवाले परिणामकी चिन्ता मैंने नहीं की। अजामिल, गणिका आदि (पापियों)को मैंने अगुआ बनाया। (उनके मार्गका ही मैंने अनुसरण किया) तैरकर पार जानेके लिये पकड़कर उन्होंने मुझे ठेल दिया (उनको आदर्श मानकर मैं संसारमें आसक्त हो गया)। किंतु साथ लेकर भी (अपने समान पापी होनेपर भी) उन्होंने मुझे बीचमें ही अत्यन्त अनाथ और अकेला छोड़ दिया (उनके समान मेरा उद्धार हुआ नहीं)। (यह संसार-सागर) अत्यन्त गहरा है, इसका किनारा भी पास नहीं है, किस प्रकार इससे पार हुआ जा सकता है? (मेरे लिये तो यह अशक्य ही है।) आपका नाम जो पार होनेका आधार है, उसकी ओर देखता नहीं (उसमें रुचि नहीं)। जहाँ-तहाँ डुबकी खा रहा हूँ। (स्थान-स्थानपर पतन हो रहा है।) मुझे देख-देख सब उच्च स्वरसे ताली बजा-बजाकर आपसमें (मेरी हँसी उड़ाते हुए) हँसते हैं। पिछले लोगों (जिनका पहिले उद्धार हो गया, उन पापियों) के समान उन लोगों (वर्तमानके ऐसे लोगोंने जिनका आपने उद्धार कर दिया) ने भी मेरी वही गति की, मध्य धारामें ही (मुझे सहारा देनेवाली) रस्सी तोड़ दी (मुझसे अपना सम्बन्ध त्याग दिया)। अब तो मैं आपके चरण-कमलरूपी नौकाकी आशा लगाये बिना

छायाके (बिना सहारे) डूब रहा हूँ । सूरदासजी कहते हैं—(हे स्वामी !) अब भी आप देखा ही करेंगे ? जल्दीसे मेरी बाँह क्यों नहीं पकड़ लेते ! (अब तो मुझे सहारा देकर बचा लीजिये)

राग सोरठ

[२४१]

भरोसौ नाम कौ भारी ।
प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी ॥
ग्राह जब गजराज घेर्यौ, बल गयौ हारी ।
हारि कै जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरिधारी ॥
सुदामा-दारिद्र भंजे, कूबरी तारी ।
द्रौपदी कौ चीर बढ़यौ, दुसासन गारी ॥
बिभीषन कौं लंक दीनी, रावनहि मारी ।
दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम-दरबारी ॥
सत्य भक्तहि तारिबे कौ लीला बिस्तारी ।
बेर मेरि क्यौं ढील कीन्ही, सूर बलिहारी ॥

भगवन्नामका भरोसा ही महत्त्वपूर्ण है । जिन्होंने प्रेमसे भगवन्नाम लिया, वे (भगवत्प्राप्तिके) अधिकारी हो गये । ग्राहने जब गजराजको पकड़ा, तब गजराजका सारा बल थक गया । अन्तमें हारकर जब उसने (भगवन्नाम लेकर) पुकार की, तब गिरिधारी भगवान् श्रीहरि (उसका उद्धार करने) पहुँच गये । (भगवान्ने) सुदामाकी दरिद्रता नष्ट कर दी और कुब्जाका उद्धार किया । (कौरव-सभामें) द्रौपदीका वस्त्र बढ़ा दिया, (वस्त्र खींचनेके कारण) दुःशासनको गाली (अयश) ही मिली । रावणको मारकर (श्रीरामने) विभीषणको लङ्काका राज्य दे दिया । अपने भक्त ध्रुवको श्रीरामने अपने दरबार (अपने धाम) में अविचल पद दे दिया । अपने सच्चे भक्तोंका उद्धार करनेके लिये (भगवान्ने अवतार लेकर) लीलाका

विस्तार किया है। सूरदासजी कहते हैं—(प्रभो !) आपने मेरी बार ही क्यों ढिलाई की है ? मैं तो आपपर ही न्योछावर हूँ। (सब प्रकारसे आपका ही हूँ।)

राग धनाश्री

[२४२]

तुम बिनु भूलोइ-भूलौ डोलत।
लालच लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत॥
जब लगि सरबस दीजै उनकौं, तबहीं लगि यह प्रीति।
फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवनि की रीति॥
एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे।
तब पहिचानि सबनि कौं छाँड़े, नख-सिख लौं सब झूठे॥
कंचन मनि तजि काँचहि सैंतत, या माया के लीन्हें।
चारि पदारथ हू कौ दाता, सु तौ बिसर्जन कीन्हे॥
तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक॥

आपके (आश्रय) बिना भूला हुआ ही भटकता रहा, लालचके कारण करोड़ों देवताओंके दरवाजे खोलता घूमता रहा (अनेकों देवताओंसे याचना करता रहा)। जबतक उन (देवताओं) को अपना सर्वस्व दिया जाय, तभीतक वे प्रेम करते हैं; देवताओंकी यही रीति है कि (आराधनाका) फल माँगते ही अस्वीकार करके फिर जाते (उदासीन या विरोधी हो जाते) हैं। किन्हीं-किन्हींकी पशु-बलि देकर (जीव-हत्याका पाप करके भी) पूजा की; किंतु ऐसी पूजा करनेपर भी वे तनिक भी संतुष्ट नहीं हुए, तब यह पहचानकर कि सब नख-शिखसे (पूर्णतया) झूठे (सामर्थ्यहीन) हैं, सबका त्याग कर दिया। इस माया (लोभ) के कारण स्वर्ण-मणि(पारस) को छोड़कर मैं काँचको समेटता रहा (आपका भजन त्यागकर अन्य देवताओंकी

उपासनामें लगा रहा), जो (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) चारों पदार्थोंको देने-वाले थे, उन (आप) को तो मैंने त्याग ही दिया । हे केशव ! आप कृतज्ञ हैं, करुणामय हं, समस्त लोकोंके स्वामी हैं । सूरदासजी कहते हैं—हमने अब आपके ये श्रीचरण दृढ़तासे पकड़ लिये हैं (आपके चरणोंका ही आश्रय ले लिया है), अब ये चरण ही हमारी सहायता करनेवाले हैं ।

राग सारंग

[२४३]

तातैं बिपति-उधारन गायौ ।
स्रवननि साखि सुनी भक्तनि मुख, निगमनि भेद बतायौ ॥
सुवा पढ़ावत जीभ लड़ावति, ताहि बिमान पठायौ ।
चरन-कमल परसत रिषि-पतिनी, तजि पषान, पद पायौ ॥
सब हित कारन देव ! अभय पद, नाम प्रताप बढायौ ।
आरतिवंत सुनत गज-क्रंदन, फंदन काटि छुड़ायौ ॥
पावँ अवार सु धारि रमापति, अजस करत जस पायौ ।
सूर क्रूर कहै मेरी बिरियाँ बिरद, कितै बिसरायौ ॥

अपने कानों भक्तोंके मुखकी साक्षी (गवाही) मैंने सुनी और वेदोंने भी यह रहस्य बताया (कि भगवान् ही विपत्ति-निवारक हैं); इसलिये उन विपत्तिसे उद्धार करनेवाले प्रभुका ही मैंने गुण-गान किया । गणिका तोतेको पढ़ानेके लिये जीभ चलाया करती थी (कुछ भगवन्नाम समझकर जप नहीं करती थी), परंतु उसे (लेनेके लिये प्रभुने) विमान भेजा । (श्रीरामके) चरण-कमलोंका स्पर्श होते ही अहल्याने अपने पाषाण-स्वरूपका त्याग कर दिया और पतिलोक (ऋषिलोक) पा गयी । हे प्रभो ! समस्त मङ्गलोंके आदि कारण और अभयपदरूप आपके प्रभावका विस्तार आपके नामने किया है । गजराजको अत्यन्त आर्त होकर क्रन्दन (पीड़ापूर्ण चीत्कार) करते सुनकर (आपने)

ग्राहका फंदा काटकर उसे मुक्त कर दिया । हे रमानाथ ! विलम्बसे भी (मरणके क्षणतक भी) जिसने आपके चरणोंको भली प्रकार (हृदयमें) धारण किया, उसने (जीवनमें) अपयशके कार्य (-अधर्म) करते हुए भी (आपका कृपापात्र होनेका) सुयश प्राप्त कर लिया । सूरदासजी कहते हैं--किंतु नाथ ! मुझ दुष्टकी बार ही आपने अपने (पतितपावन) सुयशको क्यों भुला दिया ।

राग कान्हरौ

[२४४]

ऐसी कब करिहौ गोपाल !
मनसा-नाथ, मनोरथ-दाता, हौ प्रभु दीनदयाल ॥
चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित रसाल ।
लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर अंचल, कर माल ॥
इहिं बिधि लखत, झुकाइ रहै जम, अपनैं हीं भय भाल ।
सूर सुजस रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल ॥

हे स्वामी ! आप तो सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले, मेरे मानस (अन्तःकरण) के नाथ और दीनोंपर दया करनेवाले हैं । हे गोपाल ! (मेरी) ऐसी दशा आप कब कर देंगे कि मेरा चित्त निरन्तर (बिना क्षणभर भी विराम किये) आपके चरणोंमें अनुरक्त रहे, (मेरी) जीभपर आपके रस-मय चरित रहें, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे रहें, शरीर प्रेमसे पुलकित (रोमाञ्च) हो, गलेमें अँचला बँधा हो, (वैष्णव साधुका विरक्त वेश हो) और हाथमें माला हो । इस प्रकार मुझे देखकर यमराज स्वयं अपने भयसे ही अपना मस्तक झुकाये रह जायँ । आपके सुयशका अनुरागी सूरदास उन (यमलोक) की दारुण यातना सुनकर भी मनमें डरता नहीं ।

राग धनाश्री

[२४५]

ऐसे प्रभु अनाथ के स्वामी ।
दीनदयाल, प्रेम-परिपूरन, सब घट अंतरजामी ॥
करत विवस्त्र द्रुपद-तनया कौं, सरन-सब्द कहि आयौ ।
पूजि अनंत कोटि बसननि हरि, अरि कौ गर्ब गवायौ ॥
सुत हित विप्र, कीर हित गनिका, नाम लेत प्रभु पायौ ।
छिनक भजन, संगति प्रताप तैं, गज अरु ग्राह छुड़ायौ ॥
नर-तन, सिंह-बदन बपु कीन्हौं, जन लगि भेष बनायौ ।
निज जन दुखी जानि भय तैं अति, रिपु हति, सुख उपजायौ ॥
तुम्हरी कृपा गुपाल गुसाइँ, किहिं किहिं स्रम न गँवायौ ।
सूरदास अंध, अपराधी, सो काहैं बिसरायौ ॥

मेरे स्वामी दीनोंपर दया करनेवाले, प्रेमसे परिपूर्ण, सबके हृदयकी दशा जाननेवाले ऐसे अनाथोंके नाथ हैं कि जब द्रौपदीको (कौरव) वस्त्ररहित (नंगी) कर रहे थे, तब 'शरण हूँ' इतना शब्द ही उससे कहा गया कि श्रीहरिने उसके वस्त्रको अनन्तकोटि वस्त्रोंसे पूर्ण करके (साड़ीको ओर-छोर-हीन बनाकर) शत्रुओंका गर्व नष्ट कर दिया । ब्राह्मण अजामिलने पुत्रके उद्देश्यसे और गणिकाने तोतेके निमित्तसे भगवन्नाम लेकर प्रभुको प्राप्त कर लिया । थोड़े-से (पूर्वजन्मके) भजन और सत्सङ्गके प्रभावसे गजराज और ग्राह दोनोंको (भगवान्ने) संसारसे मुक्त कर दिया । (पिताके) अत्यन्त त्रास देनेसे अपने भक्त (प्रह्लाद) को दुखी जानकर भक्तके लिये भगवान्ने मनुष्यका शरीर और सिंहका मुख—इस प्रकार नृसिंहरूप धारण किया और भक्तके शत्रु (हिरण्यकशिपु) को मारकर भक्तको आनन्द दिया । मेरे स्वामी गोपाललाल ! आपकी कृपासे किस-किसने अपना (संसारमें भटकनेका) श्रम दूर नहीं किया । किंतु इस अंधे अपराधी (पापी) सूरदासको ही आपने क्यों भुला दिया ?

[२४६]

तौ लगि बेगि हरौ किन पीर ।
जौ लगि आन न आनि पहूँचैं, फेरि परैगी भीर ॥
अबहिं निबछरौ समय सुचित है, हम तौ निधरक कीजै ।
औरौ आइ निकसिहैं, तातैं आगैं है सो लीजै ॥
जहाँ-तहाँ तैं सब आवैंगे, सुनि-सुनि सस्तौ नाम ।
अब तौ पर्‌यौ रहैगौ दिन-दिन तुम कौं ऐसौ काम ॥
यह तौ बिरद प्रसिद्ध भयौ जग, लोक-लोक अस कीन्हौ ।
सूरदास प्रभु समुझ देखि कै मैं बड़ तोहि करि दीन्हौ ॥

तबतक झटपट आप मेरी पीड़ा क्यों नहीं हरण कर लेते, जबतक दूसरे (पापी उद्धारके लिये) न आ पहुँचें; फिर तो भीड़ आ पड़ेगी । अभी ही अवकाशका समय है, अतः स्वस्थचित्तसे मुझे तो निर्भय बना दीजिये, क्योंकि (शीघ्र ही) दूसरे भी (यहाँ) आ निकलेंगे (उद्धारके लिये उपस्थित हो जायँगे) । अतः जो सामने है, उसे तो (शरणमें) ले लीजिये ! आपका सस्ता (सुलभ, सुगम) नाम सुन-सुनकर जहाँ-तहाँ (स्थान-स्थान) से सब आयेंगे । (ऐसी दशामें) आपको तो अब प्रतिदिन (सदा) ही ऐसा (पतितोद्धारका) काम पड़ता ही रहेगा । आपका यह यश तो संसारमें प्रसिद्ध हो गया, सभी लोकोंमें आपके सुयशका विस्तार मैंने कर दिया (कि आप पतितपावन हैं) । सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! आप विचार करके देखिये कि मैंने ही आपको बड़ा बना दिया है । (मुझ-जैसे पतितका उद्धार करनेसे ही आप बड़े कहलाते हैं ।)

राग सारंग

[२४७]

अबिगति-गति जानी न परै ।
मन-बच-कर्म अगाध-अगोचर, किहि बिधि बुधि सँचरै ॥

अति प्रचंड पौरुष-बल पाएँ, केहरि भूख मरै ।
अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै ॥
रीतै भरै, भरै पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै ।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै ॥
बागर तैं सागर करि डारै, चहुँ दिसि नीर भरै ।
पाहन बीच कमल बिकसावै, जल मैं अगिनि जरै ॥
राजा रंक, रंक तैं राजा, लै सिर छत्र धरै ।
सूर पतित तरि जाइ छिनक मैं, जो प्रभु नैंकु ढरै ॥

अविज्ञात परमात्माकी गति जानी नहीं जाती । मन, वचन और कर्मसे वह अगम्य एवं अगोचर है; बुद्धि किस प्रकार उनमें संचार (प्रवेश) करे । अत्यन्त प्रचण्ड पुरुषार्थ और बल पाकर भी सिंह भूखों मरता है और बिना प्रयास तथा बिना उद्योग किये अजगर अपना पेट भर लेता है । (वही लीलामय) जो खाली हैं, उन्हें भर देता है और भरे हुएको फिर ढुलका देता (खाली कर देता) है और इच्छा होनेपर फिर भर देता है । (उसकी इच्छा होनेपर) कभी तिनका भी जलमें डूब जाता है और कभी पत्थर भी तैरने लगता है । कभी (वह) बहुत ऊँची भूमिको भी समुद्र बना डालता है, चारों ओर पानी भर देता है ! (वह) पत्थरोंके मध्य कमल खिला देता है और (उसकी लीलासे) जल (समुद्र) में अग्नि (बडवानल) जलता रहता है । राजाको कंगाल बना देता है और कंगालको राजा बनाकर उसके मस्तकपर छत्र धारण करा देता है । सूरदासजी कहते हैं कि वह प्रभु यदि तनिक-सी कृपा कर दें तो पतित एक क्षणमें (भवसागरसे) तर जाय ।

राग आसावरी

[२४८]

पतितपावन जानि सरन आयौ ।
उदधि संसार सुभ नाम नौका तरन,
अटल अस्थान निजु निगम गायौ ॥

व्याध अरु गीध, गनिका, अजामील द्विज,
चरन गौतम-तिया परसि पायौ।
अंत औसर अरध-नाम-उचार करि,
सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ॥
अबल प्रहलाद, बलि दैत्य सुखहीं भजत,
दास ध्रुव चरन चित सीस नायौ।
पांडु-सुत-विपति मोचन महादास लखि,
द्रौपदी-चीर नाना बढ़ायौ॥
भक्त-वत्सल, कृपा-नाथ असरन-सरन,
भार भूतल हरन जस सुहायौ।
सूर प्रभु-चरन चित चेति-चेतन करत,
ब्रह्म-सिव-सेस-सुक-सनक ध्यायौ॥

(हे प्रभु!) आपको पतित-पावन जानकर मैं (आपकी) शरणमें आया हूँ। संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये आपका नाम ही शुभ नौका है। वेदोंने आपके जिस अविचल स्वधामका वर्णन किया है, उसे (उसी नामके आश्रयसे) व्याध, गृध्रराज जटायु, गणिका एवं अजामिल ब्राह्मणने प्राप्त किया तथा गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याने उसे आपके चरणोंका स्पर्श करके पा लिया। अन्तिम समयमें जलमें डूबते-डूबते आधे ही नामका उच्चारण करके स्मरण करनेसे गजराजको आपने ग्राहसे छुड़ा दिया। निर्बल प्रह्लाद और (उनके पौत्र) बलि दैत्य होनेपर भी सुखपूर्वक आपका भजन करते थे, (और) आपके भक्त ध्रुवने आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया तथा (उन्हींमें) चित्त (भी) लगाया। अपने महान् सेवक समझकर पाण्डवोंको आपने विपत्तियोंसे मुक्त किया और (कौरव-सभामें) द्रौपदीका वस्त्र अपार बढ़ा दिया। आप भक्तवत्सल हैं, कृपाके स्वामी हैं, शरणहीनोंको शरण देनेवाले हैं, पृथ्वी-का भार दूर करनेवाले हैं—इस प्रकार आपकी परम सुहावनी ख्याति है। आपके जिन चरणोंका ब्रह्मा, शिव, शेष, शुकदेव तथा सनकादि ध्यान करते हैं, हे स्वामी!

उन्हीं चरणोंको सूरदास भी अपने चित्तसे स्मरण करके उसे चैतन्य करता है। (आपके चरणोंके स्मरणसे ही मेरे चित्तमें भी चैतन्य—ज्ञानका उदय हुआ है)।

[२४९]

(श्री) नाथ सारंगधर ! कृपा करि दीन पर,
डरत भव-त्रास तैं राखि लीजै।
नाहिं जप, नाहिं तप, नाहिं सुमिरन-भजन
सरन आए की अब लाज कीजै।
जीव जल-थल जिते, बेष धरि-धरि तिते,
अटल दुरगम अगम अचल भारे।
मुसल-मुद्गर हनत, त्रिविध करमनि गनत,
मोहिं दंडत धरम-दूत हारे॥
वृषभ, केसी, प्रलँब, धेनुकऽरु पूतना,
रजक, चानूर-से दुष्ट तारे॥
अजामिल-गनिका तैं कहा मैं घटि कियौ,
तुम जो अब सूर चित तैं बिसारे॥

हे शार्ङ्गधनुषके धारण करनेवाले स्वामी ! संसारके भयसे डरते हुए इस दीनपर कृपा करके इसकी रक्षा कर लीजिये। मुझमें न जप है, न तपस्या है, न स्मरण या भजन ही है; किंतु अपनी शरणमें आनेकी अब लज्जा कीजिये। जल और स्थलमें जितने जीव हैं, उतने सब वेश धारण करके (सब योनियोंमें जन्म लेकर) अत्यन्त दुर्गम और अगम्य पर्वतों (कष्टप्रद स्थलों)में मैं घूमता रहा। (मेरे शुभ, अशुभ, एवं मिश्रित) त्रिविध कर्मोंकी गिनती करते हुए मूसल और मुद्गरसे मार-मारकर मुझे दण्ड देते-देते धर्मराज (यमराज) के दूत भी हार गये। आपने तो वृषभासुर, केशी, प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, पूतना, धोबी और चाणूर-जैसे दुष्टोंका भी उद्धार कर दिया। अजामिल

और गणिकासे मैंने कौन-से घटकर (कम) पाप किये हैं, जो आपने मुझ सूरदासको अब अपने चित्तसे भुला दिया है । (मैं भी वैसा ही पापी हूँ; अतः मेरा भी उद्धार आपको करना ही चाहिये ।)

[२५०]

कबहूँ तुम नाहिन गहरु कियौ ।
सदा सुभाव-सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ ॥
गाइ-गोप-गोपीजन कारन गिरि कर-कमल लियौ ।
अघ, अरिष्ट, केसी, काली मथि, दावानलहि पियौ ॥
कंस-बंस बधि, जरासंध हति गुरु-सुत आनि दियौ ।
करषत सभा द्रुपद-तनया कौ अंबर अछय कियौ ॥
सूर स्याम सरबज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल हियौ ।
काकी सरन जाउँ नँदनंदन, नाहिन और बियौ ॥

आपने कभी भी विलम्ब नहीं किया है । आप तो सदासे स्वभाव-सुलभ (सहज ही प्राप्त होनेवाले) और स्मरणके वशमें रहते हैं । अपने भक्तोंको आपने अभयदान दिया है । गाय, गोप तथा गोपियोंकी रक्षा करनेके लिये आपने अपने कमल-जैसे (कोमल) हाथोंपर गोवर्धन पर्वत धारण किया । अघासुर, अरिष्टासुर, केशी आदि असुरों तथा कालियनागका मर्दन करके दावानलको भी पी लिया । कंस और उसके वंश (भाइयों एवं अनुचर दैत्यों) को मारा, जरासंधको मरवाया और गुरु सान्दीपनिको (मरा हुआ) पुत्र लाकर दिया । (कौरव-सभामें) जब द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, आपने उसे (बढ़ाकर) अक्षय बना दिया । सूरदासजी कहते हैं—हे श्यामसुन्दर ! आप सर्वज्ञ तथा कृपानिधान हैं, आपका हृदय करुणासे अत्यन्त कोमल है; हे नन्दनन्दन ! (आपको छोड़कर) मैं किसकी शरणमें जाऊँ ? (मेरे लिये) दूसरा कोई (आश्रय) नहीं है ।

राग सारंग

[२५१]

तातैं तुम्हरौ भरोसौ आवै ।
दीनानाथ पतित-पावन जस वेद-उपनिषद गावै ॥
जौ तुम कहौ कौन खल तारयौ, तौ हौं बोलौं साखी ।
पुत्र हेत सुर-लोक गयौ द्विज, सक्यौ न कोऊ राखी ॥
गनिका किए कौन व्रत-संजम, सुक हित नाम पढ़ावै ।
मनसा करि सुमिरयौ गज बपुरैं, ग्राह प्रथम गति पावै॥
बकी जु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति दीनी ।
और कहति स्रुति, वृषभ-व्याधकी जैसी गति तुम कीनी ॥
द्रुपद-सुताहिं दुष्ट दुरजोधन सभा माहिं पकरावै ।
ऐसौ और कौन करुनामय, बसन-प्रवाह बढ़ावै ॥
दुखित जानि कै सुत कुबेर के, तिन्ह लगि आपु बँधावै ।
ऐसौ को ठाकुर, जनकारन दुख सहि, भलौ मनावै ॥
दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी ।
साक-पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी ॥
देवराज मख-भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई ।
सूर स्याम राखे सब निज कर, गिरि लै भए सहाई ॥

आप दीनोंके स्वामी हैं, पतितोंको पवित्र करनेवाले हैं—ऐसा आपका सुयश वेद और उपनिषद् गान करते हैं; इसीलिये आपपर भरोसा होता है। यदि आप कहें कि 'मैंने किस दुष्टका उद्धार किया ?' मैं साक्षी (प्रमाण) बतला रहा हूँ। पुत्रके बहाने आपका नाम लेकर ब्राह्मण (अजामिल) स्वर्ग (वैकुण्ठ) चला गया, (पापी होनेपर भी) कोई उसे रोक नहीं सका। गणिकाने कौन-सा व्रत या संयम किया था, वह तोतेको पढ़ानेके लिये आपका नाम लेती थी (उसीसे वह तर गयी)। बेचारे गजराजने तो मनसे आपका

स्मरण किया था (उसका उद्धार तो ठीक ही था); परंतु (उसे पकड़नेवाले) ग्राहने पहले सद्‌गति पायी । पूतना गोकुलमें छल करके (आपको मारने) गयी थी, उसे (आपने) माता यशोदाकी गति प्रदान की । आपने वृषभासुर, व्याध आदिको जैसी परम गति दी, उसका वर्णन भी वेद करते ही हैं । दुष्ट दुर्योधनने (दुःशासनके द्वारा) द्रौपदीको बीच सभामें पकड़ मँगाया; किंतु आपके समान दूसरा ऐसा करुणामय कौन होगा, जिन्होंने उसके वस्त्रको प्रवाहके समान (अनन्तरूपमें) बढ़ा दिया । (यमलार्जुन बने) कुबेरके पुत्रोंको दुखी जानकर, उसके (उद्धारके) लिये अपने-आपको आपने (ऊखलसे) बँधवाया । भला, ऐसा कौन स्वामी होगा, जो सेवकके लिये स्वयं दुःख सहकर उसका भला चाहे । दुर्योधनने पाण्डवोंका अहित सोचकर दुर्वासा मुनिको (वनमें पाण्डवोंके पास) भेजा था, किंतु आपने शाकका एक पत्ता खाकर सबको (शिष्योंके साथ दुर्वासाजीको) तृप्त कर दिया, वे स्नान करते हुए (कहीं चक्र पीछे न लग जाय, इस भयसे) कुश फेंककर (बिना संध्या किये ही) भाग गये । देवराज इन्द्रने अपने यज्ञका भङ्ग जानकर (मेघोंके साथ) स्वयं व्रजपर आकर प्रलयवृष्टि प्रारम्भ कर दी; किंतु सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दर गिरिराज (गोवर्धन) को अपने हाथपर उठाकर (व्रजके लोगोंके) सहायक हो गये, उन्होंने सबकी रक्षा कर ली ।

[२५२]

जिन जिनहीं केसव उर गायौ ।
तिन तुम पै गोविंद गुसाईं, सबनि अभै-पद पायौ ॥
सेवा यहै, नाम सर-अवसर जो काहुहिं कहि आयौ ।
कियौ बिलंब न छिनहुँ कृपानिधि, सोइ-सोइ निकट बुलायौ ॥
मुख्य अजामिल मित्र हमारौ, सो मैं चलत बुझायौ ।
कहाँ-कहाँ लौं कहौं कृपन की, तिनहुँ न स्रवन सुनायौ ॥

व्याध, गीध, गनिका जिहिं कागर, हौं तिहिं चिठि न चढ़ायौ।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं सूर सबै बिसरायौ॥

हे केशव! जिस-जिसने हृदयसे आपका गुणगान किया, हे मेरे स्वामी श्रीगोविन्द! उन सभीने आपके द्वारा अभयपद (मोक्ष) प्राप्त किया। आपकी यह सेवा है कि समय-असमय (चाहे जब और चाहे जैसे) किसीके द्वारा भी मुखसे आपका नाम निकल गया, बस, हे कृपानिधान! आपने (कभी) एक क्षणकी भी देर नहीं की, उसी-उसीको अपने पास (अपने धाममें) बुला लिया। अजामिल तो मेरा मुख्य मित्र था (मेरे-जैसा ही पापी था,) जाते समय उसने मुझे यह बात समझा दी थी (अजामिलके उद्धारसे मैंने यह शिक्षा ले ली)। अन्य कृपण (पापी) लोगोंकी बात कहाँ-कहाँतक कहूँ, उन सबोंने भी मेरे कानमें यही बात कही है। किंतु आपने व्याध, गीध, गणिकाका नाम जिस कागज (सूची) में लिखा, उसी चिट्ठी (सूची) में मेरा नाम नहीं चढ़ाया (कि इस पापीका भी उद्धार करना है)। इसलिये पतितोंकी पंचायत (समूह) में मैं लज्जासे मरा जाता हूँ कि आपने सूरदासको सब प्रकारसे विस्मृत कर दिया।

राग नटनारायन

[२५३]

बिरद मनौ बरियाइन छाँड़े।
तुम सौं कहा कहौं करुनामय, ऐसे प्रभु तुम ठाढ़े॥
सुनि-सुनि साधु बचन ऐसौ सठ, हठि औगुननि हिरानौ।
धोयौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ॥
जौ मेरी करनी तुम हेरौ, तौ न करौ कछु लेखौ।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, बिनय-दृष्टि अब देखौ॥

हे करुणामय! आपसे क्या कहूँ? ऐसे (परम उदार) स्वामी आप खड़े हैं (और मेरी यह दशा है! अब तो ऐसा लगता है) मानो आपने

अपने सुयशको हठपूर्वक त्याग दिया है। बार-बार साधुपुरुषोंके वचन सुनकर कि (भगवान् पतितपावन हैं) मेरे-जैसे दुष्टने हठपूर्वक अवगुण (पापों) में अपने-आपको खो दिया। कीचड़भरा वस्त्र (अत्यन्त मलिन चित्त) को धोना तो चाहता हूँ, किंतु जलसे (भजनसे) रुचि नहीं की। यदि आप कर्मोंकी ओर देखते हों, तब तो कोई विचार मत कीजिये (क्योंकि मेरे दुष्कर्मोंकी गणना ही शक्य नहीं है)। किंतु यह सूरदास पतित है और आप पतित-पावन हैं, अतः मेरी नम्रतापूर्ण दृष्टि (मेरी विनीत प्रार्थना) को ही देखिये।

राग धनाश्री

[२५४]

जन यह कैसैं कहै गुसाईं।
तुम बिनु दीनबंधु, जादवपति, सब फीकी ठकुराई॥
अपने-से कर-चरन-नैन-मुख, अपनी-सी बुधि पाई।
काल-कर्म-बस फिरत सकल प्रभु, तेऊ हमरी नाईं॥
पराधीन, पर-बदन निहारत, मानत मूढ़ बड़ाई।
हँसैं हँसत, बिलखै बिलखत हैं, ज्यौं दर्पन मैं झाईं॥
लियैं दियौ चाहैं सब कोऊ, सुनि समरथ जदुराई।
देव, सकल ब्यापार परस्पर, ज्यौं पसु दूध-चराई॥
तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि, पावै पीर पराई।
सूरदास के त्रास हरन कौं कृपानाथ-प्रभुताई॥

हे स्वामी ! यह सेवक कैसे कहे (किंतु सच्ची बात यह है कि) हे दीनबन्धु यादवेश ! आपको छोड़कर और सबका स्वामीपना फीका (तथ्यहीन) ही है। (सबके) हमारे-जैसे ही हाथ-पैर, नेत्र और मुख हैं तथा (सबको) हमारे-जैसी ही बुद्धि मिली है, हे स्वामी ! वे सब (देवादि) भी हमारी ही भाँति काल और कर्मके वशमें पड़े (संसार-चक्र)

में भटक रहे हैं। वे भी पराधीन हैं, दूसरोंका मुख (अपने पोषणके लिये) देखते रहते हैं, (फिर भी) सब अपनेको बड़ा मानते हैं। दर्पणमें दिखायी देनेवाले प्रतिबिम्बके समान वे हँसनेपर हँसते हैं और रोनेपर रोने लगते हैं (प्रसन्नतासे पूजा करनेपर प्रसन्न होते हैं और उदासीन या विमुख होनेपर उदासीन या विमुख हो जाते हैं)। हे सर्व-समर्थ श्रीयादवपति ! सुनिये, सभी कोई कुछ लेकर ही देना चाहते हैं। जैसे चराये जानेपर पशु दूध देता है, वैसे ही सभी देवता परस्पर (लेन-देनका ही) व्यापार करते हैं। कृपानिधान ! आपको छोड़कर कोई भी दूसरेके दुःखसे दुःख नहीं पाता। सूरदासके भयका नाश करनेमें कृपामय प्रभुका प्रभुत्व ही समर्थ है।

राग देवगंधार

[२५५]

इक कौं आनि ठेलत पाँच।
करुनामय, कित जाउँ कृपानिधि, बहुत नचायौ नाच॥
सबै क्रूर मोसौं ऋन चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।
बिना दियैं दुख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै॥
थाती प्रान तुम्हारी मोपै, जनमत हीं जो दीन्ही।
सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौं, देह जमानति लीन्ही॥
मन राखैं तुम्हरे चरननि पै, नित-नित जो दुख पावै।
मुकरि जाइ, कै दीन बचन सुनि, जमपुर बाँधि पठावै॥
लेखौ करत लाखही निकसत, को गनि सकत अपार।
हीरा जनम दियौ प्रभु हम कौं, दीन्ही बात सम्हार॥
गीता-बेद-भागवत मैं प्रभु, यौं बोले हैं आथ।
जन के निपट निकट सुनियत हैं, सदा रहत हौ साथ॥
जब-जब अधम करी अधमाई, तब-तब टोक्यौ नाथ।
अब तौ मोहि बोलि नहिं आवै, तुम सौं क्यौं कहौं गाथ॥

हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज, खिसिआनौ।
तब हँसि कह्यौ सूर-प्रभु सो तौ, मोहूँ सुन्यौ घटानौ॥

मुझ एक (जीव) को आकर पाँच (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) धक्का देते हैं । हे करुणामय ! हे कृपानिधान ! मैं कहाँ जाऊँ ? इन्होंने तो (मुझे) बहुत नाच नचाया (तंग किया)। ये सब क्रूर (निर्दय) हैं, मुझसे (अपना दिया) ऋण चाहते हैं । (इन्होंने मुझे जो सुख-सुविधा दी उसका बदला चाहते हैं)। अब आप ही कहिये कि उनको क्या दूँ । हे दयानिधान ! बिना दिये ये मुझे दुःख देते हैं, कहिये किस प्रकार (क्या) किया जाय । आपकी प्राणरूपी धरोहर (पूँजी) मेरे पास थी, जो आपने मुझे जन्मते ही दिये; उसे मैंने पाँचोंको बाँट दी और शरीर उन्होंने जमानतमें ले लिया (प्राण और शरीर—दोनों इन्द्रियोंके दास बन गये)। अब यदि मन आपके चरणोंमें लगाता हूँ, जो कि सदा दुःख ही पाता रहता है तो या तो वह स्वयं (आपके चरणोंमें लगना) अस्वीकार कर देता है, अथवा (बलपूर्वक उसे लगानेपर उसके) दीन वचन सुनकर वे पाँचों मुझे बाँधकर यमलोक भेज देते हैं । उनके ऋण (कर्मवासनाकी) गणना करनेपर लाखों निकलता है, उसकी गणना कौन कर सकता है, वह तो अपार है (अतः समस्त कर्मोंका फलभोग तो कभी पूरा होना नहीं है)। हे प्रभु ! आपने तो मनुष्य-जन्मरूपी हीरा मुझे दिया था और उसे सम्हाल रखनेकी चेतावनी भी दी थी (किंतु मैंने उसे खो दिया, यह भूल तो मेरी ही है)। गीता, वेद, श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहा गया है कि—प्रभु (सर्वत्र) हैं । यह भी सुना जाता है कि अपने भक्तके आप अत्यन्त समीप रहते हैं । सदा साथ ही रहते हैं । हे स्वामी ! जब-जब इस अधमने अधमता की, तभी-तभी आपने इसे टोका (रोकनेका प्रयत्न किया)। अब तो मुझसे बोला भी नहीं जाता, आपसे अपनी गाथा (कथा) कैसे कहूँ । मैं तो जन्मसे ही मूर्ख हूँ, पतित हूँ, सर्वथा निर्लज्ज हूँ और इस समय तो खीझा हुआ हूँ । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी (ने जब मेरी यह बात सुनी) तब हँसकर बोले—'यह तो मैंने भी सुना है कि वह (मेरी

दी हुई पूँजी) तो घट गयी है ? (अर्थात् मुझे पता है कि तुम्हारा जीवनकाल भजनके बिना बीत गया है, पर चिन्ता मत करो) ।'

राग सारंग

[२५६]

तुम हरि, साँकरे के साथी ।
सुनत पुकार, परम आतुर ह्वै दौरि छुड़ायौ हाथी ॥
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही, वेद-उपनिषद साखी ।
बसन बढ़ाइ द्रुपद तनया की सभा माँझ पति राखी ॥
राज-रवनि गाईं व्याकुल ह्वै दै-दै तिनकौं धीरक ।
मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक ॥
कपट-रूप निसिचर तन धरिकै अमृत पियौ गुन मानी ।
कठिन परैं ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुखदानी ॥
ऐसे कहौं कहाँ लगि गुन-गन, लिखत अंत नहिं लहिऐ ।
कृपासिंधु उनही के लेखैं मम लज्जा निरवहिऐ ॥
सूर तुम्हारी आसा निबहै, संकट मैं तुम साथै ।
ज्यौं जानौ त्यौं करौ, दीन की बात सकल तुव हाथै ॥

हे हरि ! आप संकटके समयमें साथ देनेवाले हैं । पुकार सुनते ही आप अत्यन्त आतुर होकर दौड़ पड़े थे और गजराजको (ग्राहसे) छुड़ा लिया था । वेद और उपनिषद् इस बातके साक्षी हैं कि आपने परीक्षित्की गर्भमें (ब्रह्मास्त्रसे) रक्षा की । कौरव-सभामें द्रौपदीका वस्त्र बढ़ाकर उसकी लज्जा बचायी । (जरासन्धकी कैदमें पड़े) राजाओंकी रानियाँ व्याकुल हो-होकर आपका गुणगान कर रही थीं, उन्हें धैर्य दिलाकर आपने मगधराज जरासंधको मारकर (भीमसेनद्वारा मरवाकर) (उन) सब राजाओंको (बंदी-घरसे) मुक्त कर दिया, हे स्वामी ! ऐसे आप दूसरोंकी पीड़ा समझनेवाले हैं । राक्षस राहुने कपटसे देवरूप बनाकर अमृतका गुण समझकर अमृत पी

लिया; किंतु हे स्वामी ! आप तो ऐसे सुखदाता हैं कि संकट पड़नेपर उस अवसरपर (अमृतमन्थनके समय) भी आप प्रकट हुए थे । इस प्रकारके आपके गुणोंके समूहोंका मैं कहाँतक वर्णन करूँ, लिखते हुए उनका अंत मिल नहीं सकता । हे कृपासिंधु ! अपने उन अनन्त गुणोंका ही ध्यान करके मेरी लाज (भी) बचा लीजिये । सूरदासका निर्वाह (उद्धार) आपकी आशा करके ही हो सकता है, संकटमें आप ही सदा साथ रहते हैं । अब जैसा समझमें आये, वैसा आप करें; इस दीनकी तो सारी (बात) आपके (ही) हाथमें है ।

[२५७]

तुम बिनु साँकरै को काकौ ।
तुमही देहु बताइ देवमनि ! नाम लेउँ धौं ताकौ ॥
गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौं ।
मेटी पीर परम पुरुषोत्तम, दुख मेट्यौ दुहु घाँ कौ ॥
'हा करुनामय' कुंजर टेर्‌यौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ ।
लागि पुकार, तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन थाकौ ॥
अंबरीष कौं साप देन गयौ, बहुरि पठायौ ताकौं ।
उलटी गाढ़ परी दुर्वासैं, दहत सुदरसन जाकौं ॥
निधरक भए, पांडु-सुत डोलत, हुतौ नहीं डर काकौं ।
चारौ वेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत हैं ताकौ ॥
जरासिंध कौ जोर उघार्‌यौ, फारि कियौ द्वै फाँकौ ।
छोरी बंदि विदा किये राजा, राजा ह्वै गये राँकौ ॥
सभा माँझ द्रौपदि पति राखी, पति-पानिप कुल ताकौ ।
बसन-ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौ झाँकौ ॥
भीर परैं भीषम-प्रन राख्यौ, अर्जुन कौ रथ हाँकौ ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, भक्तबछल प्रन ताकौ ॥
नरहरि ह्वै हिरनाकुस मार्‌यौ, काम पर्‌यौ हो बाँकौ ।
गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं बिरद न लाग्यौ टाँकौ ॥

(हे प्रभु!) आपको छोड़कर संकटके समयमें कौन किसका (सहायक) होता है? हे देवशिरोमणि! आप ही (ऐसे किसीको) बता दीजिये जिसका कि मैं नाम लूँ। हे पुरुषोत्तम! आपने गर्भमें (ब्रह्मास्त्रसे) परीक्षित्‌की रक्षा की, जहाँ (उनकी) माता (उत्तरा) का कोई वश नहीं था। आपने (उनका) त्रास मिटा दिया और इस प्रकार दोनों ओरके (गर्भस्थ बालक तथा बालककी माता एवं पाण्डवादि कुलके लोगोंके) दुःखको दूर कर दिया। गजराजमें बल नहीं रह गया था, वह थक गया था; उसने 'हा करुणामय!' कहकर पुकार की, आपने उसकी पुकार सुन ली; उसके बन्धन (ग्राह) को काट दिया और तुरन्त उसको मुक्त कर दिया। दुर्वासा मुनि अम्बरीषको शाप देने (शापरूपी कृत्यासे मारने) गये थे; किंतु उलटे उनपर ही संकट पड़ गया, उन्हें (आपका) सुदर्शन चक्र जलाने लगा और (अपने पास आनेपर) आपने भी उन्हें फिर (अम्बरीषके पास रक्षाके लिये) लौटा दिया। (उधर) पाण्डुके पुत्र (पाण्डव आपके भरोसे) निर्भय हुए (वनमें) घूमते रहे, उन्हें किसीका भय नहीं था। चारों वेद और चार मुखवाले ब्रह्माजी भी (आपका भक्त होनेसे ही) उन (पाण्डवों) के यशका गान करते हैं। जरासन्धके बलका भेद आपने प्रकट कर दिया, इससे भीमसेनने उसे चीरकर दो टुकड़े कर दिया। उसकी कैदसे छुड़ाकर आपने राजाओंको (अपने-अपने राज्यमें लौट जानेके लिये) विदा कर दिया; दूसरी ओर (आपसे विमुख) राजा भी कंगाल हो गये। कौरवोंकी सभामें आपने द्रौपदीकी लज्जा रख ली—केवल लज्जा ही नहीं, उसके पतियोंका गौरव और कुल मर्यादा भी आपने बचा ली। हे विश्वम्भर! आपने उसके (छोटेसे) वस्त्रकी आड़में वस्त्रोंका अम्बार उत्पन्न करके उसे तनिक भी अनावृत्त नहीं होने दिया। (महाभारत-युद्धमें) आप जब अर्जुनका रथ हाँक रहे थे (उनके सारथि बने हुए थे) संकट पड़नेपर आपने (अपने) भक्तवत्सलताके विरदकी ओर देखते हुए (शस्त्र न उठानेकी प्रतिज्ञा तोड़कर) भीष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षा की और रथसे उतरकर हाथमें चक्र उठा लिया। बड़ा टेढ़ा (कठिन) प्रसङ्ग आ पड़ा था (हिरण्यकशिपुको लगभग

अमरत्व-जैसा वरदान मिला था) किंतु नृसिंहरूप धारण करके आपने (प्रह्लादकी रक्षाके लिये) हिरण्यकशिपुको मार डाला। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी श्रीगोपीनाथजीके सुयशमें कभी थिगली नहीं लगी।

राग धनाश्री

[२५८]

दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभय-दान-दाता।
साँची बिरुदावलि, तुम जग के पितु-माता॥
ब्याध-गीध-गनिका-गज, इन मैं को ज्ञाता।
सुमिरत तुम आये तहँ, त्रिभुवन-बिख्याता॥
केसि-कंस दुष्ट मारि, मुष्टिक कियौ घाता।
धाए गजराज काज, केतिक यह बाता॥
तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता।
सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी कैं पाता॥
गौतम की नारि तरी नैंकु परसि लाता।
और को है तारिबे कौं, कहौ कृपा-ताता॥
माँगता है सूर त्यागि जिहिं तम मन राता।
अपनी प्रभु भक्ति देहु, जासौं तुम-नाता॥

सुना है कि आप दीनोंपर दया करनेवाले तथा (उन्हें) अभयदान देनेवाले हैं। आपके सभी सुयश सच्चे हैं। आप ही संसारके पिता एवं माता हैं। व्याध, गीध (जटायु), गणिका और गजराज—इनमें भला, ज्ञानी कौन था ? लेकिन स्मरण करते ही आप उनके पास आ गये, यह बात त्रिभुवनमें प्रसिद्ध है। आपने दुष्ट केशी और कंसको मारा, मुष्टिकका संहार किया, गजराजके लिये दौड़ पड़े, यह सब (निग्रह और अनुग्रहकी) बात आपके लिये कितनी है ? (आपके लिये तो इनका कोई महत्त्व ही नहीं है।) (सुदामाके) चिउड़े खाते ही (उन्हें) आपने तीनों लोकोंका ऐश्वर्य दे दिया। हे स्वामी ! आप तो एक तुलसीदलसे प्रसन्न होकर सर्वस्व दे देते हैं। आपके चरणोंका तनिक-सा स्पर्श होते ही गौतम मुनिकी पत्नी

अहल्या तर गयी। हे कृपाके स्वामी! बताइये तो कि आपके लिये उद्धार करनेको और बचा कौन है? जिस तमोगुणसे उसका मन रँगा हुआ है, उसे त्यागकर सूरदास आपसे यही माँगता है—हे नाथ! मुझे अपनी भक्ति दीजिये, जिससे आपके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाय।

राग सारंग

[२५१]

ऐसे और बहुत खल तारे।
चरन-प्रताप, भजन-महिमा कौं, जो कहि, सकै तुम्हारे॥
दुखित गयंद, दुष्ट-मति गनिका, नृग नृप कूप उधारे।
बिप्र बजाइ चल्यौ सुत कैं हित, कटे महा दुख भारे॥
ब्याध, गीध, गौतम की नारी, कहौ कौन ब्रत धारे।
केसी, कंस, कुवलया, मुष्टिक, सब सुख धाम सिधारे॥
उरजनि कौं विष बाँटि लगायौ, जसुमति की गति पाई।
रजक-मल्ल-चानूर दवानल-दुख-भंजन सुखदाई॥
नृप सिसुपाल महा पद पायौ, सर-अवसर नहिं जान्यौ।
अघ बक-तृनावर्त-धेनुक हति, गुन गहि दोष न मान्यौ॥
पांडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिनि बसन पुजाए।
बिपति काल सुमिरत तिहिं अवसर जहाँ-तहाँ उठि धाए॥
गोप-गाइ-गोसुत जल त्रासत, गोबर्धन कर धार्‌यौ।
संतन दीन, हीन, अपराधी, काहैं सूर बिसार्‌यौ॥

ऐसे (मेरे-जैसे) बहुत-से दुष्टोंका आपने उद्धार किया है। आपके चरणोंके प्रताप और आपके भजनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। दुःखमें पड़े गजराज, दुष्टबुद्धि गणिका और (गिरगिट बनकर) कुएँमें पड़े राजा नृगका आपने उद्धार किया। ब्राह्मण (अजामिल) पुत्रके बहाने (आपका नाम लेकर) डंकेकी चोट (आपके धाममें) चला गया और उसके भारी एवं महान् दुःखोंका अन्त हो गया। व्याध, गीध (जटायु), गौतम

मुनिकी पत्नी (अहल्या) ने बताइये तो कौन-सा व्रत धारण किया था (बिना किसी साधन-व्रतके ही आपने उनका उद्धार कर दिया)। केशी, कंस, कुवलयापीड़ हाथी और मुष्टिक—ये सब (दुष्ट होकर भी आपकी कृपासे) आपके सुखमय धाममें चले गये। पूतनाने (आपको मारनेकी बुरी नीयतसे) विष पीसकर (अपने) स्तनोंमें लगा लिया था (पर आपकी उदारतासे) उसने माता यशोदाकी गति प्राप्त की ? धोबी, (कंसके) पहलवान चाणूर, (वह असुर जो कपटसे) दावानल (बना था)—आप इन सबके दुःखके नाशक और उन्हें परम सुख देनेवाले हैं। (सदा आपकी निन्दा करनेवाला) राजा शिशुपाल महापद (वैकुण्ट-धाम) को पा गया। (किसीका उद्धार करनेमें) आपने समय-असमय समझा ही नहीं। अघासुर, बकासुर, तृणावर्त, धेनुकासुरको मारकर आपने उनके गुणोंका ही ग्रहण किया (और उन्हें सद्गति दी), उनके दोषोंको माना ही नहीं (दोषोंपर ध्यान ही नहीं दिया)। द्रौपदी कौरव-सभामें वस्त्रहीन की जा रही थी, उसके लिये आपने करोड़ों वस्त्र पूर्ण कर दिये (उसका वस्त्र अपार बढ़ा दिया)। विपत्तिके समय जहाँ भी किसीने आपको स्मरण किया, आप उसी समय वहाँ उठकर दौड़े गये। गोप, गायें, बछड़े सब (प्रलय-वृष्टिके) जलसे कष्ट पा रहे थे (उनकी रक्षाके लिये) आपने हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठा लिया। (किंतु नाथ !) सदाके इस दीन-हीन, अपराधी (पापी) सूरदासको ही आपने क्यों विस्मृत कर दिया ? (मुझपर आप कृपा क्यों नहीं करते ?)

राग धनाश्री

[२६०]

अब मोहि मज्जत क्यौं न उबारौ।
दीनबंधु, करुनानिधि स्वामी, जन के दुःख निवारौ॥
ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ।
बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट-अधारौ॥

गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहुँ न उतारौ।
तृष्ना-तड़ित चमकि छनहीं-छन, अह-निसि यह तन जारौ॥
यह भव-जल कलिमलहि गहे है, बोरत सहस प्रकारौ।
सूरदास पतितनि के संगी, बिरदह नाथ! सम्हारौ॥

अब मुझ डूबते हुएको आप क्यों नहीं उबार लेते! हे दीनबन्धु! हे करुणानिधि! हे स्वामी! सेवकके कष्टोंको दूर कीजिये। ममतारूपी घटा छायी है, मोहरूपी बूँदें पड़ रही हैं और कामनारूपी नदी अपार बढ़ रही है। मैं डूब रहा हूँ, कहीं भी मुझे थाह नहीं मिल रही है, केवल गुरुजन (सत्पुरुषोंकी) आड़ ही एकमात्र आधार है। (सत्पुरुषोंके वचन ही कुछ सहायता देते हैं।) लोभ और क्रोधरूपी नाले (उमड़कर) गर्जना कर रहे हैं। उतरनेका घाट कहीं दिखायी नहीं पड़ता। क्षण-क्षणमें तृष्णारूपी बिजली चमक-चमककर रात-दिन इस शरीरको जला रही है। यह संसार-रूपी जल कलियुगके मलोंको पकड़े हैं (गंदा है) और हजारों प्रकारसे मुझे डुबा रहा है। सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी! आप तो पतितोंके साथी हैं, अपने सुयश (पतितपावन स्वरूप) को अब सँभाल लीजिये।

[२६१]

जगतपति नाम सुन्यौ हरि, तेरौ।
मन चातक जल तज्यौ स्वाति हित, एक रूप व्रत धार्‍यौ।
नैंकु वियोग मीन नहिं मानत, प्रेमकाज वपु हार्‍यौ॥
राका-निसि, केते अंतर ससि निमिष चकोर न लावत।
निरखि पतंग बानि नहिं छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत॥
कीन्हे नेह-निबाह जीव जड़, ते इत-उत नहिं चाहत।
जैहै काहि समीप सूर नर, कुटिल वचन-दव दाहत॥

हे हरि! मैंने आपका नाम जगत्पति सुना है। जैसे चातकने स्वाती नक्षत्रके ही जलोंको पीनेका नियम करके अन्य सब जलोंको छोड़ दिया है,

वैसे ही मेरे मनने भी अन्य सबको त्यागकर एकमात्र आपके स्वरूपमें ही लगनेका नियम ले लिया है। मछली जैसे (जलसे) तनिक भी वियोग नहीं सह पाती, प्रेमके कारण अपने शरीरको हार जाती (देहका त्याग कर देती) है; जैसे पूर्णिमाकी रात्रिमें चन्द्रमा (पृथ्वीसे) कितनी (अधिक) दूरीपर रहता है, किंतु चकोर (चन्द्रमाको देखते समय) पलकें भी नहीं गिराता; दीपकको देखकर (उसके पास जानेका) अपना स्वभाव जैसे पतंग नहीं छोड़ता, यद्यपि दीपककी ज्योति उसका शरीर जला देती है; उसी प्रकार जो मूर्ख (ज्ञानहीन) प्राणी भी प्रेमका व्रत लिये हुए रहते हैं, वे इधर-उधर (दूसरी ओर) नहीं ताकते; फिर मनुष्य होकर (आपसे प्रेम करके) यह सूरदास दूसरे किसके समीप जायगा। कुटिल पुरुषोंकी वाणी-रूपी दावाग्नि मुझे जलाती है (फिर भी मैं आपका आश्रय छोड़कर अन्य-का आश्रय ले नहीं सकता)।

राग देवगंधार

[२६२]

जौ पै यहै बिचार परी।
तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी॥
जौ नाहीं अनुसरत नाम जग, बिदित बिरद कत कीन्हौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह कैं, हाथ बाँधि कत दीन्हौ॥
मनसा और मानसी सेवा, दोउ अगाध करि जानौ।
होहु कृपालु कृपानिधि, केसव, बहु अपराध न मानौ॥
काकौ गृह, दारा, सुत, संपति, जासौं कीजै हेत।
सूरदास प्रभु दिन उठि मरियत, जम कौं लेखौ देत॥

यदि यही (उपेक्षा करनेका ही) निश्चय कर लिया था तो फिर कलियुगके पापोंको लूटने (एकत्र करने) को मेरे शरीरका निर्माण ही (आपने) क्यों किया? यदि संसारमें अपने (पतित-पावन) नामका

अनुसरण (वैसा व्यवहार) नहीं करना था तो आपने संसारमें अपने (पतित-पावन) सुयशको विख्यात ही क्यों किया ? और (मुझे) काम, क्रोध, मद, लोभ, मोहके हाथमें बाँधकर क्यों सौंप दिया ? मनसे आपका चिन्तन और मानसिक सेवा (पूजन)—इन दोनोंको ही मैं अगाध (अत्यन्त कठिन) समझता हूँ। हे कृपानिधान केशव ! कृपालु होइये (कृपा कीजिये) ! मेरे बहुत अपराधों (पापों) को मानिये मत (उनकी ओर ध्यान मत दीजिये) ! सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! ये गृह, स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति आदि हैं किसकी (ये किसीकी अपनी नहीं हुईं), जिनसे प्रेम किया जाय। (इनमें आसक्त होकर तो) यमराजको अपने कर्मोंका विवरण देते हुए सदा ही संकट भोगना पड़ता है।

राग टोड़ी

[२६३]

भजहु न मेरे स्याम मुरारी।
सब संतनि के जीवन हैं हरि, कमल-नयन प्यारे, हितकारी ॥
या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना-तरँग उठति अति भारी।
नाव न पाई सुमिरन हरि कौ, भजन-रहित बूड़त संसारी ॥
दीन-दयाल, अधार सबनि के, परम सुजान, अखिल अधिकारी।
सूरदास किहि तिहि तजि जाँचै, जन-जन-जाँचक होत भिखारी ॥

मेरे श्यामसुन्दर श्रीमुरारीका भजन करो न। वे कमलनयन श्रीहरि समस्त संतोंके जीवनस्वरूप, प्रियतम एवं हितकारी हैं ! यह संसार समुद्रके समान है, जिसमें मोहरूपी जल भरा और तृष्णाकी बहुत बड़ी तरङ्गें उठ रही हैं। जिन्होंने श्रीहरि-स्मरणरूपी नौका नहीं प्राप्त कर ली, वे भजनशून्य संसारासक्त लोग इसमें डूब जाते हैं। जो दीनोंपर दया करनेवाले, सबके आधार, परम सुजान (सर्वज्ञ) एवं समस्त लोकोंके स्वामी हैं, सूरदास उन प्रभुको छोड़कर और किससे याचना करे। जो प्रत्येक व्यक्तिसे याचना करता-फिरता है, वह तो भिक्षुक होता है।

*

राग धनाश्री

[२६४]

हारी जानि परी हरि ! मेरी ।
माया-जल बूड़त हौं तकि तट, चरन-सरन धरि तेरी ॥
भव-सागर, बोहित बपु मेरौ, लोभ-पवन दिसि चारौ ।
सुत-धन-धाम-त्रिया हित औरै लद्यौ बहुत विधि भारौ ॥
अब भ्रम-भँवर पर्‌यौ ब्रजनायक, निकसन की सब विधि की ।
सूर सरद-ससि-वदन दिखाएँ उठै लहर जलनिधि की ॥

हे श्रीहरि ! अब मुझे अपनी हार समझमें आ गयी (अब मैं थककर निराश हो गया) । आपके चरणोंकी शरणरूपी किनारेको देखता हुआ भी मायाके जलमें डूब रहा हूँ । (जानता हूँ कि आपके चरणोंकी शरण लेते ही संसार-सागरसे पार हो जाऊँगा; किंतु शरण ले नहीं पाता ।) संसार-सागरमें यह मेरा शरीर ही जहाज है, लोभरूपी आँधी चारों ओर चल रही है, पुत्र, धन, भवन, स्त्री आदिकी आसक्तिरूपी बहुत प्रकारका भारी भार मुझपर लदा है । हे ब्रजनायक ! अब भ्रम (अज्ञान) रूपी भँवरमें पड़ गया हूँ, इससे निकलनेके अनेक उपाय कर लिये (परन्तु एक भी सफल नहीं हुआ) । सूरदासजी कहते हैं--हे प्रभु ! शरद्‌ऋतुके पूर्ण चन्द्रके समान अपने श्रीमुखका आप अब दर्शन दें तो इस संसारसागरमें तरङ्ग उठें (जिससे मैं भँवरसे निकलकर किनारे लग जाऊँ--आपकी शरणमें पहुँच जाऊँ) ।

राग रामकली

[२६५]

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्न स्वामी ।
नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहि पर,
सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी ॥

परयौ भव-जलधि में, हाथ धरि काढ़ि मम
दोष जनि धारि चित काम-कामी।
सूर बिनती करै, सुनहु नंद-नंदन तुम,
कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी॥

मेरे स्वामी सर्वसमर्थ श्रीकृष्णचन्द्र अनाथोंके नाथ हैं। हे शार्ङ्ग-धर, गरुड़पर चलनेवाले, सम्पूर्ण पापोंके नाशक, श्रीहरि! हे स्वामी! मुझपर कृपा करो। मैं संसार-सागरमें पड़ा हूँ, भोगोंको ही चाहनेवाला (भोगासक्त) हूँ, किंतु मेरे दोषोंको चित्तमें धारण मत कीजिये (उनपर ध्यान मत दीजिये); मुझे हाथ पकड़कर (इस संसार-समुद्रसे) निकाल लीजिये। हे नन्दनन्दन! सुनो, यह सूरदास प्रार्थना कर रहा है—आप तो अन्तर्यामी हैं, आपसे और स्पष्ट करके क्या कहूँ।

राग धनाश्री

[२६६]

अद्भुत जस-बिस्तार करन कौं हम जन कौ बहु हेत।
भक्त-पावन कोउ कहत न कबहूँ, पतित-पावन कहि लेत॥
जय अरु बिजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख-वध-बिस्तार।
जद्यपि जगत जननि कौ हरता, सुनि सब उतरत पार॥
सेसनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बड़ाई।
जातुधानि-कुच-गर मर्दत तब, तहाँ पूर्नता पाई॥
धर्म कहैं, सर सयज गंग-सुत, तेतिक नाहिं सँतोष।
सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष॥
धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहिंन तुम्हरौ काज।
भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत-समाज॥
भार-हरन बिरुदावलि तुम्हरी, मेरे क्यौं न उतारौ।
सूरदास-सत्कार किए तैं ना कछु घटै तुम्हारौ॥

अपने अद्‌भुत यशका विस्तार करनेके लिये (श्रीहरिका) मुझ-जैसे (अधम) सेवकोंपर बहुत प्रेम है; क्योंकि कोई भी (भगवान्‌को) भक्त-पावन कभी नहीं कहता, पतित-पावन कहकर ही सब उनका स्मरण करते हैं। जय और विजय (को अपने धाम भेजने) की तो कोई कथा विख्यात है नहीं (कि वे कौन थे और कैसे भगवान्‌के पार्षद बने), किंतु रावणके वधका विस्तृत वर्णन मिलता है। (सब जानते हैं कि भगवान् रामने रावणको मारकर अपने धाम भेज दिया।) यद्यपि उसने जगज्जननी जानकीका हरण किया था, फिर भी उस (के उद्धार) की कथा सुनकर सभी (भवसागरसे) पार हो जाते हैं। भगवान् विष्णु (सहस्र फणोंवाले) शेष-नागके ऊपर सोते हैं, इसमें उनकी उतनी महत्ता नहीं है, जो पूर्णता उन्हें तब प्राप्त हुई, जब उन्होंने पूतनाके स्तनोंमें लगे विषको पीकर उसे परमपद दिया। (श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावसे) शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म-पितामह (घोर पीड़ासे रहित होकर) धर्मोपदेश करने लगे, इसमें उतने संतोष (आश्वासन) की प्राप्ति नहीं होती, जितना कि पुत्रके बहाने आतुर-भावसे भगवन्नामका स्मरण करके अजामिलका उद्धार हो गया, इस बातसे भगवन्नामकी निर्दोषता (परमपावनता) प्रकट होती है। (हे प्रभु !) धर्म-कर्म करनेवाले, अधिकारी (पुण्यात्मा) लोगोंसे तो आपका कोई काम है नहीं (वे तो अपने कर्मोंसे ही उद्धार पा जाते हैं)। आप तो पृथ्वीका भार दूर करने (पापीलोग जो पृथ्वीके भाररूप हैं, उनका उद्धार करने) के लिये प्रकट होते (अवतार लेते) हैं, यही बात संतोंका समाज गान करता (कहता) है। आपकी इसी बातके लिये ख्याति है कि आप सबका भार दूर करते हैं, तब आप मेरा भार भी क्यों नहीं उतार देते। इस सूरदासका सत्कार कर देने (इसे अपना लेने) से आपका (महत्त्व) कुछ घट नहीं जायगा।

[२६७]

हरि जू, हौं यातैं दुख-पात्र।
श्रीगिरिधरन-चरन-रति ना भइ, तजि बिषया-रस मात्र॥

हुतौ आढ्य, तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-बन-जात्र ।
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र ॥
भवन सँवारि, नारि-रस लोभ्यौ, सुत, वाहन, जन, भ्रात्र ।
महानुभाव निकट नहिं परसे, जान्यौ न कृत बिधात्र ॥
छल-बल-करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र ।
सुद्धासुद्ध बोझ बहु बढ्यौ सिर कृषि जु करी लै दात्र ॥
हृदय कुचील काम-भू तृष्ना-जल कलिमल है पात्र ।
ऐसे कुमति जाट सूरज कौं प्रभु बिनु कोउ न धात्र ॥

हरिजी ! मैं इसीसे दुःखपात्र (दुःख भोगनेका अधिकारी) बन गया हूँ; क्योंकि न तो श्रीगिरिधरलालके चरणोंमें मेरा प्रेम हुआ और न विषय-सुखमात्र (समस्त विषय-वासना) को मैं छोड़ ही सका । जब धनवान् था, तब बुरे कर्मोंमें धन खर्च करता रहा और व्रजभूमिकी यात्रा नहीं की, आपके सेवकों (भक्तों) का पोषण (सेवा) नहीं किया, केवल अपने शरीरका ही पोषण करता रहा । मकानको सजाया, स्त्री-सुखमें लुभाया रहा, पुत्र, सवारियाँ, कुटुम्बी, भाई आदिमें आसक्त रहा, महापुरुषोंके समीप नहीं गया (सत्सङ्ग नहीं किया) विधाताके विधानको समझा नहीं (कि धन और शरीर-बल नष्ट होकर रहेगा) । सब दिन-रात (सब समय) छल करके, बलपूर्वक (चाहे जैसे) जहाँ-तहाँसे (चाहे जिससे) दूसरोंका धन हरण करनेमें दौड़ता रहा । दाँता (खेतीका एक औजार हँसुआ) लेकर मैंने जो यह (अपकर्मोंकी) खेती की, उससे मेरे सिरपर शुद्ध और अशुद्ध कर्मोंका बहुत भार बढ़ गया । मेरा मलिन हृदय कामनाकी भूमि है (उससे सदा नाना प्रकारकी कामनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं), तृष्णारूपी जलसे भरा और कलियुगके मलों (पापों) का तो बर्तन ही है । ऐसे कुबुद्धि जाट (दुर्बुद्धि मूर्ख) सूरदासकी हे स्वामी ! आपको छोड़कर कोई रक्षा करनेवाला नहीं है ।

राग नट

[२६८]

मेरैं हृदय नाहिं आवत हौ, हे गुपाल, हौं इतनी जानत।
कपटी, कृपन, कुचील, कुदरसन दिन उठि बिषय-बासना बानत॥
कदली-कंटक, साधु-असाधुहिं, केहरि कैं सँग धेनु बँधाने।
यह बिपरीत जानि तुम जन की, अंतर दै बिच रहे लुकाने॥
जो राजा-सुत होइ भिखारी, लाज परै ते जाइ बिकाने।
सूरदास प्रभु अपने जन कौं कृपा करहु जौ लेहु निदाने॥

हे गोपाल ! मैं तो इतनी बात जानता हूँ कि आप मेरे हृदयमें नहीं आते। मैं तो कपटी हूँ, कृपण हूँ, मलिन हूँ; मेरा मुख देखना ही अशुभ है; प्रतिदिन सोकर उठते ही विषय-वासनाओं (के जाल) को बुनने लगता हूँ। अपना भक्त (कहलानेवाले) मुझमें और अपनेमें वैसी ही विषमता देखकर जैसी कि कण्टककी केलेके वृक्षके साथ, असाधुकी साधुके साथ और सिंहके साथ गौके बाँध दिये जानेपर होती है, आपने अपने और मुझमें अन्तर डाल दिया और मुझसे छिपे रह गये। यदि राजाका पुत्र भिक्षुक हो जाय या कहीं बिकने जाय तो उसकी लज्जा राजाको ही होती है (इसी प्रकार मेरे पतित होनेकी लज्जा भी आपको ही है) सूरदासजी कहते हैं— हे स्वामी ! अपने इस जनको यदि आप ठिकाने लगा दें (अपनी शरणमें ले लें) तो इसपर बड़ी कृपा करेंगे।

राग सोरठ

[२६९]

प्रभु मैं पीछौ लियौ तुम्हारौ।
तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ॥
महा कुबुद्धि, कुटिल, अपराधी, औगुन भरि लियौ भारौ।
सूर क्रूर की याही बिनती, लै चरननि मैं डारौ॥

हे प्रभु ! मैंने आपका पीछा पकड़ लिया है। आप तो दीनोंपर दया

करनेवाले कहे जाते हैं, मेरी सब आपत्तियाँ दूर कर दीजिये ! मैं तो अत्यन्त दुर्बुद्धि, कुटिल, अपराधी हूँ; मैंने दुर्गुणोंका भार ही लाद लिया है। अब इस दुष्ट सूरदासकी यही प्रार्थना है कि इसे लेकर अपने चरणोंमें डाल लीजिये। (अपनी शरणमें रख लीजिये।)

राग मुलतानी धनाश्री—तिताला

[२७०]

मेरी सुधि लीजौ हो, ब्रजराज।
और नहीं जग मैं कोउ मेरौ, तुमहिं सुधारन काज॥
गनिका, गीध, अजामिल तारे, सबरी औ गजराज।
सूर पतित पावन करि कीजै, बाँह गहे की लाज॥

हे ब्रजराज ! मेरी सुधि लीजिये ! मेरा संसारमें और कोई नहीं है। आप ही मेरे कार्यको सुधारनेवाले हैं। आपने गणिका, गीध (जटायु), अजामिल, शबरी और गजराजका उद्धार किया है। इस पतित सूरदासको भी पावन बनाकर हाथ पकड़े हुएकी लज्जा रख लीजिये।

राग खंबावती—तिताला

[२७१]

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ॥
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक-बरन ह्वै, गंगा नाम परौ॥
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै कै प्रन जात टरौ॥

मेरे स्वामी! मेरे दुर्गुणोंपर ध्यान मत दीजिये। आपका नाम समदर्शी है, उस नामके कारण ही मेरा भी उद्धार कीजिये। (देखिये!) एक लोहा पूजामें रखा जाता है (तलवारकी पूजा होती है) और एक लोहा (छुरी) कसाईके घर पड़ा रहता है, किंतु (समदर्शी) पारस इस भेदको नहीं जानता, वह तो दोनोंको ही (अपना स्पर्श होनेपर) सच्चा सोना बना देता है। एक नदी कहलाती है और एक नाला, जिसमें गंदा पानी भरा रहता है, किंतु जब दोनों (गङ्गाजीमें) मिल जाते हैं, तब उनका एक-सा रूप होकर गङ्गा नाम पड़ जाता है। (इसी प्रकार) सूरदासजी कहते हैं—यह शरीर माया (मायाका कार्य) और जीव ब्रह्म (ब्रह्मका अंश) कहा जाता है, किंतु मायाके साथ तादात्म्य हो जानेके कारण वह (ब्रह्मरूप जीव) बिगड़ गया (अपने स्वरूपसे च्युत हो गया।) अब या तो आप इनको पृथक् कर दीजिये (जीवकी अहंता-ममता मिटाकर उसे मुक्त कर दीजिये), नहीं तो आपकी (पतितोंका उद्धार करनेकी) प्रतिज्ञा टली (मिटी) जाती है।

राग मुलतानी—तिताला

[२७२]

अब मेरी राखौ लाज, मुरारी।
संकट मैं इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौं नारी॥
और कछू हम जानति नाहीं, आई सरन तिहारी।
उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी॥
नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन-कमल पर वारी।
सूर स्याम प्रभु अबिगतलीला, आपुहि आपु सँवारी॥

हे मुरारी! अब मेरी लज्जा रख लीजिये। एक संकट तो था ही (कि जीव संसार-चक्रमें पड़ा था) उसमें एक और संकट उत्पन्न हो गया (उसकी बुद्धि भी भ्रममें पड़ गयी)। मृग (परमपदको ढूँढ़नेवाले

जिज्ञासु) से उसकी स्त्री मृगी (बुद्धि) कहती है कि मैं और कुछ नहीं जानती; अतः आपकी शरणमें आयी हूँ। (बुद्धिने इस प्रकार जब जीवका ही आश्रय ले लिया;) तब पवन (प्राण) उलटे चलने लगे (चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख हो गयी) इससे खेत जल गये (जन्म-जन्मके कर्म-संस्कार भस्म हो गये) खेतका रखवाला कुत्ता (काम) सिर झाड़कर चला गया (कामनाएँ नष्ट हो गयीं)। मृगी (बुद्धि) नाचने-कूदने लगी (आनन्द-मग्न हो गयी) और चरणकमलोंपर न्योछावर हो गयी (भगवान्‌के चरणोंमें लग गयी)। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्यामसुन्दरकी लीला जानी नहीं जाती। अपने-आप ही उन्होंने सेवककी गति सुधार दी (उसे अपना लिया)।*

राग गूजरी

[२७३]

हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
इहि माया झूठी प्रपंच लगि, रतन-सौ जनम गँवायौ॥
कंचन कलस, बिचित्र चित्र करि, रचि-पचि भवन बनायौ।
तामैं तैं ततछन ही काढ़्यौ, पल भर रहन न पायौ॥
हौं तव संग जरौंगी, यौं कहि, तिया धूति धन खायौ।
चलत रही चित चोरि, मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ॥
बोलि-बोलि सुत-स्वजन-मित्रजन, लीन्यौ सुजस सुहायौ।
पर्‌यौ जु काज अंतकी बिरियाँ, तिनहुँ न आनि छुड़ायौ॥
आसा करि-करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ।
तोरि लयौ कटिहू कौ डोरा, तापर बदन जरायौ॥

* सूरसागरमें अनेक कूट पद हैं; उनमेंसे यह एक नमूनेकी भाँति संग्रहमें ले लिया गया है।

पतित-उधारन, गनिका-तारन, सो मैं सठ बिसरायौ ।
लियौ न नाम कबहुँ धोखैं हूँ, सूरदास पछितायौ ॥

श्रीहरिके बिना कोई काम नहीं आया । इस झूठी मायाके प्रपञ्चों-(संसारकी मोह-ममता) में लगकर मैंने रत्नके समान मनुष्य-जीवन खो दिया । जिसपर स्वर्णकलश चढ़ाया था और जिसमें विचित्र चित्रकारी करायी गयी थी, ऐसे भवनको बड़े परिश्रमसे सजाकर बनवाया था; किंतु (प्राण निकलते ही) उस भवनमेंसे (शरीर) तत्काल निकाल दिया गया, एक पल भी उसमें रह नहीं सका । 'मैं तुम्हारे साथ ही जलूँगी' (सती हो जाऊँगी) इस प्रकार कह-कहकर झूठी प्रवञ्चना करके पत्नीने मेरा धन खाया (मेरी सम्पत्तिका उपभोग किया) । वह चित्त चुराते हुए चला करती थी, किंतु (प्राण निकल जानेपर) उसने मुँह फेर लिया और एक पग भी नहीं पहुँचाया । पुत्रों, सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंको बुला-बुलाकर (उनकी सहायता करके) मैंने बड़ा सुहावना सुयश प्राप्त किया था; किंतु अन्त-समयमें जब काम पड़ा, तब उन्होंने भी मुझे आकर (मृत्युसे) छुड़ाया नहीं । बहुत-सी आशाएँ करके माताने जन्म दिया था और करोड़ों प्रकारसे लाड़ लड़ाया (प्यार किया) था, किंतु (मरनेपर पुत्रने) उसके कमरका धागा (कटिसूत्र) भी तोड़ लिया और इसपर भी इसका मुख जला दिया (मुखमें अग्नि दी) । जो पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं; गणिकाको (भी) जिन्होंने मुक्त कर दिया, मुझ शठने उन प्रभुको भुला दिया । कभी धोखेमें भी उनका नाम नहीं लिया । अब यह सूरदास पश्चात्ताप कर रहा है ।

राग देवगंधार

[२७४]

सकल तजि, भजि मन ! चरन मुरारि ।
स्रुति, सुम्रिति, मुनि जन सब भाषत, मैं हूँ कहत पुकारि ॥
जैसैं सुपनैं सोइ देखियत, तैसैं यह संसार ।
जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैं, उघरत नैन-किवार ॥

बारंबार कहत मैं तोसौं, जनम-जुआ जनि हारि।
पाछै भई सु भई सूर जन, अजहूँ समुझि सँभारि॥

अरे मन ! सब कुछ छोड़कर श्रीमुरारिके चरणोंका भजन कर। श्रुति-स्मृति तथा सब मुनिगण यही कहते हैं और मैं भी यही पुकारकर कहता हूँ। यह संसार वैसा ही (झूठा) है, जैसा सोते समय स्वप्नमें देखा जाता है। (ज्ञानरूपी) नेत्रोंके किंवाड़ खुलते (ज्ञान होते) ही क्षणभरमें ही यह विलीन हो जाता है। सूरदासजी कहते हैं—अरे बंदे ! मैं तुझसे बार-बार कह रहा हूँ कि (इस मनुष्य) जन्मरूपी बाजीको हार मत। पीछे जो हो गया, वह तो हो गया, पर अब भी विचार करके (इसे) सम्हाल ले (भगवान्‌का भजन करके इसकी रक्षा कर ले)।

राग गूजरी

[२७५]

अजहूँ सावधान किन होहि।
माया विषम भुजंगिनि कौ बिष, उतर्‍यौ नाहिन तोहि॥
कृष्नसुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ।
बारंबार निकट स्रवननि ह्वै, गुरु-गारुड़ी सुनायौ॥
बहुतक जीव देह-अभिमानी, देखत हीं इन खायौ।
कोउ-कोउ उबर्‍यौ साधु संग, जिन स्याम-सजीवनि पायौ॥
जाकौं मोह मैर अति छूटै, सुजस गीत के गाऐं।
सूर मिटै अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाऐं॥

अब भी सावधान क्यों नहीं होता ? मायारूपी भयंकर सर्पिणीका विष तुझमे (तेरे चित्तसे) अभी उतरा नहीं (दूर नहीं हुआ) है। कृष्ण-नाम ही सुन्दर मन्त्र तथा जीवित करनेवाली जड़ी है, जिसने मरते हुए जनोंको जिला दिया। गुरुदेवरूपी गारुड़ी (सर्पविष झाड़नेवाले) ने बारंबार तेरे कानोंके पास उसे सुनाया (उस कृष्ण-नामका तुझे बार-बार उपदेश किया)। बहुत-से देहाभिमानी (शरीरको ही अपना स्वरूप माननेवाले) जीवोंको

देखते-देखते ही इस (माया-सर्पिणी) ने खा लिया। कोई-कोई वे लोग बच गये, जिन्होंने साधु पुरुषोंका सङ्ग करके श्यामसुन्दररूपी उस सञ्जीवनी विद्याको पा लिया था, जिस (श्यामसुन्दर) के सुयश-गीतका गान करनेसे मोहरूपी सर्पविषसे आनेवाली लहर छूट जाती है। सूरदासजी कहते हैं कि अज्ञानरूपी मूर्च्छा तो ज्ञानरूपी सुन्दर ओषधि खानेसे मिटेगी।

राग धनाश्री

[२७६]

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ॥
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ॥
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम चरन मन पोइ॥

गोपालका किया ही सब कुछ होता है, (किसी कार्यके होनेका कारण) जो अपने पुरुषार्थको मानता है, वह अत्यन्त झूठा है। साधन (उपाय), मन्त्र, यन्त्र, उद्योग, बल इन सबको धो डालो (इनका भरोसा छोड़ दो)। नन्दनन्दनने जो कुछ (भाग्यमें) लिख रखा है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। दुःख-सुख, लाभ-हानिका विचार करके तुम क्यों रो-रोकर मरते हो (क्यों व्यर्थ चिन्तित होते हो)? सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्यामसुन्दर करुणामय हैं (उनका प्रत्येक विधान दयासे पूर्ण है); अतः उनके चरणोंमें ही मनको पिरोये (लगाये) रहो।

राग कान्हरौ

[२७७]

होत सो, जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै॥

जोगी जोग धरत मन अपनैं, सिर पर राखि जटै ।
ध्यान धरत महादेवऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै ॥
जती, सती, तापस आराधैं, चारौं वेद रटै ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै ॥

श्रीरघुनाथ जो विधान करते हैं, वही होता है । सिद्ध, साधक एवं मुनिगण उद्योग करते हुए थक जाते हैं, फिर भी उसमें न कुछ बढ़ता है, न घटता है । योगी लोग सिरपर जटा रखकर अपने मनमें योग (ध्यान, धारणा, समाधि) धारण करते हैं, महादेव और ब्रह्मा भी ध्यान करते हैं; किंतु उनसे भी (भगवान्‌का विधान) काटा (हटाया) नहीं जाता । यति (इन्द्रियसंयमी), सती (पतिव्रता नारी) तथा तपस्वी (भगवान्‌की ही) आराधना करते हैं; चारों वेद उनका ही गुणगान करते हैं । सूरदासजी कहते हैं—(उन) भगवान्‌का भजन किये बिना कर्मका बन्धन कटता नहीं ।

राग सारंग

[२७८]

भावी काहू सौं न टरै ।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रवि-ससि, आनि सँजोग परै ॥
मुनि बसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै ।
तात-मरन, सिय-हरन, राम बन बपु धरि बिपति भरै ॥
रावन जीति कोटि तैंतीसा, त्रिभुवन-राज करै ।
मृत्युहि बाँधि कूप मैं राखै, भावी बस सो मरै ॥
अरजुनके हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै ।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै ॥
हरीचंद-सौ को जग दाता, सो घर नीच भरै ।
जौ गृह छाँड़ि देश बहु धावै, तउ वह संग फिरै ॥

भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वैहै, को करि सोच मरै॥

होनहार (प्रारब्ध) किसीसे भी टलती नहीं। कहाँ वह राहु और कहाँ वे सूर्य-चन्द्र (बहुत दूरी है इनमें)! किंतु इनका संयोग भी (ग्रहणके समय) आ पड़ता है। वसिष्ठमुनि विद्वान् तथा ज्ञानी थे और उन्होंने बहुत श्रमसे सम्हालकर (राज्याभिषेकका) मुहूर्त निश्चित किया; किंतु (परिणाम यह हुआ कि) श्रीरामके पिता महाराज दशरथकी मृत्यु हुई, सीताजीका हरण हुआ, श्रीरामको वनवासी वेष धारणकर वनवासका कष्ट झेलना पड़ा। रावणने तैंतीसों करोड़ देवताओंको जीत लिया था और त्रिभुवनपर राज्य कर रहा था, मृत्युको भी बाँधकर उसने कुएँमें बंद कर रखा था, किंतु प्रारब्धवश वह भी मारा गया था। अर्जुनके तो (स्वयं) श्रीहरि ही सारथि थे, पर उन्हें भी वनमें निकलना (वनवास भोगना) पड़ा! राजसभा-में द्रौपदीका वस्त्र दुःशासनने खींचा (यद्यपि द्रौपदी श्रीकृष्णकी परम भक्ता थीं)! संसारमें हरिश्चन्द्रके समान कौन दानी होगा, पर उन्हें नीचके घर (चाण्डालके यहाँ) सेवा करनी पड़ी। यदि कोई घर छोड़कर बहुत-से देशोंमें दौड़ता (घूमता) फिरे, तो भी उसका प्रारब्ध उसके साथ ही घूमता है। तीनों लोकोंमें देवता, मनुष्य और जितने भी देहधारी हैं, सभी होनहार (प्रारब्ध) के वशमें हैं। अतः सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने जो विधान किया है; वही होगा, (तब) चिन्ता करके कौन मरता रहे (चिन्ताका व्यर्थ कष्ट क्यों उठाया जाय)?

राग कान्हर

[२७९]

तातैं सेइयै श्रीजदुराइ।
संपति बिपति, बिपति तैं संपति देह को यहै सुभाइ॥
तरुवर फूलै, फरै, पतझरै अपने कालहि पाइ।
सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ॥

दुतिया-चंद बढ़त ही बाढ़ै, घटत-घटत घटि जाइ।
सूरदास संपदा-आपदा जिनि कोऊ पतिआइ॥

इसलिये श्रीयदुनाथका सेवन करना चाहिये; क्योंकि शरीरका तो यह स्वभाव ही है कि संपत्तिसे विपत्ति और विपत्तिसे सम्पत्ति (सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख) आती ही रहती है। (उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।) जैसे श्रेष्ठ (फलदार) वृक्ष अपना समय पाकर (ऋतुके अनुसार) फूलता है, फलता है और फिर उसके पत्ते भी झड़ जाते हैं। सरोवरसे जल भरता है; भरकर उमड़ पड़ता (बाहर निकलने लगता) है, फिर सूख जाता है और तब वहाँ धूलि उड़ने लगती है। द्वितीयाका चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते ही (पूर्णिमाको पूरा हो जाता) है और फिर घटते-घटते (अमावस्याको) सर्वथा घट जाता (लुप्त हो जाता) है। इसलिये सूरदासजी कहते हैं कि कोई भी सम्पत्ति या विपत्तिपर (यह स्थिर रहेगी ऐसा) विश्वास न करे।

राग केदारौ

[२८०]

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल, जैसौ दरसन पावत॥
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उन कैं, चरन-कमल चित लावत।
मन-बच-कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत॥
मिथ्या-बाद-उपाधि-रहित है, बिमल-बिमल जस गावत।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत॥
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिन की, जे हरि-सुरति करावत॥

जिस दिन (घरमें) सत्पुरुष (संत) अतिथि बनकर पधारते हैं, उस दिन उनका दर्शन करनेसे (गृहस्वामी) वैसा ही फल प्राप्त कर लेता

है, जैसा करोड़ों तीर्थोंमें स्नान करनेसे मिलता है। उन सत्पुरुषोंके चरण-कमलोंमें चित्त लगानेसे दिन-प्रति-दिन (भगवान्‌में) नवीन प्रेम बढ़ता रहता है। वे संतजन मन, वाणी और कर्मसे और कुछ नहीं जानते, वे तो भगवान्‌का ही स्मरण (स्वयं) करते हैं और दूसरोंसे भी स्मरण कराते हैं। झूठे वाद-विवाद एवं झगड़ोंसे पृथक् रहकर वे भगवान्‌के परम निर्मल यश-का ही गान करते हैं। जो पहले (अनेक जन्मों) के कर्म-बन्धन हैं, उन्हें भी वे काट बहाते (दूर कर देते) हैं। जो सत्पुरुषका सङ्ग निरन्तर करते हैं, वे संसाररूपी (जन्म-मरणके) दुःखको दूर भगा देते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि उन सत्पुरुषोंका ही सङ्ग करो, जो श्रीहरिका स्मरण कराते हैं।

राग धनाश्री

[२८१]

सबै दिन एकै-से नहिं जात।
सुमिरन भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन-कुसलात॥
कबहूँ कमला चपल पाइ कै, टेढ़ैं टेढ़ैं जात।
कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत, भोजन कौं बिलखात॥
या देही कौ गरब करत, धन-जोबन कैं मद मात।
हौं बड़, हौं बड़ बहुत कहावत, सूधैं कहत न बात॥
बाद-बिबाद सबै दिन बीतैं, खेलत हीं अरु खात।
जोग न जुक्ति, ध्यान नहिं पूजा, बिरध भएँ पछितात॥
तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहे कौं इतरात?।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, कहूँ नाहिं सुख गात॥

सभी दिन एक समान व्यतीत नहीं होते हैं, अतः जबतक शरीर नीरोग है, तबतक श्रीहरिका स्मरण और भजन किया कर। कभी तो चञ्चला लक्ष्मीको पाकर टेढ़े-टेढ़े जाता (गर्वसे कुमार्गमें चलता) है और कभी (दरिद्र होनेपर) रास्ते-रास्तेकी धूलि समेटता फिरता है और भोजन-

के लिये (भूखसे) क्रन्दन करता है। धन और युवावस्थाके मदमें मतवाला होकर इस (नाशवान्) शरीरका गर्व करता है। मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ इस प्रकार बहुत (अहंकार करके) कहा करता है और (सीधे सरलतासे) बात भी नहीं करता। सभी दिन (पूरा जीवन) वाद-विवाद और खेलने तथा खानेमें ही व्यतीत हो गया। न योग किया, न दूसरा कोई साधन किया, न ध्यान किया, न पूजा की; अब वृद्ध होनेपर पश्चात्ताप करता है। सूरदासजी इसीलिये कहते हैं कि अरे मनुष्य ! व्यर्थ क्यों गर्व करता है॥ अब भी (अपनेको) सँभाल (बचा) ले। भगवान्का भजन किये बिना शरीरको भी कहीं सुख मिलना नहीं है।

राग सारंग

[२८२]

गरब गोबिंदहिं भावत नाहीं।
कैसी करी हिरनकस्यप सौं, प्रगट होइ छिन माहीं॥
जग जानै करतूति कंस की, बृष मारथौ बल बाहीं।
ब्रह्मा इंद्रादिक पछिताने, गर्ब धारि मन माहीं॥
जौबन-रूप-राज-धन-धरती जानि जलद की छाहीं।
सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौं जाहीं॥

गोविन्दको (किसीका) गर्व अच्छा नहीं लगता। (गर्व करनेवाले) हिरण्यकशिपुकी एक क्षणमें (नृसिंहरूपसे) प्रकट होकर उन्होंने क्या गति कर दी। कंसके कर्मोंको संसार जानता ही है, (उसे और) वृषासुरको भगवान्ने अपने भुजबलसे मार दिया। ब्रह्मा और इन्द्रादि लोकपाल भी मनमें गर्व धारण करके अन्तमें पछताये ही। युवावस्था, सुन्दर रूप, राज्य, सम्पत्ति और भूमिको बादलकी छायाके समान (क्षणभङ्गुर) समझो। सूरदासजी कहते हैं--गर्वका त्याग करके श्रीहरिका भजन करो। (भगवान्से) विमुख लोग दुर्गतिको प्राप्त होते हैं।

राग कान्हरौ

[२८३]

विषया जात हरष्यौ गात।
ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय सँग लपटात॥
बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात।
परै अचानक त्यौं रस लंपट, तनु तजि जमपुर जात॥
यह तौ सुनी ब्यास के मुख तैं, परदारा दुखदात।
रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच, उदर गंध गंधात॥
तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात।
जो नर भलौ चहत तौ सो तजि, सूर स्याम गुन गात॥

विषय-भोगोंके नष्ट होनेसे शरीर प्रसन्न हुआ (शरीरको वास्तविक सुख-शान्ति विषय-भोगोंसे पृथक् होनेपर ही मिलती है)। अन्यथा मनुष्य ऐसे अंधे (अज्ञानी) हैं कि निधि (परम धन) समझकर (विषय-भोगोंको) लूटते (पाप करके भी पानेका प्रयत्न करते) हैं और परस्त्रीके साथ लिपटते (संसर्ग करते) हैं। सभी (शास्त्र और सत्पुरुष) मना कर रहे हैं; किंतु उनका कहना नहीं मानते, नाना प्रकारके उपाय करके उड़ जाते (छिपकर पाप करते) हैं। ऐसे पाप-सुखके लम्पट (पापमें आसक्त) पुरुष शरीर छोड़कर यमलोक जाते हैं और वहाँ अचानक (बिना इच्छाके) नरकमें पड़ते हैं। यह तो भगवान् व्यासके मुखसे (शास्त्रसे) सुना है कि परस्त्री-संसर्ग दुःख देनेवाला है। रक्त, चर्बी, मल, मूत्र-मांसग्रन्थिसे बने कठोर स्तन और दुर्गन्धसे भरा उदर—ऐसी घृणास्पद नारीके लिये शरीर (स्वास्थ्य), धन और युवावस्थाको मनुष्य यहीं खो देता है—नरक जानेकी बात तो पीछे (मरनेपर) आती है (प्रत्यक्षमें जो हानि है, वह भी उसे नहीं सूझती)। सूरदासजी कहते हैं कि अरे मनुष्य ! यदि अपना भला चाहता है तो उसे (परस्त्रीकी आसक्तिको) छोड़ दे और श्यामसुन्दरका गुणगान कर।

[२८४]

पहिलै हौं ही हौ तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद-विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक॥
सो हौं एक अनेक भाँति करि, सोभित नाना भेष।
ता पाछै इन गुननि गए तैं, हौं रहिहौं अवसेष॥
सत मिथ्या, मिथ्या सत लागत, मम माया सो जानि।
रबि, ससि, राहु सँयोग बिना ज्यौं, लीजतु है मन मानि॥
ज्यौं गज फटिक मध्य न्यारौ बसि, पंच-प्रपंच-बिभूति।
ऐसैं मैं सबहिनि तैं न्यारौ, मनिनि ग्रथित ज्यौं सूत॥
ज्यौं जल-मसक जीव घट अंतर, मम माया इमि जानि।
सोई जस सनकादिक गावत, नेति नेति कहि मानि॥
प्रथम ज्ञान, विज्ञान द्वितिय मत, तृतिय भक्ति कौ भाव।
सूरदास सोई समष्टि करि व्यष्टि दृष्टि मन लाव॥

(ब्रह्माजीको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—) तब पहले (सृष्टिसे पूर्व) मैं ही अकेला था (और दूसरा कोई तत्त्व नहीं था) हे ब्रह्माजी ! सुनिये। निर्मल, कलाहीन, अजन्मा, समस्त भेदोंसे रहित, निर्मल ज्ञानस्वरूप, वही मैं (सृष्टिकालमें) एक होकर भी अनेकरूप बनकर नाना प्रकारके वेशोंमें शोभित हो रहा हूँ (सृष्टिस्वरूप भी मैं ही हूँ)। इसके पीछे इन (सत्त्व, रज तथा तमरूप) तीनों गुणोंके (साम्यावस्थामें) लीन हो जानेपर अकेला मैं ही बच रहूँगा। यह जो सत्य (परमात्मतत्त्व) मिथ्या और मिथ्या (जगत्) सत्य प्रतीत हो रहा है, इसे मेरी माया समझो। सूर्य-चन्द्रमा और राहुका संयोग हुए बिना ही जैसे मनसे ही उनका संयोग (ग्रहण-कालमें) मान लिया जाता है (वैसे ही मैं मायासे युक्त नहीं हूँ, फिर भी मायायुक्त लोगोंने मान लिया है)। पाँचों

तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बने प्रपञ्च (संसार) का सब वैभव वैसा ही है जैसे हाथी स्फटिकसे अलग रहकर भी उसमें दीखता है (मायामें न होकर भी प्रतिबिम्बकी भाँति चेतनतत्त्व जगत्में भासित हो रहा है)। मैं सबसे उसी प्रकार पृथक् हूँ, जैसे सूत अपनेमें गुँथी मणियोंसे पृथक् होता है। (मुझमें संसारकी कोई सत्ता नहीं; किंतु संसार मुझसे ही सत्तावान् है।) मेरी मायाको इस प्रकार समझो—शरीरमें जीव वैसे ही निर्लिप्त है, जैसे जलका मच्छर जलमें (निर्लिप्त) रहता है। (वह स्वयं ही जलका आश्रय लिये है, जल उससे लिप्त नहीं। इसी प्रकार जीव स्वयं मायाके आश्रित है, माया उसे पकड़े नहीं है।) मेरे इसी यश (अद्भुत प्रभाव) को सनकादि मुनि 'नेति-नेति' कहकर और अपार मानकर वर्णन करते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि पहले ज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) होता है, तब विज्ञान (आत्मानुभव) होता है और तब तीसरी सर्वश्रेष्ठ स्थिति भक्तिकी भावना प्राप्त होती है। उस भक्तिभावसे ही समष्टि (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) रूप वही परम तत्त्व व्यष्टिरूपमें—एक सगुण-साकाररूपमें स्थित है, ऐसी दृष्टि (निश्चय) करके, उसीमें मन लगाओ।

राग बिलावल

[२८५]

अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ।
सब्दहिं-सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ॥
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ॥
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ, कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ॥
सपने माहिं नारि कौं भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ, ज्यों-कौ-त्यौं ही हैं, ना कहुँ गयौ न आयौ॥

सूरदास समुझे की यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौं गूँगैं गुर खायौ॥

अपना स्वरूप अपने हृदयमें ही मैंने प्राप्त किया। सद्गुरुने रहस्य समझा दिया, अतः उनके शब्दोंसे ही प्रकाश (आत्मानुभव) प्राप्त हो गया। जैसे कस्तूरी मृगकी नाभिमें ही थी, किंतु वह भूला हुआ उसे ढूँढ़ता फिरता था; जब सावधान होकर देखा, तब उसे अपने शरीरमें ही पा गया। राजकुमारीको यह भ्रम हो गया कि मैंने अपने गलेका मणिजटित आभूषण कहीं खो दिया है; किंतु जब सखियोंने बता दिया (कि वह तुम्हारे गलेमें ही है), तब उसके शरीर (चित्त) का ताप (कम) नष्ट हो गया। स्वप्नमें स्त्रीको भ्रम हो गया कि मेरा बालक कहीं खो गया है; किंतु जागनेपर उसने देखा कि बच्चा तो ज्यों-का-त्यों (उसके पास सो रहा) है, वह न कहीं गया था और न कहींसे आया। सूरदासजी कहते हैं कि समझे हुएकी ही यह दशा है (अज्ञानके कारण ही आत्माको हम भूले हैं)। (वह तो अपना स्वरूप ही है। जब यह बात ज्ञात हो गयी) तब मन-ही-मन वह मुसकरा पड़ा (चित्त आनन्दमग्न हो गया)! किंतु इस सुखकी महिमा कही नहीं जा सकती (वह तो अवर्णनीय है,) जैसे गूँगे पुरुषने गुड़ खाया हो। (वह मिठासका अनुभव तो करता है, पर उसे कह नहीं सकता।)

राग केदारौ

[२८६]

नैननि निरखि स्याम-स्वरूप।
रह्यौ घट-घट ब्यापि सोई, जोति-रूप अनूप॥
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर-चंद्र नक्षत्र-पावक, सर्व तासु प्रकास॥

नेत्रोंसे श्यामसुन्दरका (प्रत्यक्ष विराट्) स्वरूप देखो। घट-घटमें (प्रत्येक जीव-शरीरमें) वही अनुपम तत्त्व ज्योतिःस्वरूपसे (चेतनके रूपमें) व्याप्त हो रहा है। पातालादि सातों लोक (अतल, वितल, सुतल, तलातल,

महातल, रसातल और पाताल) उनके चरण हैं और आकाश मस्तक है तथा सूर्य, चन्द्र, तारागण और अग्निमें उन्हींका प्रकाश है ।

राग नट

[२८७]

जौ लौं सत-सरूप नहिं सूझत ।
तौ लौं मृग मद नाभि बिसारें, फिरत सकल बन बूझत ॥
अपनौ मुख मसि-मलिन मंदमति, देखत दर्पन माहीं ।
ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहीं ॥
तेल-तूल-पावक पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत ।
कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसैं धौं तम नासत ॥
सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए अलेखे ।
कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नैन बिन देखे ॥

जबतक सत्यस्वरूप (आत्मतत्त्व) नहीं दिखायी पड़ता (अनुभूत नहीं होता), तभीतक इस प्रकार चारों ओर पूछता फिरता है, जैसे कस्तूरी मृग अपनी नाभिमें स्थित कस्तूरीको भूलकर उसे ढूँढ़नेके लिये सारे जंगलमें भटकता फिरता है । मन्द-बुद्धि पुरुष अपने स्याही-लगे मलिन मुखको दर्पणमें देखता है और फिर उस कालिमाको मिटानेके लिये प्रतिबिम्बको धोनेका श्रम करता है । दीपकमें तेल, रूई रखकर, पास अग्नि रख देनेपर भी बिना दीपकको जलाये तो कुछ काम होगा नहीं, दीपककी बातें बना-बनाकर (भली प्रकार) करनेसे भला अन्धकार कैसे नष्ट हो सकता है (केवल ज्ञानकी बातें करनेसे अज्ञान नहीं नष्ट होता । वह तो अपने आत्मानुभवसे ही नष्ट होगा) । सूरदासजी कहते हैं कि यह बुद्धि (आत्मबोध) आये बिना तो सब दिन (पूरा जीवन) बिना गिनतीके (व्यर्थ) चला गया । भला, अंधा आँखोंसे देखे बिना सूर्यका माहात्म्य क्या जाने । (आत्मानुभवका आनन्द तो जिसे प्राप्त हो, वही जानता है ।)

[२८८]

अपुनपौ आपुनहीं बिसर्‍यौ।
जैसैं स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्‍यौ॥
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिर्‍यौ।
ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकर्‍यौ॥
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपनु कूप पर्‍यौ।
जैसैं गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अर्‍यौ॥
मर्कट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिर्‍यौ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा, कहि कौनैं पकर्‍यौ॥

अपना स्वरूप अपने-आप ही भूल गया है। जैसे काँच (दर्पण) से बने मकानमें कुत्ता (चारों ओर अपना प्रतिबिम्ब देखकर) चारों ओर घूम-घूमकर (भ्रमवश) भूँकता रहे। जैसे कस्तूरीकी सुगन्ध तो कस्तूरी मृगकी नाभिमें रहती है, पर (अज्ञानवश उसे पानेके लिये) वह वृक्षों एवं तृणोंको सूँघता फिरता है। जैसे स्वप्नमें कोई राजा कंगाल हो जाय और उसे चोरों या शत्रुने पकड़ लिया हो। जैसे सिंह कुएँके जलमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर स्वयं कुएँमें कूद पड़ा। जैसे हाथीने स्फटिककी शिलामें अपना प्रतिबिम्ब देखकर स्वयं (दूसरा हाथी समझकर) जाकर दाँत अड़ाकर (लड़ने) भिड़ गया। जैसे बंदरने (छोटे मुखके घड़ेमें लोभवश चना आदि निकालनेको हाथ डाला और) मुट्ठी छोड़ नहीं दी (इससे पकड़ा गया और) घर-घर द्वार-द्वार (मदारीद्वारा पकड़े जानेके कारण नाचता हुआ) घूमता रहा। सूरदासजी कहते हैं कि नलिनी यन्त्रपर (बैठकर यन्त्र घूम जानेसे उसे पकड़कर नीचे लटकते) तोतेको पकड़ा किसने है? (इसी प्रकार जीवका बन्धन और कष्ट भी अज्ञानसे ही है। उसे न तो अन्य किसीने बाँधा है, न दूसरा उसके दुःखका निमित्त है। परमानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व उसके हृदयमें ही है, उसे भूलकर जीव भटक रहा है।)

[२८९]

इहाँ कपिल-सौं माता कह्यौ । प्रभु मेरौ अज्ञान तुम दह्यौ ॥
आतमज्ञान देहु समुझाइ । जातैं जनम-मरन-दुख जाइ ॥
कह्यौ कपिल, कहौं तुम सौं ज्ञान । मुक्त होइ नर ताकौं जान ॥
मुक्त नरनि के लच्छन कहौं । तेरे सब संदेहै दहौं ॥
मम सरूप जो सब घट जान । मगन रहै तजि उद्यम आन ॥
अरु सुख-दुख कछु मन नहिं ल्यावै । माता, सो नर मुक्त कहावै ॥
और जो मेरौ रूप न जानै । कुटुँब हेत नित उद्यम ठानै ॥
जाकौ इहि विधि जन्म सिराइ । सो नर मरि कै नरकहिं जाइ ॥
ज्ञानी संगति उपजै ज्ञान । अज्ञानी सँग होइ अज्ञान ॥
तातैं साधु-संग नित करना । जातैं मिटै जन्म अरु मरना ॥
थावर-जंगम मैं मोहि जानै । दयासील, सब सौं हित मानै ॥
सत सँतोष दृढ़ करै समाधि । माता ताकौं कहियै साध ॥
काम, क्रोध, लोभहि परिहरै । द्वंद्व-रहित उद्यम नहिं करै ॥
ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं । माता, तिनसौं साधु कहाहिं ॥
जाकौं काम-क्रोध नित ब्यापै । अरु पुनि लोभ सदा संतापै ॥
ताहि असाधु कहत सब लोइ । साधु-बेष धरि साधु न होइ ॥
संत सदा हरि के गुन गावैं । सुनि-सुनि लोग भक्ति कौं पावैं ॥
भक्ति पाइ पावैं हरि-लोक । तिन्हैं न ब्यापै हर्षऽरु सोक ॥

यहाँ भगवान् कपिलसे माता देवहूतिने प्रार्थना की—'हे प्रभु ! आपने मेरे अज्ञानको भस्म कर दिया । अब मुझे वह आत्मज्ञान समझा दीजिये, जिससे जन्म और मृत्युका दुःख नष्ट हो जाय ।' (यह सुनकर) श्रीकपिलजीने कहा—'मैं तुमसे ब्रह्मज्ञानका वर्णन करता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है । मुक्त पुरुषोंके लक्षणोंका भी वर्णन करता हूँ और तुम्हारे सभी संदेहोंको भस्म कर देता (मिटा देता) हूँ । जो मेरे स्वरूपको समस्त

शरीरमें व्यापक समझकर अन्य समस्त उद्योगों (आसक्ति-जन्य कार्यों) को त्यागकर मग्न (उसीमें तन्मय) रहता है और मनमें सुख-दुःख कुछ नहीं ले आता (दोमेंसे किसीसे प्रभावित नहीं होता), हे माता ! वही मनुष्य मुक्त कहलाता है । जो मेरे स्वरूपको नहीं जानता, कुटुम्बके लिये ही सदा उद्योग करता है, जिसका पूरा जन्म इसी प्रकार (कुटुम्बमें आसक्त रहकर ही) व्यतीत होता है, वह मनुष्य मरकर नरकमें जाता है । ज्ञानीकी संगति करनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञानीके संगसे अज्ञान होता है । इसलिये सदा सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये, जिससे जन्म और मरण मिट जायँ । स्थावर (अचर) और जङ्गम (सचर) समस्त जड़-चेतन जगत्में मुझे समझे, दयावान् रहे, सबसे प्रेम (सद्भाव) रखे, सत्य और संतोषमें दृढ़तापूर्वक चित्तको एकाग्र रखे, हे माता ! उसे साधु कहना चाहिये । काम, क्रोध और लोभको जिन्होंने छोड़ दिया है, (दुःख-सुख, सर्दी-गर्मी, राग-द्वेष आदि) द्वन्द्वोंसे जो रहित है, (प्रभावित नहीं होते) और (आसक्तिपूर्वक) कोई उद्योग नहीं करते—— ऐसे लक्षण जिनमें हैं, हे माता ! वे लोग साधु कहे जाते हैं । जिसको सदा काम और क्रोध प्रभावित करता रहता है और फिर लोभ जिसे सदा पीड़ा दिया करता है, उसे सब लोग असाधु कहते हैं । केवल साधुका वेश बना लेनेसे कोई साधु नहीं हो जाता । संत (सत्पुरुष) सदा श्रीहरिका गुणगान करते हैं, जिसे सुनकर लोग भगवद्भक्ति प्राप्त करते हैं और भक्ति पाकर श्रीहरिका लोक (भगवद्धाम) प्राप्त कर लेते हैं । उन्हें हर्ष और शोक नहीं होते ।'

[२९०]

देवहूति कह, भक्ति सो कहियै । जातैं हरि-पुर-वासा लहियै ॥
अरु सो भक्ति कीजै किहिं भाइ । सोऊ मो कहँ देहु बताइ ॥
माता, भक्ति चारि परकार । सत, रज, तम गुन, सुद्धा सार ॥
भक्ति एक पुनि बहुविधि होइ । ज्यौं जल रँग मिलि रंग सु होइ ॥

भक्ति सात्विकी, चाहत मुक्ति। रजोगुनी धन-कुटुंबऽनुरक्ति॥
तमोगुनी, चाहै या भाइ। मम बैरी क्यौं हूँ मरि जाइ॥
सुद्धा भक्ति मोहिं कौं चाहै। मुक्तिहु कौं सो नहिं अवगाहै॥
मन-क्रम-वच मम सेवा करै। मन तैं सब आसा परिहरै॥
ऐसौ भक्त सदा मोहि प्यारौ। इक छिन तातैं रहौं न न्यारौ॥
ताकौं जो हित, मम हित सोइ। ता सम मेरैं और न कोइ॥
त्रिविध भक्त मेरे हैं जोइ। जो माँगैं तिन्हि देउँ मैं सोइ॥
भक्त अनन्य कछू नहिं माँगै। तातैं मोहि सकुच अति लागै॥
ऐसौं भक्त सु ज्ञानी होइ। ताकैं सत्रु-मित्र नहीं कोइ॥
हरि-माया सब जग संतापै। ताकौं माया-मोह न ब्यापै॥
कपिल, कहौ हरि कौ निज रूप। अरु पुनि माया कौन स्वरूप॥
देवहूति जब या बिधि कह्यौ। कपिलदेव सुनि अति सुख लह्यौ॥
कह्यौ, हरि कैं भय रबि ससि फिरैं। बायु बेग अतिसै नहिं करैं॥
अगिनि दहै जाकैं भय नाहिं। सो हरि माया जा बस माहिं॥
माया कौं त्रिगुनात्मक जानौ। सत-रज-तम ताके गुन मानौ॥
तिन प्रथमहिं महतत्व उपायौ। तातै अहंकार प्रगटायौ॥
अहंकार कियौ तीनि प्रकार। सत तैं मन सुर सातऽरु चार॥
रजगुन तैं इंद्रिय बिस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी॥
तिन तैं पंचतत्व उपजायौ। इन सब कौ इक अंड बनायौ॥
अंड सो जड़ चेतन नहिं होइ। तब हरि-पद-छाया मन पोइ॥
ऐसी विधि बिनती अनुसारी। महाराज बिन सक्ति तुम्हारी॥
यह अंडा चेतन नहिं होइ। करहु कृपा, सो चेतन होइ॥
तामैं सक्ति आपनी धरी। चच्छवादिक इंद्री बिस्तरी॥
चौदह लोक भए ता माहिं। ज्ञानी ताहि बिराट कहाहिं॥
आदि पुरुष चेतन कौं कहत। तीनौं गुन जामैं नहिं रहत॥

जड़ स्वरूप सब माया जानौ । ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ ॥
जब लगि है जिय मैं अज्ञान । चेतन कौं सो सकै न जान ॥
सुत-कलत्र कौं अपनौं जानै । अरु तिन सौं ममत्व बहु ठानै ॥
ज्यौं कोउ दुख-सुख सपनै जोइ । सत्य मानि लै ताकौं सोइ ॥
जब जागै तब सत्य न मानै । ज्ञान भऐं त्यौंही जग जानै ॥
चेतन घट-घट है या भाइ । ज्यौं घट-घट रबि-प्रभा लखाइ ॥
घट उपजै, बहुरौ नसि जाइ । रबि नित रहै एकहीं भाइ ॥
ज़ड़ तन कौं है जनमऽरु मरना । चेतन पुरुष अमर-अज बरना ॥
ताकौं ऐसौ जाने जोइ । ताकौ तिन सौं मोह न होइ ॥
जब लौ ऐसौ ज्ञान न होइ । बरन धरम कौं तजै न सोइ ॥

देवहूतिने (फिर) कहा—'उस भक्तिका वर्णन कीजिये, जिससे भगवद्धाम-में निवास प्राप्त होता है और वह भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये, यह भी मुझे बता दीजिये।' कपिलजीने कहा—'माता ! भक्ति चार प्रकारकी होती है—सत्त्वगुणमयी, रजोगुणमयी, तमोगुणमयी और शुद्धरूपकी । फिर वह एक ही भक्ति बहुत प्रकारकी हो जाती है, जैसे जलमें रंग मिलनेसे अनेक प्रकारके रंग हो जाते हैं । सात्त्विक भक्ति करनेवाला मुक्ति चाहता है । रजोगुणमयी भक्ति करनेवालेकी धन और कुटुम्बमें आसक्ति होती है । तमोगुणी इस प्रकारकी कामना करता है कि 'मेरा शत्रु किसी प्रकार भी मर जाय।' शुद्ध भक्ति करनेवाला केवल मुझको ही चाहता है, वह मुक्तिका भी अवगाहन (भक्तिकी भी कामना) नहीं करता । वह मन, कर्म और वाणीसे मेरी सेवा करता है, मनसे सब आशाओंको त्याग देता है । ऐसा भक्त मुझे सदा प्यारा है, मैं उससे एक क्षण भी अलग नहीं रहता । उसे जो हित है । (जिसमें वह अपना लाभ मानता है) वही मेरा होता है । उसके समान मेरा (प्रिय) और कोई नहीं है । मेरे जो तीन प्रकारके (सात्त्विक, राजस और तामस) भक्त हैं, वे जो कुछ माँगते हैं, उन्हें मैं वही देता हूँ, किंतु, अनन्य

भक्त मुझसे कुछ नहीं माँगता, इसलिये मुझे अत्यन्त संकोच लगता है। ऐसा भक्त उत्तम ज्ञानी होता है। उसके शत्रु और मित्र कोई नहीं होता। श्रीहरिकी माया सारे जगत्को कष्ट दिया करती है, किंतु उसे माया-मोह नहीं व्यापता (उसपर प्रभाव नहीं डालता)।' (यह सुनकर माता देवहूतिने कहा—) 'कपिलजी ! श्रीहरिके निज (वास्तविक) स्वरूपका वर्णन कीजिये और फिर यह बताइये कि उनकी मायाका क्या स्वरूप है ?' जब देवहूतिने इस प्रकार पूछा तब उनके प्रश्नको सुनकर कपिलदेवजीको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। वे बोले—'श्रीहरिके भयसे ही सूर्य-चन्द्र घूमते हैं और (उनके भयसे ही) वायु अतिशय वेग नहीं बढ़ाता। जिसके भयसे अग्नि (विश्वको) जला नहीं देता, वे ही श्रीहरि हैं जिनके वशमें माया है। मायाको त्रिगुणात्मिका समझो। सत्त्व, रज और तम—ये उसके तीन गुण हैं, ऐसा मान लो। उन तीनों गुणोंने सबसे पहले महत्तत्त्वको उत्पन्न किया, उस महत्तत्त्वसे अहंकार प्रकट हुआ। अहंकारके तीन भेद (सात्त्विक, राजस, तामस) हुए, उनमें सात्त्विक अहंकारसे मन और ग्यारह देवता (दस इन्द्रिय एवं मनके देवता) उत्पन्न हुए। रजोगुणप्रधान अहंकारसे इन्द्रियोंका विस्तार (प्राकट्य) हुआ। तमोगुणप्रधान अहंकारसे तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) निकलीं। इन तन्मात्राओंने पञ्चतत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) को उत्पन्न किया। इन सब (महत्तत्त्व, अहंकार, मन, देवता, तन्मात्रा एवं पञ्चतत्त्व) के मिलनेसे (ब्रह्माण्डरूपी) एक अंडा बना। वह अंडा जड़ था, चेतन नहीं हो रहा था, तब श्रीहरिके चरणोंकी छायामें मनको पिरोकर ब्रह्माजीने इस प्रकारकी प्रार्थना प्रारम्भ की—'हे महाराज ! आपकी शक्तिके बिना यह अंडा चेतन नहीं हो रहा है। अतः कृपा कीजिये, जिससे यह चेतन हो जाय।' (यह प्रार्थना सुनकर भगवान्ने) उस अंडेमें अपनी शक्तिकी स्थापना की, इससे नेत्र आदि इन्द्रियोंका विस्तार (प्राकट्य) हुआ। चौदहों लोक उस अंडेमें ही बने। ज्ञानीलोग उस अंडेको ही विराट् कहते हैं। चेतनको ही आदि-पुरुष कहा जाता है, जिसमें तीनों गुण नहीं रहते (जो तीनों गुणोंसे परे है)।

जितना जडस्वरूप (जड़ जगत्) है, उसे माया समझो; इसी ज्ञानको हृदयमें ले आओ। जबतक हृदयमें अज्ञान है, तबतक वह चेतनको जान नहीं सकता। वह पुत्र-स्त्रीको अपना समझता है और उनसे बहुत अधिक ममत्व बढ़ाता है। जैसे कोई स्वप्नमें दुःख और सुखको देखे और वह उनको ही सत्य मान ले; किंतु जब जाग जाता है, तब (स्वप्नके उस दुःख-सुखको) सत्य नहीं मानता, उसी प्रकार ज्ञान हो जानेपर (ज्ञानी) जगत्को (मिथ्या) समझ लेता है। जैसे अनेक घड़ोंमेंसे प्रत्येकमें सूर्यका प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरमें एक ही चेतन स्थित है। घड़ा उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, परंतु सूर्य सदा एक समान रहते हैं; उसी प्रकार जन्म और मृत्यु जड शरीरके ही होते हैं, (शरीर-में स्थित) चेतन पुरुष (जीवात्मा) अमर और अजन्मा (शास्त्रोंमें) कहा गया है। उस (चेतन) को जो ऐसा (अजन्मा और अमर) जान लेता है, उसे फिर उन (शरीर, स्त्री-पुत्रादि) से मोह नहीं होता। जबतक ऐसा ज्ञान न हो जाय, तबतक मनुष्यको अपने वर्ण-धर्म (शास्त्रने उसके वर्णका जो धर्म बताया है, उस) को छोड़ना नहीं चाहिये।

राग बिलावल

[२९१]

संतनि की संगति नित करै। पाप कर्म मन तैं परिहरै॥
अरु भोजन सो इहिं बिधि करै। आधौ उदर अन्न सौं भरै॥
आधे मैं जल-बायु समावै। तब तिहि आलस कबहूँ न आवै॥
अरु जो परालब्ध सौं आवै। ताही कौं सुख सौं बरतावै॥
बहुतै कौ उद्यम परिहरै। निर्भर ठौर बसेरौ करै॥
तीरथ हू मैं जौ भय होइ। ताहू ठाउँ परिहरै सोइ॥
बहुरौ धरै हृदय महँ ध्यान। रूप चतुरभुज स्याम सुजान॥
प्रथमै चरन-कमल कौं ध्यावै। तासु महातम मन मैं ल्यावै॥
गंगा प्रगट इनहि तैं भई। सिव सिवता इनही तैं लई॥

लछमी इन कौं सदा पलोवै। बारंबार प्रीति करि जोवै॥
जंघनि कौं कदली-सम जानै। अथवा कनकखंभ सम मानै॥
उर अरु ग्रीव बहुरि हिय धारै। तापर कौस्तुभ मनिहि बिचारै॥
तहँ भृगु-लता, लच्छमी जान। नाभि-कमल चित धारै ध्यान॥
मुख मृदु हास देखि सुख पावै। तासौं प्रेम सहित मन लावै॥
नैन कमल-दल-से अनियारे। दरसत तिन्हैं कटैं दुख भारे॥
नासा-कीर परम अति सुंदर। दरसत ताहि मिटै दुख-द्वंदर॥
कूप समान स्रौन दोउ जानै। मुखकौ ध्यान याहि बिधि ठानै॥
केसर-तिलक-रेख अति सोहै। ताकी पटतर कौं जग को है॥
मृगमद-बिंदा तामैं राजै। निरखत ताहि काम सत लाजै॥
मोर मुकुट, पीतांबर सोहै। जो देखै ताकौ मन मोहै॥
स्रवननि कुंडल परम मनोहर। नख सिख ध्यान धरै यौं उरधर॥
क्रम क्रम करि यह ध्यान बढ़ावै। मन कहुँ जाइ, फेरि तहँ ल्यावै॥
ऐसैं करत मगन रहै सोइ। बहुरौ ध्यान सहजहीं होइ॥
चितवत चलत न चित तैं टरै। सुत-तिय-धन की सुधि बिसमरै॥
तब आतम घट-घट दरसावै। मगन होइ, तन-सुधि बिसरावै॥
भूख-प्यास ताकौं नहिं ब्यापै। सुख-दुख तनिकौ तिहि न सँतापै॥
जीवन-मुक्त रहै या भाइ। ज्यौं जल कमल अलिप्त रहाइ॥

नित्य सत्पुरुषोंका सङ्ग करे। पापकर्मोंको मनसे भी (उनका चिन्तन भी) त्याग दे। भोजन इस प्रकार करे कि आधा पेट तो अन्नसे भरे और आधा जल तथा हवा (श्वास) के जानेके लिये रहने दे, तब उसे कभी आलस्य नहीं आयेगा। जो कुछ भी प्रारब्धसे आ जाय (मिल जाय), उसीको सुखपूर्वक (संतुष्ट होकर) काममें ले। (अधिककी चिन्ता न करे।) अधिक पानेके लिये उद्योग करना छोड़ दे। ऐसे स्थानपर निवास करे, जहाँ कोई भय न हो। यदि तीर्थमें भी कोई भय हो

तो साधक उस स्थानको भी छोड़ दे। फिर चतुर साधक हृदयमें भगवान्के श्यामवर्ण चतुर्भुजरूपका ध्यान करे। पहले भगवान्के चरण-कमलोंका ध्यान करे और उनका यह महत्त्व मनमें स्थिर कर ले कि इन (श्रीचरणों) से ही भगवती गङ्गा प्रकट हुई हैं, इनके प्रभावसे (इनकी धोवनको मस्तकपर धारण करनेके कारण) ही शिवजीने शिवत्व (कल्याण-रूपता) पायी है, भगवती लक्ष्मी इनको सदा पलोटती रहती हैं और बार-बार प्रेमपूर्वक देखती हैं। भगवान्की दोनों जाँघोंको केलेके खंभोंके समान समझे या सोनेके खंभोंके समान (सुन्दर) माने। फिर भगवान्के वक्षः-स्थल और कण्ठका हृदयमें ध्यान करे। उस कण्ठमें कौस्तुभका मन-ही-मन चिन्तन करे और वक्षःस्थलपर भृगुलता तथा श्रीवत्सचिह्नको जाने। भगवान्के नाभिकमलका मन-ही-मन ध्यान करे। भगवान्के श्रीमुखपर मन्द हास्य देखकर सुखी हो और प्रेमके साथ उस (श्रीमुख) में ही मनको लगाये। भगवान्के नेत्र कमलदलके समान नुकीले हैं, उन्हें देखते ही महान् दुःख भी नष्ट हो जाते हैं। तोतेके समान नासिका बहुत ही सुन्दर है, उसका दर्शन होते ही दुःख और द्वन्द्व मिट जाते हैं। दोनों कान कुएँके समान (खूब गहरे) समझे। इस प्रकार भगवान्के श्रीमुखका ध्यान करे। (ललाटपर) केसरके तिलककी रेखा अत्यन्त सुहावनी है, उसकी तुलना करने योग्य भला संसारमें दूसरी कौन-सी वस्तु है। उस तिलक-रेखाके मध्यमें कस्तूरीका विन्दु शोभित हो रहा है, जिसे देखकर सैकड़ों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं। (मस्तकपर) मयूरपिच्छका मुकुट और (शरीरपर) पीताम्बर शोभित है। जो इस छविको देखता है, उसका मन ही मोहित हो जाता है। कानोंमें परम मनोहर कुण्डल हैं। इस प्रकार नख-शिख (चरणसे मुकुटतक पूरे स्वरूप) का ध्यान चित्तकी भूमिपर करे। धीरे-धीरे इस ध्यानको बढ़ाये, यदि मन कहीं अन्यत्र जाय तो उसे फिर इसी स्वरूपमें खींच लाये। ऐसा अभ्यास करते रहनेसे वह साधक (ध्यानमें) मग्न रहने लगता है, फिर तो स्वाभाविक ध्यान होता रहता है। देखते हुए, चलते हुए भी चित्तमें

से ध्यान दूर नहीं होता। पुत्र-स्त्री-धन आदिका स्मरण भूल जाता है। तब प्रत्येक प्राणी-शरीरमें आत्म-दर्शन होने लगता है और उसमें मग्न होकर शरीरकी भी सुध भूल जाता है। उसे भूख-प्यास ज्ञात नहीं होती; सुख या दुःख उसे तनिक भी पीड़ा नहीं देते (प्रभावित नहीं करते)। वह जीवन्मुक्त होकर संसारमें उसी प्रकार (निर्लिप्त) रहता है, जैसे जलमें कमल जलसे निर्लिप्त रहता है।

[२९२]

देवहूति यह सुनि पुनि कह्यौ। देह-ममत्व घेरि मोहि रह्यौ ॥
कर्दम-मोह न मन तैं जाइ। तातैं कहियै सुगम उपाइ ॥
कपिल कह्यौ, तोहि भक्ति सुनाऊँ। अरु ताको ब्यौरो समुझाऊँ ॥
मेरी भक्ति चतुर्विध करै। सनै-सनै तैं सब निस्तरै ॥
ज्यौं कोउ दूरि चलन कौं करै। क्रम-क्रम करि डग-डग पग धरै ॥
इक दिन सो उहाँ पहुँचै जाइ। त्यौं मम भक्त मिलै मोहि आइ ॥
चलत पंथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ ॥
जो कोउ ताकौं निकट बताव। धीरज धरि सो ठिकानैं आवै ॥
तमोगुनी रिपु मरिबौ चाहै। रजोगुनी धन कुटुंबऽवगाहै ॥
भक्त सात्विकी सेवै संत। लखै तिन्हैं मूरति भगवंत ॥
मुक्ति-मनोरथ मन मैं ल्यावै। मम प्रसाद तैं सो वह पावै ॥
निर्गुन मुक्तिहु कौं नहि चाहै। मम दरसन ही तैं सुख लहै ॥
ऐसो भक्त सुमुक्त कहावै। सो बहुरह्यौ भव-जल नहिं आवै ॥
क्रम-क्रम करि सब की गति होइ। मेरो भक्त नसै नहिं कोइ ॥

(ऊपरका) यह (उपदेश) सुनकर फिर माता देवहूतिने कहा—'मुझे देहकी ममता घेर रही है। मेरे मनसे (अपने पतिदेव) श्रीकर्दम-जीका मोह जाता नहीं है। इसलिये (इस ममत्व और मोहको दूर करनेका) सुगम उपाय बतलाइये।' (माताकी बात सुनकर) श्रीकपिल-

जीने कहा—'मैं तुमको भक्तिकी बात सुनाता हूँ और उसका विस्तार भी समझाता हूँ। चारों प्रकारसे मेरी भक्ति करनी चाहिये। (इस मार्गसे) धीरे-धीरे सभीका उद्धार हो जाता है। जैसे कोई दूर जानेका विचार करता है तो क्रम-क्रमसे एक-एक डगपर पैर रखता हुआ ही चलता है और इस प्रकार (चलता हुआ) वह वहाँ (जहाँ जाना चाहता है) एक दिन पहुँच जाता है, उसी प्रकार (क्रमशः भक्ति करता हुआ) मेरा भक्त मुझसे आकर मिल जाता है। यदि कोई मार्ग चलता हुआ थक गया हो और कोई उसे कहने लगे कि 'पहुँचनेका स्थान तो बड़ी दूर है, तो वह तो डरकर ही मर जायगा। (इसके विपरीत) यदि कोई उसे बता दे कि (लक्ष्य तो) निकट ही है तो धैर्य धारण करके वह ठिकाने पहुँच जाता है। (इसी प्रकार धैर्यसे उपासना करनेसे मेरी प्राप्ति हो जाती है।) तमोगुणी उपासक शत्रुके मरनेकी इच्छा करता है। रजोगुणी उपासक धन और कुटुम्बको पाना चाहत है। किंतु सात्त्विक भक्त संतोंका सेवन करता है और उन्हें भगवान्‌का स्वरूप मानता है। यदि वह अपने मनमें मुक्ति पानेकी कामना करे तो मेरे कृपासे वह उसे भी प्राप्त कर लेता है। निर्गुण (निष्काम) भक्त तो मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करता, वह तो मेरा दर्शन करके ही परमानन्द प्राप्त करता है। ऐसा भक्त परममुक्त कहा जाता है, वह फिर संसार-सागरमें नहीं आता। उपासना करनेसे क्रमशः सभीकी (चारों प्रकारके भक्तोंकी) सद्गति हो जाती है। मेरे किसी भी भक्तका विनाश (अधःपतन) नहीं होता।

[२९३]

भक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ॥
सनै-सनै विधि लोकहिं जाइ। ब्रह्मा सँग हरि-पदहिं समाइ॥
निष्कामी बैकुंठ सिधावै। जनम-मरन तिहि बहुरि न आवै॥
त्रिबिध भक्ति कहौं, सुनि अब सोइ। जातैं हरि पद-प्रापति होइ॥
एकै कर्म-योग कौं करैं। बरन-आसरम धर्म बिस्तरैं॥
अरु अधर्म कबहूँ नहिं करैं। ते नर याही विधि निस्तरैं॥

एकै भक्ति-योग कौं करैं। हरि-सुमिरन पूजा बिस्तरैं ॥
हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं। ते हरिपद कौं या बिधि पावैं ॥
एकै ज्ञान-जोग बिस्तरैं। ब्रह्म जानि सब सौं हित करैं ॥
ते हरि पद कौं या बिधि पावैं। क्रम-क्रम सब हरि-पदहिं समावैं ॥
कपिलदेव बहुरौ यौं कह्यौ। हमैं-तुम्हैं संबाद जु भयौ ॥
कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ। सो नर हरि-पद प्रापत होइ ॥
देवहूति सुज्ञान कौं पाइ। कपिलदेव सौं कह्यौ सिर नाइ ॥
आगैं मैं तुम कौं सुत मान्यौ। अब मैं तुम कौं ईश्वर जान्यौ ॥
तुम्हरी कृपा भयौ मोहि ज्ञान। अब न ब्यापिहै मोहि अज्ञान ॥
पुनि बन जाइ कियौ तन त्याग। गहि कै हरि-पद सौं अनुराग ॥
कपिलदेव सांख्यहि जो गायौ। सो राजा मैं तुम्हैं सुनायौ ॥
याहि समुझि जो रहै लव लाइ। सूर बसै सो हरिपुर जाइ ॥

यदि कोई सकाम भक्त हो तो वह भी क्रमशः (उन्नति करता हुआ) उद्धार प्राप्त कर लेता है। धीरे-धीरे (उपासनाके प्रभावसे) वह ब्रह्म-लोकमें जाकर (महाप्रलयके समय) ब्रह्माके साथ श्रीहरिमें लीन हो जाता है। किंतु जो निष्काम भक्त है, वह सीधे वैकुण्ठ जाता है और फिर जन्म-मरणके चक्रमें नहीं आता। अब तीन प्रकारकी भक्तिका वर्णन करता हूँ जिससे श्रीहरिपद (वैकुण्ठ) की प्राप्ति होती है। उसे सुनो ! कोई तो कर्मयोगका साधन करते हैं। वे घरपर रहते हुए वर्णाश्रम धर्मका विस्तार (पालन) करते हैं और कभी भी अधर्म नहीं करते; ऐसे मनुष्य इसी प्रकार (निष्कामकर्मके आचरणसे) मुक्त हो जाते हैं। दूसरे लोग भक्तियोगका साधन करते हैं। वे श्रीहरिके स्मरण और पूजाका विस्तार (आचरण) करते हैं, श्रीहरिके चरण-कमलोंमें प्रीति लगाये रहते हैं; वे इस प्रकार (भक्ति करके) भगवद्धाम प्राप्त कर लेते हैं। कोई ज्ञान-योगका साधन करते हैं। सबको ब्रह्मस्वरूप जानकर सबसे प्रेम करते हैं। वे इसी प्रकार (सबमें ब्रह्मभाव करके) भगवद्धाम पा लेते हैं। इस

प्रकार क्रमशः सभी भगवद्धाममें जाते हैं।' इतना उपदेश करके श्रीकपिलजीने फिर कहा—'माता! मेरा और तुम्हारा यह जो संवाद है, इसे कलियुगमें जो सुनेगा, वह मनुष्य श्रीहरिपद (भगवद्धाम) को प्राप्त करेगा।' देवहूतिने इस प्रकार उत्तम ज्ञान प्राप्त करके कपिलजीको मस्तक नवाकर कहा—'पहले तो मैं आपको अपना पुत्र समझती थी; किंतु अब मैंने समझ लिया कि आप ईश्वर हैं। आपकी कृपासे मुझे ज्ञान हो गया। अब कभी अज्ञान मुझे नहीं सतायेगा।' इसके अनन्तर श्रीहरिके चरणोंमें दृढ़ प्रीति जोड़कर देवहूतिजीने वनमें जाकर शरीरका त्याग कर दिया। सूरदासजी कहते हैं—शुकदेवजीने परीक्षित्‌से कहा—'राजन्! श्रीकपिलजीने जो सांख्यका उपदेश किया था, वह मैंने तुम्हें सुना दिया। जो इसे समझकर इसमें चित्त एकाग्र कर लेगा, वह भगवद्धाम जाकर वहीं निवास करेगा।

[२९४]

हरि तैं बिमुख होइ नर जोइ। मरि कै नरक परत है सोइ॥
तहाँ जातना बहु बिधि पावै। बहुरौ चौरासी मैं आवै॥
चौरासी भ्रमि, नर-तन पावै। पुरुष-बीर्य सौं तिय उपजावै॥
मिलि रज-बीर्य बेर सम होइ। द्वितिय मास सिर धारै सोइ॥
तीनैं मास हस्त-पग होहिं। चौथ मास कर-अँगुरी सोहिं॥
प्रान-बायु पुनि आइ समावै। ताकौं इत-उत पवन चलावै॥
पंचम मास हाड़ बल पावै। छठैं मास इंद्री प्रगटावै॥
सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टम मास सँपूरन होइ॥
नीचैं सिर अरु ऊँचैं पाव। जठर अग्नि कौ ब्यापै ताव॥
कष्ट बहुत सो पावै उहाँ। पूर्व जन्म-सुधि आवै तहाँ॥
नवम मास पुनि बिनती करै। महाराज, मम दुख यह टरै॥
ह्याँ तैं जौ मैं बाहर परौं। अहनिसि भक्ति तुम्हारी करौं॥

अब मोपै प्रभु ! कृपा करीजै । भक्ति अनन्य आपुनी दीजै ॥
अरु यह ज्ञान न चित तैं टरै । बार-बार यह विनती करै ॥
दसम मास पुनि बाहर आवै । तब यह ज्ञान सकल बिसरावै ॥
बालापन दुख बहु बिधि पावै । जीभ बिना कहि कहा सुनावै ॥
कबहूँ बिष्टा मैं रहि जाइ । कबहूँ माखी लागैं आइ ॥
कबहूँ जुवाँ देहिं दुख भारी । तिन कौं सो नहिं सकै निवारी ॥
पुनि जब षष्ठ वरष कौ होइ । इत-उत खेल्यौ चाहै सोइ ॥
माता-पिता निवारैं जबहीं । मन मैं दुख पावै सो तबहीं ॥
माता-पिता पुत्र तिहि जानैं । बहऊ उन सौं नातौ मानैं ॥
वर्ष व्यतीत दसक जब होइ । बहुरि किसोर होइ पुनि सोइ ॥
सुंदर नारी ताहि बिवाहै । असन-बसन बहुविधि सो चाहै ॥
बिना भाग सो कहाँ तैं आवै । तब वह मन मैं बहु दुख पावै ॥
पुनि लछमीहित उद्यम करै । अरु जब उद्यम खाली परै ॥
तब वह रहै बहुत दुख पाइ । कहँ लौं कहौं, कह्यौ नहिं जाइ ॥
बहुरौ ताहि बुढ़ापौ आवै । इंद्री सक्ति सकल मिटि जावै ॥
कान न सुनै, आँखि नहिं सूझै । बात कहैं सो कछु नहि बूझै ॥
खैवेहूँ कौं जब नहिं पावै । तब बहुबिधि मन मैं पछितावै ॥
पुनि दुख पाइ-पाइ सो मरै । बिनु हरि-भक्ति नरक मैं परै ॥
नरक जाइ पुनि बहु दुख पावै । पुनि-पुनि यौंही आवै-जावै ॥
तऊ नहीं हरि-सुमिरन करै । तातैं बार-बार दुख भरै ॥

जो मनुष्य श्रीहरिसे विमुख होता है, वह मरकर नरकमें पड़ता है। वहाँ (नरकमें) जाकर बहुत प्रकारकी यातनाएँ पाता है और फिर चौरासी लाख योनियोंमें आ (कर जन्मता मर) ता है। चौरासी लाख योनियोंमें घूमकर अन्तमें पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भसे उत्पन्न होकर मनुष्य-शरीर पाता है। (गर्भाधान होनेपर) पहले स्त्रीका रज और पुरुषका वीर्य

मिलकर बेरके बराबर होता है, दूसरे महीने वह सिर धारण करता (उसमें सिर प्रकट होता) है। तीसरे महीने उसके हाथ-पैर होते हैं। चौथे महीने हाथकी अँगुलियाँ बनती हैं। फिर प्राणवायु आकर उसके शरीरमें प्रवेश करती है और (माताके शरीरकी वायु) स्वयं उसको हिलाती-डुलाती है। पाँचवें महीने हड्डियोंमें शक्ति (कड़ापन) आता है। छठे महीने इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं। सातवें महीनेमें चेतना प्राप्त करता है। आठवें महीनेमें (बालक) पूर्णाङ्ग हो जाता है। उसका सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। (माताकी) जठराग्निकी ज्वाला उसे तप्त करती (जलाती रहती) है। वहाँ (गर्भमें) वह बहुत कष्ट पाता है। वहाँ (उसे) पूर्व-जन्मोंकी स्मृति होती है। नवें महीने वह भगवान्‌से (इस प्रकार) प्रार्थना करता है—'हे महाराज! मेरा यह दुःख (किसी प्रकार) दूर हो। यदि मैं यहाँसे बाहर निकल जाऊँ तो अहर्निश (सदा) आपकी भक्ति करूँगा। हे प्रभु! अब मुझपर कृपा कीजिये। मुझे अपनी अनन्य भक्ति दीजिये और (ऐसा कीजिये कि) यह ज्ञान (जो इस समय है) चित्तसे दूर न हो। इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करता है। तब दसवें महीनेमें (गर्भसे) बाहर आता है। तब यह सब ज्ञान वह भूल जाता है। बचपनमें (भी) वह बहुत प्रकारसे कष्ट पाता है; किंतु जिह्वा (बोलनेकी शक्ति) के बिना किसे कहकर सुनाये। कभी विष्ठामें पड़ा रहता है, कभी मक्खियाँ आकर लगती (काटती) हैं, कभी जुँएँ बड़ा कष्ट देती हैं; उनको (भी) वह हटा नहीं सकता। फिर जब छः वर्षका हो जाता है, तब वह इधर-उधर खेलना चाहता है। जब-जब उसे माता-पिता रोकते हैं, तब-तब वह मनमें दुःख पाता है। माता-पिता उसे अपना पुत्र समझते हैं और वह भी उनसे अपना सम्बन्ध मानता है। जब लगभग दस वर्ष बीत जाते हैं तब वह किशोर हो जाता है। सुन्दरी स्त्री तब उससे विवाह कर लेती है, वह स्त्री उससे बहुत प्रकारके भोजन-वस्त्र चाहती है। प्रारब्धके बिना वह (भोजन-वस्त्र) कहाँसे आये। (उनके न मिलनेपर वह अपने मनमें बहुत दुःख पाता है। फिर धन पानेके लिये उद्योग) करता है और जब उद्योग व्यर्थ जाता है, तब वह बहुत दुःख पाकर रहता है। कहाँतक कहा जाय, (जीवके दुःखका हाल) कहा नहीं जाता।

फिर उसे बुढ़ापा आ घेरता है, सभी इन्द्रियोंकी शक्ति समाप्त हो जाती हैं, कानोंसे सुनाई नहीं पड़ता, आँखोंसे दीखता नहीं; कोई कुछ बात कहता है तो वह कुछ समझ नहीं पाता; जब भोजन भी नहीं पाता, तब अनेक प्रकारसे मनमें पश्चात्ताप करता है। फिर वह दुःख पा-पाकर मरता है और भगवान्‌की भक्ति किये बिना नरकमें पड़ता है। नरकमें जाकर फिर बहुत दुःख पाता है। इसी प्रकार बार-बार (नरकसे संसारमें और संसारसे नरकमें) आता-जाता रहता है। इतनेपर भी वह श्रीहरिका स्मरण नहीं करता, इसीसे बार-बार दुःख भोगता है।

राग धनाश्री

[२९५]

हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै।
गएँ सोच आएँ नहिं आनँद, ऐसौ मारग गहियै॥
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै।
बाद-बिवाद हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै॥
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै॥

अब तो कहीं जाकर हरि-भक्तिका आनन्द प्राप्त करना चाहिये। ऐसा मार्ग पकड़ना चाहिये, जिससे न जाने (मरने) का शोक हो, न आने (जन्म लेने) का आनन्द। कोमल वाणी कही जाय, सबके प्रति दीनता रखी जाय और सर्वदा आनन्दित रहा जाय। वाद-विवाद (तर्क-वितर्क), हर्ष और शोक आदि सभी द्वन्द्वोंको सहन कर लिया जाय। यदि मनमें ऐसी समता आ जाय तो उस सुखका वर्णन कहाँतक किया जाय। सूरदासजी कहते हैं— 'हे प्रभु! (यह अवस्था प्राप्त होनेपर) आठों सिद्धियाँ, नवों निधियाँ या (और) जिस किसी भी वस्तुकी इच्छा हो, वह स्वयं पास आ जायगी।

[२९६]

जौ लौं मन कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै॥

कहा सनान किय तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै ।
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै ॥
जग सोभा, की सकल बड़ाई, इन तैं कछू न खूटै ।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै ।
सूरदास तबहीं तम नासैं, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ॥

जबतक मनसे कामनाएँ न छूट जायँ, तबतक योग, यज्ञ, व्रत आदि करनेसे क्या लाभ ? ये तो चावलरहित भूसीको कूटनेके समान हैं । तीर्थोंमें स्नान करनेसे, शरीरमें भस्म लगानेसे या जटा-जूट रखनेसे क्या लाभ ? अठारहों पुराणोंको पढ़ने या ऊपर उठनेवाले धुएँको पीने (उलटे लटककर सिरके नीचे धूनी जलाकर तप करने) से क्या लाभ ? संसारकी शोभा और सब लोगोंमें प्राप्त बड़प्पन—इनसे तो (कर्मबन्धन) थोड़ा भी घटता नहीं । करता कुछ और है, कहता कुछ और ही है, मन दसों दिशाओंमें भोगता रहता है (इससे तो कुछ होना नहीं) काम, क्रोध, मद, लोभ—ये (जीवके) शत्रु हैं, यदि इन सबसे छूट जाय—सूरदासजी कहते हैं—तभी अज्ञानका नाश होगा और ज्ञानाग्निकी लपटें (प्रकाश) फूट पड़ेंगी (प्रकट हो जायँगी) ।

राग बिलावल

[२०७]

भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै । सुत-कलत्र सौं हित परिहरै ॥
असन-बसन की चिंत न करै । बिस्वंभर सब जग कौं भरै ॥
पसु जाके द्वारे पर होइ । ताकौं पोषत अह-निसि सोइ ॥
जो प्रभु कैं सरनागत आवै । ताकौं प्रभु क्यौं करि बिसरावै ॥
मातु-उदर मैं रस पहुँचावत । बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत ॥
असन-काज प्रभु बन-फल करे । तृषा-हेत जल झरना भरे ॥

पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हे। बसन-काज बल्कल प्रभु कीन्हे॥
सज्या पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार॥
तातैं सब चिंता करि त्याग। सूर करौ हरि-पद अनुराग॥

जो भक्ति-मार्गका अनुसरण (पालन) करे, (उसे चाहिये कि) पुत्र-स्त्रीसे प्रेम (आसक्ति) छोड़ दे। भोजन और वस्त्रकी चिंता न करे, क्योंकि विश्वम्भर प्रभु सम्पूर्ण जगत्का भरण-पोषण करते (ही) हैं। जिसके दरवाजेपर पशु बँधा होता है, वही उस (पशु) का रात-दिन पोषण करता है। फिर जो प्रभुकी शरणमें आ जाय, उसे प्रभु कैसे विस्मृत कर सकते हैं ? (वे प्रभु) माताके पेटमें (बालकको) रस (पोषण) पहुँचाते हैं और फिर (जन्म लेनेपर) रक्तसे दूध बना देते हैं। प्रभुने (प्राणियोंके) भोजनके लिये वनमें फल उत्पन्न कर दिये हैं। प्यास दूर करनेके लिये झरनोंको जलसे भर दिया है। श्रीहरिने पात्रके स्थानपर हाथ दे रखे हैं। (इतना ही नहीं,) प्रभुने वस्त्रके लिये वल्कल (वृक्षोंकी छाल) बनायी है। पृथ्वीरूपी बहुत बड़ी शय्या बना दी है और गिरि-कन्दराओंके रूपमें अनगिनत घर बना दिये हैं। सूरदासजी कहते हैं—इसलिये सब चिन्ताओंको छोड़कर श्रीहरिके चरणोंसे ही प्रेम करो।

[२९८]

भक्ति पंथ कौं जो अनुसरै। सो अष्टांग जोग कौं करै॥
यम, नियमासन, प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम॥
प्रत्याहार धारना ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन॥
क्रम-क्रम सौं पुनि करै समाधि। सूर-स्याम भजि मिटै उपाधि॥

जो भक्ति-मार्गका अनुसरण (आचरण) करे, वह (अधिकारी हो, इच्छा हो और उपयुक्त शिक्षक मिल जाय तो) अष्टाङ्ग योग करे। यम, नियम, आसन और प्राणायामका अभ्यास करके निष्काम हो जाय (चित्तको कामनारहित कर दे)। दूसरी सब वासनाओंको छोड़कर प्रत्याहार

(इन्द्रिय-निग्रह), धारणा और ध्यान करे। (इस प्रकार) क्रमशः साधन करता हुआ फिर समाधि प्राप्त करे। सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरका भजन करनेसे उपाधि (जीवका जीवत्वरूप बन्धन) मिट जाती है। (योगीको भी भजन करना आवश्यक है।)

राग केदारौ

[२९९]

अपनी भक्ति देहु भगवान !
कोटि लालच जौ दिखावहु, नाहिनैं रुचि आन ॥
जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति।
विषय-बिष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति ॥
जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस।
देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस ॥
कामना करि कोटि कबहूँ किए बहु पसु-घात।
सिंह-सावक ज्यौं तजैं गृह, इंद्र आदि डरात ॥
नरक-कूपनि जाइ जमपुर पर्‌यौ बार अनेक।
थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारैं न नेक ॥
महा माचल, मारिबे की सकुचि नाहिं न मोहि।
किए प्रन हौं पर्‌यौं द्वारैं, लाज प्रन की तोहि ॥
नाहिं काँचौ कृपा-निधि हौं, करौ कहा रिसाइ।
सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै, डारिहौ कढ़िराइ ॥

हे भगवन्! (मुझे) अपनी भक्ति दीजिये। (यदि आप) करोड़ों लालच भी दिखायें, तो भी मुझे और कोई (पदार्थ पानेकी) रुचि नहीं है। जिस दिनसे जन्म पाया है, तबसे मेरी रीति (मेरा स्वभाव) यही रहा है कि विषय-भोगरूपी विषको हठपूर्वक खाता रहा। अन्याय करनेमें कभी डरा नहीं। ज्वाला (तीनों तापों) में जलता हूँ, पर्वत (उच्च स्थिति) से गिरता

हूँ और अपने हाथों अपना मस्तक काटता हूँ (स्वतः अपनी हानि करता हूँ)। किंतु मेरा साहस देखकर शंकरजी भी संकुचित होते हैं, वे मेरी रक्षा नहीं कर सकते। कभी करोड़ों कामनाएँ करके बहुत-से पशुओंकी हत्या की (बलि दी); किंतु (इतनेपर भी) जैसे सिंहका बच्चा घर छोड़ते डरे, उसी प्रकार इन्द्रादि देवता मेरे घर आनेमें भी डरते हैं। अनेक बार यमलोक जाकर नरकके कुओंमें पड़ा; (वहाँ भी) यमराजके सेवकोंके दल-के-दल मुझे हटाते-हटाते थक गये, उनके टालनेसे मैं थोड़ा भी हटा नहीं (इतना अधिक पापका मुझपर भार है)। मैं अत्यन्त हठी हूँ, मारनेका (कोई मुझे मारेगा, इसका) मुझे कोई संकोच (लज्जा) नहीं है। अब तो (न हटनेकी) प्रतिज्ञा करके तुम्हारे दरवाजेपर पड़ा हूँ, अपनी (पतितपावन) प्रतिज्ञाकी लज्जा तो आपको है। हे कृपानिधान ! मैं कच्चा नहीं हूँ (जो यहाँसे हट जाऊँगा)। आप क्रोध करके क्या करेंगे; यह सूरदास तो तब भी आपका दरवाजा नहीं छोड़ेगा, जब आप यहाँसे निकलवा देंगे (फिर-फिर मैं तुम्हारे द्वारपर ही आ बैठूँगा)।

राग देवगंधार

[३००]

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ॥
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै ॥
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥

मेरा मन अन्यत्र कहाँ सुख पा सकता है ? जैसे (समुद्रमें चलते) जहाज-पर बैठा पक्षी (उड़कर भी कहीं स्थान न मिलनेसे) घूम-फिरकर फिर जहाज-पर ही आ बैठता है (उसी प्रकार मेरे भी एकमात्र आश्रय आप ही हैं)।

जो कमललोचन प्रभुके माहात्म्यको छोड़कर दूसरे किसी देवताका ध्यान करता है, वह दुर्बुद्धि तो मानो सर्वश्रेष्ठ नदी गङ्गाजीको छोड़कर प्यासा होनेपर (जल पीनेके लिये) कुआँ खुदवाता है। जिस भ्रमरने कमलके रसको चख लिया है, उसे करीलके फल (टेंटी) कैसे अच्छे लगेंगे ? सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी ! कामधेनु (स्वरूप आप) को छोड़कर बकरी (माया) को कौन दुहाये (उससे सुख पानेका व्यर्थ प्रयास कौन करे)।

राग सारंग

[३०१]

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गएँ कैसैं जन जीवत, ज्यौं पानी बिनु पान ॥
जैसैं मगन नाद-रस सारँग, बधत बधिक बिन बान।
ज्यौं चितवत ससि ओर चकोरी, देखत ही सुख मान ॥
जैसैं कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान।
सूरदास प्रभु-हरिगुन मीठे, नित-प्रति सुनियत कान ॥

(हे प्रभु !) आपकी भक्ति ही मेरा प्राण है। यह सेवक उसके छूट जानेपर कैसे जीवित रहेगा ? जैसे पानीके बिना (नागरवेलका) पान नहीं रह सकता। जैसे संगीतके सुखमें निमग्न हुए हरिनको व्याध बिना बाणके ही (भाले आदिसे) मार डालता है (पर वह भागता नहीं), जैसे चकोरी चन्द्रमाकी ओर देखा करती है, (और चन्द्रमाको) देखनेमें ही सुख मानती है, जैसे कमल सूर्यका दर्शन करके अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठता है, सूरदासजी कहते हैं—(वैसे ही, उसी उत्कण्ठासे) अपने स्वामी श्रीहरिके सुमधुर गुणोंको नित्यप्रति (सदा) कानोंसे सुनता रहूँ।

राग कान्हरौ

[३०२]

नीकैं गाइ गुपालहि मन रे।
जा गायें निर्भय पद पाई अपराधीं अनगन रे ॥

गायौ गीध, अजामिल, गनिका, गायौ पारथ धन रे।
गायौ स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायौ वाम्हन रे॥
गायौ ग्राह-ग्रसित गज जल में, खंभ बँधे तैं जन रे।
गाएँ सूर कौन नहिं उबरयौ, हरि परिपालन पन रे॥

जिनका गुणगान करनेसे अगणित पापियोंने अभयपद (मोक्ष) प्राप्त किया, अरे मन ! उन श्रीगोपालका गुणगान भली प्रकार कर। गृध्रराज जटायु, अजामिल और गणिकाने उनका गुणगान किया, परमधन्य पाण्डव (अर्जुन) ने उनका गुणगान किया, अत्यन्त पापोंसे पूर्ण चाण्डाल (मूक चाण्डाल) ने भगवान्का गुणगान किया। माता-पिताकी सेवा भगवत्सेवा मानकर की। भगवद्भक्तिके प्रभावसे ही) द्वारकाके ब्राह्मणने अपने (मरे हुए) पुत्र पाये। जल (सरोवर) में ग्राहद्वारा पकड़े हुए गजराजने और (हिरण्यकशिपुद्वारा) खंभेमें बँधे हुए भक्त प्रह्लादजीने भगवान्का गुणगान किया। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीहरि तो अपनी भक्त-भय-भञ्जनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवाले हैं ही। उनका गुणगान करनेसे भला किसका उद्धार नहीं हुआ ?

राग सारंग

[३०२]

सब तजि भजिए नंद-कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार॥
जिहिं जिहिं जौनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम कुठार॥
वेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव-समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार॥
यह जिय-जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार॥

सब (सांसारिक आसक्तियाँ) छोड़कर श्रीनन्दनन्दनका भजन करना चाहिये । दूसरे किसी (देवता) का भजन करनेसे काम पूरा नहीं होगा—संसाररूपी जंजाल मिटेगा नहीं । जिस-जिस योनिमें जन्म लिया, उसीमें पापों-का बोझ मैंने बटोरा । उसे (पापभारको) काटनेमें केवल श्रीहरिका नाम-रूप तीक्ष्ण धारवाला कुल्हाड़ा ही समर्थ है । वेद, पुराण, भागवत, गीता, सबके (सभी शास्त्रोंके) मत (सिद्धान्त) का सार (निचोड़) यही है कि श्रीहरिके चरण-कमलरूपी नौकाके बिना संसाररूपी समुद्रसे कोई पार नहीं उतर सकता । यह बात हृदयमें समझकर इसी क्षणसे भजन प्रारम्भ कर दे; (जीवनके) दिन निःसार (व्यर्थ) बीते जा रहे हैं । सूरदासजी कहते हैं कि यह समय (मनुष्य-जन्म) पाकर उसका लाभ उठा ले; (अन्यथा) संसारमें ऐसा अवसर (मनुष्य-जीवन) फिर दुर्लभ हो जायगा ।

[३०४]

नर-देही पाइ चित्त चरन-कमल दीजै ।
दीन बचन, संतनि-सँग दरस-परस कीजै ॥
लीला-गुन अमृत-रस स्रवननि पुट पीजै ।
सुंदर मुख निरखि, ध्यान नैन माहिं लीजै ॥
गद्‌गद सुर, पुलक रोम, अंग-अंग भीजै ।
सूरदास गिरिधर-जस गाइ-गाइ जीजै ॥

मनुष्य-शरीर पाकर भगवान्‌के चरणकमलमें चित्त लगाना चाहिये । नम्र वाणी बोलनी चाहिये और सत्पुरुषोंका सङ्ग, उनका दर्शन तथा स्पर्श करना चाहिये । भगवान्‌के चरित्र एवं गुणोंकी कथारूपी अमृतरसको अपने कानोंके दोनेसे पीते रहना चाहिये । श्रीहरिके सुन्दर मुखका ध्यान करके (सदा) नेत्रोंमें ही उसे रखना चाहिये (सर्वत्र भगवान्‌की ही मूर्ति देखनी चाहिये) । सूरदासजी कहते हैं—स्वर गद्‌गद हो रहा हो, रोम पुलकित हो, सम्पूर्ण शरीर (प्रेमजन्य स्वेदसे) भीग रहा हो—इस प्रकार श्री-गिरिधरके यशका गान करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये ।

राग कान्हरौ

[३०५]

जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै ।
आन उपाय-प्रसंग छाँड़ि कै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै ॥
निसिदिन नाम लेत ही रसना, फिरि जु प्रेम-रस माचै ।
इहिं बिधि सकल लोक मैं बाँचै, कौन कहै अब साँचै ॥
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हरष-सोक नहिं खाँचै ।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि जगत नहिं नाचै ॥

यदि कोई अपना मन श्रीहरिमें जोड़ दे, मन, वाणी और कर्मसे सचाई-पूर्वक दूसरे सब उपाय एवं अन्य सारी चर्चा छोड़कर भगवान्‌में लगा रहे तथा जिह्वासे रात-दिन (निरन्तर) उनका नाम लिया करे तो जो प्रेमानन्द उसे प्राप्त होगा, वह अवर्णनीय है । इसी प्रकार (प्रेममें निमग्न होकर) सम्पूर्ण जगत्‌में चाहे (जहाँ) बना रहे, फिर कौन कहेगा कि अब जगत् सत्य है (ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर तो जगत् अपने-आप मिथ्या प्रतीत होगा) । सर्दी-गर्मी, सुख-दुःखको न माने (उनकी अपेक्षा या चिन्ता न करे); हर्ष या शोकसे प्रभावित न हो । सूरदासजी कहते हैं—तब वह उस निधि (भगवत्स्वरूप) में जाकर लीन हो जायगा और फिर जगत्‌में नहीं नाचेगा (जन्म-मरणके चक्रमें नहीं पड़ेगा) ।

राग आसावरी

[३०६]

स्याम-बलराम कौं, सदा गाऊँ ।
स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्नहू माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ ॥
यहै जप, यहै तप, यहै मम नेम-ब्रत, यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ ।
यहै मम ध्यान, यहै ज्ञान, सुमिरन यहै, सूर-प्रभु ! देहु, हौं यहै पाऊँ ॥

(मैं) सदा श्रीश्यामसुन्दर और बलरामजीका गुणगान करता रहूँ। श्यामसुन्दर और बलरामजीको छोड़कर दूसरे किसी देवताको स्वप्नमें भी अपने हृदयमें नहीं ले आऊँ। यही (श्याम-बलरामका गुणगान ही) मेरा जप हो, यही तप हो, यही नियम हो, यही व्रत हो, यही मेरे प्रेमका स्वरूप है और इसी फलका मैं सदा ध्यान करता रहूँ। यही मेरा ध्यान हो, यही ज्ञान हो, और यही स्मरण हो। सूरदासजी कहते हैं कि हे स्वामी! मुझे यही वरदान दीजिये! यही मैं (फलरूपसे) प्राप्त करूँ।

राग केदारौ

[३०७]

करि मन, नंद-नंदन-ध्यान।
सेव चरन-सरोज सीतल, तजि विषय-रस पान॥
जानु-जंघ त्रिभंग-सुंदर, कलित कंचन-दंड।
काछनी कटि पीतपट दुति कमल-केसर-खंड॥
मनौ मधुर मराल-छौना, किंकिनी कल राव।
नाभि-ह्रद, रोमावली-अलि, चले सहज सुभाव॥
कंठ मुक्तामाल, मलयज, उर बनी बनमाल।
सुरसरी कैं तीर मानौ लता स्याम तमाल॥
बाहु-पानि सरोज-पल्लव धरे मृदु मुख वेनु।
अति बिराजत बदन-बिधु पर सुरभि-रंजित रेनु॥
अधर, दसन, कपोल, नासा, परम सुंदर नैन।
चलित कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन॥
कुटिल भ्रूपर तिलक रेखा, सीस सिखिनि सिखंड।
मनु मदन धनु-सर सँधाने, देखि घन-कोदंड॥
सूर श्रीगोपाल की छवि, दृष्टि भरि-भरि लेहु।
प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहु॥

अरे मन ! विषय-रसको पीना (विषयभोगोंके चिन्तनमें लगे रहना) छोड़ दे और श्रीनन्दनन्दनका ध्यान कर । उनके शीतल (त्रयतापहारी) चरणकमलोंकी सेवा कर । (श्यामका) त्रिभङ्गीसे स्थित चरणोंसे घुटनों तथा घुटनोंसे जाँघोंतकका पूरा अङ्ग स्वर्णके सुन्दर दण्डके समान है । कमरमें बँधी पीताम्बरकी कछनीकी छटा ऐसी है, मानो कमलके केसरके खण्ड हों । किङ्किणी (करधनी) का सुन्दर शब्द ऐसा लगता है, जैसे हंसके बच्चे मधुर स्वरमें कूजते हों । नाभिरूपी कुण्डसे ऊपर जो रोमावली है, वह ऐसी प्रतीत होती है कि सहज स्वभावसे ही भौंरें उस कुण्डकी ओर जा रहे हैं । गलेमें मोतियोंकी माला है, वक्षःस्थलपर चन्दन लगा है और उसपर वनमाला लहरा रही है । इन सबकी छटा ऐसी है, जैसे गङ्गाजीके किनारेपर श्याम तमालकी लता लहराती हो । सुन्दर भुजाओंके अग्रभागपर कोमल-कोमल हाथ ऐसे सुशोभित हैं, जैसे कमलनालपर कमलके पत्ते । सुकुमार मुखपर वंशी लगाये हैं और उस चन्द्रमुखपर गायोंके खुरोंसे उठी धूलि लगकर बड़ी ही शोभा दे रही है । अधर, दन्तावली, कपोल, नासिका और नेत्र अत्यन्त ही सुन्दर हैं । गण्डस्थल (कानोंके नीचेके भाग) पर कुण्डल इस प्रकार हिल रहे हैं, जैसे कामदेव नृत्य कर रहे हों । तिरछी (धनुषाकार) भौंहोंके ऊपर (ललाटपर) तिलककी रेखा है । मस्तकपर मयूरपिच्छ (का मुकुट) है । यह छटा ऐसी है मानो कामदेवने (भौंहरूपी) धनुषपर (तिलकरेखारूपी) बाण (केशरूपी) बादलोंमें (मयूरपिच्छरूपी) इन्द्रधनुष देखकर चढ़ा लिया है । सूरदासजी कहते हैं कि श्रीगोपालकी यह शोभा भली प्रकार आँखोंमें भर लो और प्राणोंके स्वामी श्रीश्यामसुन्दरकी शोभा देखते हुए पलकें भी मत गिरने दो—अपलक यह छवि देखते ही रहो ।

[३०८]

भजि मन ! नंद-नंदन-चरन ।
परम पंकज अति मनोहर, सकल सुख के करन ॥
सनक-संकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन ।
सेस, सारद, रिषय नारद, संत चिंतन सरन ॥

पद-पराग-प्रताप दुर्लभ, रमा कौ हित-करन।
परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर धन-धरन॥
चित्त चिंतन करत जग-अघ हरत, तारन-तरन।
गए तरि लै नाम केते, पतित, हरि-पुर-घरन॥
जासु पद-रज-परस गौतम-नारि-गति-उद्धरन।
जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन॥
कृष्न-पद-मकरंद पावन, और नहिं सरवरन।
सूर भजि चरनारविंदनि, मिटै जीवन-मरन॥

'हे मन! श्रीनन्दनन्दनके चरणोंका भजन कर (आश्रय पकड़ ले)। वे श्रेष्ठ कमलसे भी अत्यन्त मनोहर तथा समस्त सुखोंको देनेवाले हैं। सनकादि ऋषि तथा शंकरजी उनका ध्यान किया करते हैं, वेद-पुराण उनका ही (माहात्म्य) वर्णन करते हैं। वे शेषनाग, शारदा, देवर्षि नारद तथा संतोंके चिन्तनके आधार (विषय) हैं। उन चरणोंके पराग (धूलि) का प्रताप अत्यन्त दुर्लभ है (वह धूलि बड़ी कठिनतासे मिलती है)। वह लक्ष्मीका मङ्गल करनेवाली है (लक्ष्मीजी उस धूलिको पानेके लिये चरणोंकी ही सेवा करती हैं)। उनका स्पर्श करके गङ्गाजी पावन (औरोंको पवित्र करनेवाली) और तीनों लोकोंके घरोंको (पवित्रताकी) सम्पत्तिसे पूर्ण करनेवाली हो गयीं। जो चित्तसे उन (चरणों) का चिन्तन करते हैं, (वे केवल अपना ही नहीं) संसारके पापको नष्ट कर डालते हैं, स्वयं अपना और दूसरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हो जाते हैं। कितने ही पतित भगवन्नाम लेकर मुक्त हो गये, वैकुण्ठमें उन्होंने निवास प्राप्त किया। जिन चरणोंकी धूलिका स्पर्श करके गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याका उद्धार हुआ और उसे सद्गति मिली, जिन चरणोंकी महिमा केवटने प्रकट की कि उन चरणोंको धोकर अपने मस्तकपर (चरणोदक) चढ़ाया, श्रीकृष्णचन्द्रके उन चरणोंका मकरन्द (प्रेमामृत) अत्यन्त पावन है; उन चरणोंकी तुलनामें और कोई है ही नहीं। सूरदासजी कहते हैं—उन चरणकमलोंका भजन करो, जिससे जन्म-मरणका चक्र समाप्त हो जाय।

[३०९]

हरि जू की आरती बनी ।
अति बिचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी ॥
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहस-फनी ।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी ॥
रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी ।
उड़त फूल उड़गन नभ अंतर, अंजन घटा घनी ॥
नारदादि, सनकादि, प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी ।
काल-कर्म-गुन-ओर-अंत नहिं प्रभु इच्छा रचनी ॥
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी ।
सूरदास सब प्रगट ध्यान मैं अति बिचित्र सजनी ॥

श्रीहरिकी आरती बहुत ही सजी हुई है । अत्यन्त विचित्र रचना उस आरतीमें (प्रभुने) कर रखी है, जिसकी गणना (वर्णन) वाणीसे हो नहीं पाती । (सब लोकोंके आधार भगवान्) कच्छप तो (उस आरतीके) नीचेका अत्यन्त अनुपम आसन हैं और सहस्र फणवाले शेषनाग उसकी डाँड़ी हैं । पृथ्वी ही उसकी कटोरी है, जिसमें घृतरूपसे सातों समुद्र भरे हैं और पर्वतोंकी घनी (मोटी) बत्ती है । सूर्य और चन्द्रमारूपी ज्योति जगत्में परिपूर्ण होकर रात्रिके अन्धकारका हरण करती है । आकाशरूपी स्थानमें तारागणरूपी पुष्प उड़ रहे हैं और बादलोंकी सघन घटा अञ्जन (आरतीकी ज्योतिसे निकली, कालिमा) के समान छायी हुई है । नारद आदि, सनकादि, प्रजापति तथा देवता, मनुष्य एवं असुरोंका समूह आरती-का गान कर रहा है; काल, कर्म और गुणोंका ओर-छोर नहीं है; (काल, कर्म, गुणसे बनी अनन्त सृष्टि) प्रभुकी इच्छासे हुई रचना है । (आरतीमें प्रभुके इस अनन्त महत्त्वका गान हो रहा है ।) सूरदासजी कहते हैं कि यह अत्यन्त विचित्र सजावट ध्यानमें (विचार करके देखनेपर) सब-की-सब प्रत्यक्ष है ।

परिशिष्ट

पदोंमें आये हुए मुख्य कथा-प्रसङ्ग

प्रह्लाद—

हिरण्यकशिपुनामक एक प्रतापी दैत्य था। घोर तप करके उसने ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि 'मैं न मनुष्यसे मरूँ न पशुसे; न दिनमें मरूँ न रातमें; न घरमें मरूँ न बाहर और अस्त्र-शस्त्रसे भी न मरूँ!' यह वरदान पाकर उसने सभी देवताओंको जीत लिया। उसके अत्याचारसे तीनों लोक काँपने लगे। वह किसीको यज्ञ, जप, तप, भजन-पूजन नहीं करने देता था। उसके पुत्र प्रह्लाद बड़े भगवद्भक्त थे। इसलिये वह नाना प्रकारके कष्ट देकर प्रह्लादजीको मार डालनेका प्रयत्न करने लगा; परंतु जब उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये, तब प्रह्लादजीको खम्भेमें बाँधकर उन्हें मारनेके लिये तलवार उठाकर बोला—'कहाँ हैं तेरे भगवान्? अब आकर वे तुझे बचावें तो देखूँ।' प्रह्लादजीने कहा—'भगवान् तो सर्वत्र हैं। वे मुझमें, आपमें, तलवारमें और इस खम्भेमें भी हैं।' इतना सुनते ही हिरण्यकशिपुने खम्भेपर एक घूँसा मारा। उसी समय खम्भेको फाड़कर भयंकर शब्द करते हुए नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये। उनका शरीर मनुष्यका और मुख सिंहका था। हिरण्यकशिपुको दरवाजेपर घसीटकर भगवान् ले गये और अपनी जाँघोंपर पछाड़कर नखसे उसका पेट फाड़ दिया। हिरण्यकशिपुको मारकर भगवान्ने दैत्योंका राजा प्रह्लादको बना दिया!

ध्रुव—

राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। दोनों रानियोंके एक-एक पुत्र थे; किंतु राजा छोटी रानी सुरुचिको अधिक मानते थे। बड़ी रानी सुनीतिके पुत्र ध्रुव एक दिन पिताकी गोदमें जा बैठे।

सुरुचिसे यह देखा नहीं गया। उसने ध्रुवको डाँटकर राजाकी गोदसे नीचे उतार दिया। रोते हुए ध्रुव अपनी माताके पास गये। माताने उन्हें कहा कि भगवान्के भजनसे ही उत्तम पद मिलता है। पाँच वर्षके बालक ध्रुव माताके उपदेशसे घर छोड़कर भजन करने निकल पड़े। मार्गमें उन्हें नारदजी मिले। नारदजीने मन्त्र दिया। मथुराके पास यमुना-किनारे ध्रुवने छः महीनेतक कठोर तपस्या की। इससे भगवान्ने उन्हें दर्शन दिया और अविचल पद पानेका वरदान दिया। घर लौटनेपर ध्रुवको राजाने युवराज बनाया। समयपर ध्रुव राजा हुए और दीर्घकालतक राज्य करके अन्तमें भगवान्के भेजे विमानमें बैठकर सशरीर ध्रुवलोकको चले गये।

गजेन्द्र—

एक सरोवरमें एक बलवान् मतवाला हाथी हथिनियोंके साथ जलविहार कर रहा था। इतनेमें एक ग्राहने उसका पैर पकड़ लिया। हाथीने पैर छुड़ानेके लिये बहुत जोर लगाया, किंतु ग्राहसे अपनेको छुड़ा न सका। ग्राह उसे गहरे जलमें खींच ले चला। थककर और निराश होकर आर्त-भावसे गजराजने भगवान्को पुकारा। उसकी पुकार सुनते ही भगवान् अपना वाहन गरुड़ भी छोड़कर वहाँ आ गये। चक्रसे ग्राहका सिर काटकर उन्होंने गजराजको छुड़ाया। भगवान्का दर्शन होनेसे गजराज भगवान्के धाम गया और भगवान्के द्वारा मारे जानेसे ग्राहको भी सद्गति प्राप्त हुई।

अम्बरीष—

महाराज अम्बरीष भगवान्के परमभक्त थे। भगवान्ने उनकी रक्षामें अपना चक्र नियुक्त कर रखा था। महाराज अम्बरीष नियमसे एकादशी-व्रत करते थे। एक बार द्वादशीको दुर्वासाजी उनके यहाँ आये। राजाने उनको भोजनका निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण स्वीकार करके ऋषि स्नान-संध्या करने चले गये। उन्हें लौटनेमें देर होने लगी। द्वादशीमें पारण करना आवश्यक था और द्वादशी थोड़ी ही थी; अतः ब्राह्मणोंकी आज्ञासे राजाने जल पीकर पारण कर लिया। लौटनेपर दुर्वासाजीको जब इस बातका पता लगा, तब अत्यन्त क्रोधित होकर उन्होंने राजाको शाप दिया

और उनको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न की। भगवान्‌के चक्रने कृत्या राक्षसीको तो तुरंत भस्म कर दिया और तब दुर्वासाजीके पीछे पड़ा। दुर्वासाजी तीनों लोकोंमें भागते फिरे; किंतु किसीने जब उन्हें आश्रय नहीं दिया, तब वे भगवान् विष्णुके पास गये। भगवान्‌ने उनको अम्बरीषके पास ही भेज दिया। दुर्वासाजी लौटकर अम्बरीषके चरणोंपर गिर पड़े। अम्बरीषने स्तुति करके चक्रको शान्त किया। दुर्वासाजीने अम्बरीषको दस जन्म लेनेका शाप दिया था; किंतु भगवान्‌ने प्रकट होकर कहा—'यह शाप मैं ग्रहण करता हूँ। अम्बरीषके बदले मैं दस बार शरीर धारण करूँगा।'

महर्षि भृगुद्वारा परीक्षा—

एक बार ऋषियोंमें यह विवाद छिड़ा कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजीमें सबसे श्रेष्ठ कौन है? महर्षि भृगु इसका निर्णय करनेके लिये परीक्षा लेने गये। पहले वे ब्रह्मलोक गये और ब्रह्माजीको प्रणाम किये बिना ही खड़े हो गये। ब्रह्माजीको इससे बड़ा क्रोध आया, परंतु अपने क्रोधको उन्होंने दबा लिया। भृगुजी वहाँसे कैलास पहुँचे। वहाँ उन्हें देखकर शंकरजी उनसे मिलने दोनों हाथ बढ़ाकर उठे, किंतु भृगुने कहा—'तुम अपवित्र रहते हो। मुझे छूओ मत।' इस बातसे क्रोधित होकर शंकरजीने उन्हें मारनेको त्रिशूल उठाया; किंतु पार्वतीजीने चरणोंमें गिरकर शंकरजीको रोक लिया। भृगुजी वहाँसे क्षीरसागर गये। शेषशय्यापर सोये भगवान् विष्णुकी छातीमें पहुँचते ही उन्होंने एक लात जमा दी। भगवान् झटपट उठे और उनका चरण दबाते हुए बोले—'मेरे कठोर वक्षपर लगनेसे आपके कोमल चरणको कष्ट हुआ होगा, मुझे क्षमा कीजिये। आजसे आपके इस चरणका चिह्न सदा मेरे वक्षपर रहेगा। भगवान्‌के वक्षःस्थलपर वही चिह्न भृगुलता कहा जाता है। महर्षि भृगुने लौटकर ऋषियोंको सब बातें बता दीं। भगवान् विष्णुमें इससे ऋषियोंकी श्रद्धा और दृढ़ हो गयी।

कपिल-देवहूति—

वैवस्वत मनुकी पुत्री देवहूतिका विवाह प्रजापति कर्दमजीसे हुआ था। भगवान् कपिल देवहूतिजीके पुत्ररूपसे अवतरित हुए। कर्दमजी जब

घरका त्याग करके वनमें तपस्या करने चले गये, तब कपिलजीने माता देवहूतिको सांख्य-शास्त्रके तत्त्वज्ञान और भगवद्भक्तिका उपदेश किया। उस उपदेशको अपनाकर माता देवहूति जीवन्मुक्त हो गयीं।

शिव-मोह—

समुद्र-मन्थनके समय जब क्षीरसागरसे अमृत निकला, तब दैत्योंने उसे छीन लिया। देवताओंको निराश देखकर भगवान् विष्णुने मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित करके उनसे अमृत-कलश ले लिया और देवताओंको अमृत पिलाया। देवताओंके अमृत पी लेनेपर भगवान् अन्तर्धान हो गये। जब शंकरजीको यह समाचार मिला, तब वे पार्वतीजी और गणोंके साथ वैकुण्ठ गये और उन्होंने भगवान्से उस मोहिनीरूपको दिखलानेकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थनासे भगवान् मोहिनीरूपमें प्रकट हो गये। शंकरजी उस रूपसे मोहित होकर मोहिनीके पीछे दौड़ते फिरे। अन्तमें जब आवेश समाप्त हो गया, तब उन्हें अपनी दशापर विस्मय हुआ। भगवान् फिर अपने चतुर्भुजरूपमें प्रकट हुए और उन्होंने शंकरजी-को आश्वस्त किया।

देवर्षि नारदका गार्हस्थ्य—

एक बार देवर्षि नारदजीने भगवान्की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की। भगवान्ने उन्हें एक सरोवरमें स्नान करनेको कहा। स्नान करके जलसे निकलनेपर नारदजी अपने-आपको भूल गये। वे अपनेको एक साधारण मनुष्य मानने लगे। उन्होंने विवाह किया। उनकी पत्नीसे उन्हें साठ पुत्र और बारह पुत्रियाँ हुईं। घरमें बहुत कष्ट उन्हें भोगने पड़े। उन कष्टोंसे ऊबकर वे वनमें आये और उसी सरोवरमें स्नान करने प्रविष्ट हुए। स्नान करके जलसे निकलनेपर उन्होंने देखा कि भगवान् किनारे खड़े मुस्करा रहे हैं। केवल उतना ही समय—कुछ क्षण—बीता है, जितना स्नान करनेमें लगा था। भगवान्की मायाका यह प्रभाव देखकर नारदजी भगवान्के चरणोंपर गिर पड़े।

अहल्या-उद्धार--

महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्यापर देवराज इन्द्र मोहित हो गये थे। एक दिन रात्रिमें जब ऋषि प्रातःकाल समझकर नदीपर स्नान करने गये, तब इन्द्र उनका ही रूप बनाकर ऋषिके आश्रमपर अहल्याके पास पहुँच गये। लेकिन मार्गमें ही गौतम ऋषिको पता लग गया कि रात्रि अधिक है, वे लौट पड़े। आश्रमपर पहुँचकर इन्द्रका छल उन्होंने जान लिया। इन्द्र-को तो उन्होंने शाप दिया ही अहल्याको भी पत्थर हो जानेका शाप देकर तपोलोक चले गये। भगवान् श्रीराम जब विश्वामित्रजीके साथ जनकपुर जा रहे थे तब विश्वामित्रजीकी आज्ञासे उन्होंने पत्थर बनी अहल्याको अपने चरणोंसे छू दिया। उनकी चरणधूलिका स्पर्श होते ही अहल्या शापसे मुक्त हो गयी। वह नारीरूपमें प्रकट होकर श्रीरामकी स्तुति करने लगी। स्तुति करके वह भी अपने पति गौतम ऋषिके पास तपोलोकमें चली गयी।

गृध्रराज जटायु—

जटायु गीध पक्षी होनेपर भी बहुत बलवान् और भगवान्के भक्त थे। महाराज दशरथसे उनकी मित्रता थी। पञ्चवटीसे सीताजीको हरण करके रावण जब लङ्का जाने लगा, तब सीताजीका आर्तक्रन्दन सुनकर जटायुने रावणको रोका। युद्धमें रावणने जटायुके पंख काट दिये। जब श्रीराम-लक्ष्मण सीताजीको ढूँढ़ते आगे बढ़े, तब उन्होंने मरणासन्न जटायुको देखा। भगवान् श्रीरामको सीता-हरणका समाचार देकर उनका दर्शन करते हुए जटायुने प्राणत्याग किया। श्रीरामने अपने हाथों पिताके समान आदरसे जटायुका अन्तिम संस्कार किया।

शबरी--

ये जातिकी भीलनी थीं। मतंग ऋषिके आश्रमके पास कुटिया बनाकर रहती थीं। ऋषि जब परमधाम जाने लगे, तब इनसे कह गये थे कि श्रीराम इनके यहाँ आयेंगे। तबसे ये प्रतिदिन मार्ग साफ करतीं और वनके फल एकत्र करके श्रीरामके आनेका मार्ग देखा करती थीं। फल मीठे हैं या नहीं, यह जाननेके लिये वे चखकर देख लिया करती थीं। भक्तवत्सल

श्रीराम जब सीताजीको ढूँढ़ते उस वनमें पहुँचे, तब ऋषियोंके आश्रम छोड़कर वे शबरीजीकी कुटियापर ही गये। शबरीजीके दिये फल बड़े चावसे माँग-माँगकर और उनके स्वादकी प्रशंसा करके प्रभुने खाये। शबरीजीको भगवान्‌ने भक्तिका उपदेश किया।

विभीषण—

विभीषणजी रावणके छोटे भाई थे। हनुमान्‌जी जब सीताजीका पता लगाने लङ्का गये थे, तब विभीषणजीने ही उन्हें बताया था कि सीताजी अशोकवाटिकामें हैं। वे रावणको बार-बार समझाया करते थे कि 'श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं। उनसे शत्रुता करना उचित नहीं है। श्रीजानकीजी जगज्जननी हैं। उन्हें लौटा देना चाहिये।' इस उपदेशसे चिढ़कर रावणने भरी सभामें उनकी छातीमें लात मारी और लङ्कासे निकल जानेको कहा। इससे विभीषणजी भगवान् श्रीरामके पास समुद्रतटपर आये। भगवान् श्रीरामने विभीषणको शरणमें आया देखकर अपना लिया और उसी समय समुद्रके जलसे तिलक करके 'लङ्केश' कह दिया। रावणके मारे जानेपर भगवान्‌ने विभीषणको लङ्काका राज्य दिया।

जलपर शिला तैरना—

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जब वानरी सेनाके साथ लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचे, तब समुद्रसे ही यह बात पूछनेका निश्चय हुआ कि सेना कैसे समुद्र पार करे? समुद्र श्रीरामके क्रोधित होनेपर देवरूपसे प्रकट हुआ और उसने उपाय बताया। नल और नील नामके दोनों सगे भाई, जो श्रीरामकी सेनाके मुख्य नायकोंमें हैं, समुद्रपर पुल बनाने लगे। बचपनमें ऋषियोंने उन्हें शाप दिया था कि उनके द्वारा फेंके गये पत्थर पानीमें नहीं डूबेंगे। अन्य वानर बड़े-बड़े शिलाखण्ड ला-लाकर नल-नीलको देते थे। एक शिलापर 'रा' और एकपर 'म' लिखकर उन्हें परस्पर मिला-कर नल-नील समुद्रपर रख देते थे। ऋषियोंके शाप तथा राम-नामके प्रभावसे शिला पानीपर तैरती रहती थी। इस प्रकार लङ्कातक समुद्रपर पुल बन गया। उस पुलपरसे समुद्र पार करके श्रीराम सेनाके साथ लङ्का पहुँचे।

पूतना उद्धार—

पूतना राक्षसी थी। वह कंसकी सेविका थी। मथुराके राजा कंसने उसे नवजात बालकोंकी हत्या करनेका काम दिया था। बालकोंका वध करनेके लिये वह गाँवोंमें इच्छानुसार रूप बनाकर घूमती रहती थी। अचानक एक दिन वह बहुत सुन्दर स्त्रीका रूप बनाकर और अपने स्तनोंमें भयंकर विषका लेप करके गोकुल पहुँची। उसके रूपको देखकर लोगोंने उसे कोई देवी समझ लिया। सीधे नन्दभवनमें वह चली गयी। पालनेमें सोये छः दिनके श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें उठाकर पूतनाने उनके मुखमें अपना विष-लगा स्तन दे दिया। भगवान् उसकी दुष्टता जान गये। उन्होंने दूधके साथ उसके प्राण भी पी लिये। प्राण खींचे जानेसे रोती-चिल्लाती पूतना हाथ-पैर पटकती हुई भागी और कुछ दूर जाकर मरकर गिर पड़ी। दयामय भगवान्ने दूध पिलानेके कारण उसे माताके समान सद्गति दी। श्रीकृष्ण-चन्द्रके दूध पीनेसे पूतनाका शरीरतक इतना पवित्र हो गया था कि जब गोपोंने उसे जलाया, तब उसके शरीरसे अगुरुकी सुगन्ध निकलने लगी।

कुबेरके पुत्रोंका उद्धार—

कुबेरके दो पुत्र थे—नलकूबर और मणिग्रीव। ये मदिरापान करके मतवाले बने किन्नरियोंके साथ सरोवरमें जल-विहार कर रहे थे। देवर्षि नारदजीके उधरसे जानेपर भी उन्होंने न तो प्रणाम किया, न कपड़े ही पहिने। उन्हें वृक्षोंके समान निर्लज्ज नंगे खड़े देखकर नारदजीने शाप दे दिया—'तुम दोनों वृक्ष हो जाओ।' साथ ही कृपा करके नारदजीने यह भी कह दिया—'द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रके तुम्हें दर्शन होंगे। वे तुम्हारा उद्धार करेंगे। तुम्हें उस समय भगवान्की भक्ति मिलेगी।' मैया यशोदाने बंदरोंको चोरीसे माखन लुटानेके कारण जब गोपालको ऊखलसे बाँध दिया और घरके काममें लग गयीं, तब नारदजीकी बातका स्मरण करके वे दयामय नन्दनन्दन घुटनोंके बल ऊखल खींचते दरवाजेसे बाहर चलने लगे। नारदजीके शापसे कुबेरके वे दोनों पुत्र गोकुलमें श्रीनन्दरायजीके दरवाजेपर अर्जुनके दो सटे हुए वृक्ष बने खड़े थे। श्रीकृष्णचन्द्र उन वृक्षोंके बीचसे निकल गये

और उनमें ऊखल अड़ाकर खींचने लगे। इससे दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर गिर पड़े। कुबेरके दोनों पुत्र उन वृक्षोंसे अपने देवरूपमें प्रकट हो गये। भगवान्‌की स्तुति करके दोनों अपने लोक चले गये।

कालिय-मर्दन—

व्रजमें यमुनाजीके एक ह्रदमें कालिय नामक एक भयंकर सर्प अपने परिवारके साथ रहता था। उसके एक सौ सिर थे। वह इतना विषैला था कि उसके विषसे ह्रदका जल खौलता रहता था। पासके वृक्षतक उस ह्रदकी विषैली वायु लगनेसे जल गये थे। केवल एक कदम्ब ही बचा था। एक दिन गायें चराते हुए गोप-बालक उस ह्रदके पास पहुँच गये और अनजानमें ह्रदका जल पी लेनेके कारण तुरंत मरकर गिर पड़े। किंतु श्रीकृष्ण-चन्द्रने अपनी अमृत दृष्टिसे देखकर सब गायों और बालकोंको जीवित कर दिया। इसके बाद कालियनागको वहाँसे निकाल देनेकी इच्छासे श्रीकृष्णचन्द्र ह्रदमें कूद पड़े। पहले तो नागने श्यामसुन्दरको अपने शरीरसे लपेट लिया और कुछ देर वे मूर्च्छित-से भी रहे; किंतु कुछ देरमें ही अपनेको सर्पके बन्धनसे छुड़ाकर ह्रदमें तैरने लगे। अन्तमें कूदकर श्रीकृष्णचन्द्र सर्पके सिरपर चढ़कर नृत्य करने लगे। सर्प जो मस्तक उठाता, उसीपर श्रीकृष्णके चरण पड़ते। उनके चरणोंके आघातसे कालियके मस्तक चिथड़े हो उठे। वह मूर्च्छित होने लगा। नागकी पत्नियोंने श्यामसुन्दरसे प्रार्थना की, नागने भी क्षमा माँगी। इससे श्रीकृष्णचन्द्रने उसे छोड़ दिया और जलसे बाहर निकल आये। कालियनाग श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे यमुनाजीको छोड़कर परिवारके साथ समुद्रके रमणकद्वीपमें चला गया।

प्रलयवृष्टिसे व्रजरक्षा—

व्रजके गोप प्रतिवर्ष देवराज इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ किया करते थे। इन्द्रका गर्व नष्ट करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंको समझाकर इन्द्रका यज्ञ बंद करवा दिया और यज्ञके लिये एकत्र सामग्रीसे गिरिराज गोवर्धनका पूजन करवाया। इससे इन्द्र क्रोधमें भर गये। वे व्रजको प्रलयकालके मेघोंको बरसा करके पूरे व्रजको डुबा नष्ट कर देनेपर तुल गये।

देनेकी उन्होंने आज्ञा दी । मूसलधार वर्षा होने लगी, ओले पड़ने लगे, आँधी चलने लगी और बार-बार बिजली गिरने लगी । इससे व्याकुल होकर व्रजके गोप एवं गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये । उन्हें निर्भय रहनेको कहकर श्रीकृष्णने अपने बायें हाथसे गोवर्धन पर्वतको उठाकर हाथकी छोटी अँगुलीपर रख लिया । सात दिन-रात छत्तेके समान पर्वतको उठाये श्यामसुन्दर स्थिर खड़े रहे । पर्वतके नीचे सब गोप-गोपियाँ अपनी गायों और घरकी पूरी सामग्रीके साथ निर्विघ्न सुरक्षित थे । प्रलय-मेघोंका जल समाप्त हो गया; इन्द्र हार गये । वर्षा बंद होनेपर जब सब लोग पर्वतके नीचेसे निकलकर अपने घरोंमें आ गये, तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने पहले स्थानपर पर्वतको रख दिया । लज्जित होकर इन्द्र व्रजमें आये और उन्होंने श्रीनन्दनन्दनसे क्षमा माँगी ।

कुब्जा—

व्रजसे अक्रूरजी जब श्रीकृष्ण-बलरामको मथुरा ले गये और नन्दबाबाके पड़ावपर पहुँचाकर अपने घर चले गये, तब दोनों भाई गोप-सखाओंके साथ मथुरा नगर देखने निकले । नगरमार्गमें उन्हें कंसकी एक कुबड़ी दासी मिली । वह कंसके लिये अङ्गराग (घिसा चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ) ले जा रही थी । श्यामसुन्दरने उससे वह अङ्गराग माँगा । बड़े प्रेमसे उसने दोनों भाइयोंको अङ्गराग लगाया । श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय उसके पैरपर एक चरण रखा और ठोढ़ी पकड़कर उठाकर उसका कूबड़ दूर कर दिया तथा उसे सुन्दरी बना दिया । पीछे भगवान् उसके घर भी गये और उसके प्रेमको स्वीकार किया ।

गुरुका पुत्र ले आना—

श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्र उज्जैनमें सांदीपनि मुनिके आश्रममें विद्याध्ययन करने गये थे । चौंसठ दिनोंमें ही उन्होंने चौंसठ कलाएँ और सब वेद-शास्त्र पढ़ लिये । उनका यह प्रभाव देखकर सांदीपनि मुनि समझ गये कि वे तो साक्षात् परमपुरुष हैं । जब राम-श्यामने गुरुदेवसे दक्षिणा माँगनेको कहा, तब पत्नीकी सलाहसे उन्होंने समुद्र-स्नानके समय डूबा हुआ अपना पुत्र माँगा । दोनों भाई प्रभास गये । समुद्रने देवरूपसे प्रकट होकर

उनका स्वागत किया। सागरके कहनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने जलमें रहनेवाले पञ्चजन नामक असुरको मार दिया और उसके शरीरसे निकला पाञ्चजन्य शङ्ख ले लिया। असुरके पेटमें गुरुपुत्र न मिलनेसे दोनों भाई यमलोक गये और यमराजके यहाँसे गुरुपुत्रको ले आकर उन्होंने गुरुदेवको दे दिया।

भीमसेनको विष दिया गया—

दुर्योधन बचपनसे ही पाण्डवोंसे जलता रहता था। अकेले भीमसेन उसके सौ भाइयोंको सभी खेलोंमें हरा देते थे, इससे भीमसेनसे उसका विशेष द्वेष था। एक दिन उसने पाण्डवोंको गङ्गा-स्नानके लिये साथ ले लिया। वहाँ भीमसेनको विष मिले लड्डू उसने खिला दिये। जब भीमसेन मूर्च्छित हो गये, तब लताओंसे बाँधकर दुर्योधनने उन्हें गङ्गाजीमें फेंक दिया। भगवान्‌की कृपासे भीमसेन गङ्गाजीसे बहते हुए समुद्रमें पहुँचकर पाताल पहुँच गये। वहाँ नागोंने उन्हें काटा, जिससे खाये विषका प्रभाव नष्ट हो गया। पीछे उनका परिचय जानकर वासुकि नागने उन्हें नाग-लोकके अमृत-कुण्डसे अमृत पिलाया और पृथ्वीपर पहुँचा दिया।

लाक्षागृहसे पाण्डव-रक्षा—

दुर्योधनने वारणावत नगरमें अपने सेवकोंद्वारा गुप्त रूपसे एक ऐसा महल बनवाया, जो लकड़ी, राल, रूई, तेल आदि ज्वलनशील पदार्थोंसे ही बना था, धृतराष्ट्रसे कहकर दुर्योधनने पाण्डवोंको उनकी माता कुन्तीदेवीके साथ उसी महलमें रहनेके लिये भिजवा दिया। वह चाहता था कि जब पाण्डव वहाँ निश्चिन्त होकर रहने लगें, तब धोखेसे महलमें आग लगवा दें, जिससे उसमें पाण्डव जल जायँ। किंतु भगवान्‌की कृपासे विदुरजीको दुर्योधनकी दुर्नीतिका पता लग गया था। उन्होंने युधिष्ठिरको सब बातें समझा दीं और उस महलसे निकल जानेके लिये एक गुप्त सुरंग-मार्ग भी बनवा दिया। इसलिये पाण्डवोंने एक रात स्वयं ही उस महलमें आग लगा दी और सुरंगके मार्गसे वनमें चले गये।

जरासंधकी कैदसे राजाओंका उद्धार—

मगधके राजा जरासंधने अनेक युद्धोंमें पराजित करके बहुत-से राजाओं-को कैद कर लिया था। वह उन राजाओंका बलिदान करना चाहता था।

राजाओंने एक दूत द्वारका भेजकर भगवान् श्रीकृष्णसे अपने उद्धारकी प्रार्थना की। उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते थे। श्रीकृष्णचन्द्र यादवोंके साथ हस्तिनापुर आये। वहाँसे केवल अर्जुन और भीमसेनको साथ लेकर वे मगध गये और जरासंधको द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारा। जरासंधने भीमसेनसे द्वन्द्वयुद्ध करना स्वीकार कर लिया। श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतके अनुसार भीमसेनने जरासंधको पटककर उसके पैर पकड़कर चीर डाला। जरासंधके मर जानेपर उसके पुत्र सहदेवको भगवान्‌ने मगधका राज्य दे दिया और जरासंधके कारागारमें पड़े राजाओंको मुक्त करके बड़े सम्मानसे उनके नगरोंतक जानेका प्रबन्ध कर दिया।

शिशुपाल-वध—

चेदिराज शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रकी बुआका पुत्र था। वह बचपनसे श्रीकृष्णसे द्वेष करता था। राजसूय-यज्ञमें धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्मपितामह तथा अन्य ऋषिगण एवं सम्मान्य लोगोंकी सम्मतिसे श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रथम पूजा की। शिशुपाल श्रीकृष्णके इस सम्मानको सहन नहीं कर सका और खड़े होकर उन्हें गालियाँ देने लगा। यद्यपि दूसरे लोग इससे बहुत अप्रसन्न हुए और भीमसेन तो शिशुपालको मारनेपर ही उतारू हो गये; परंतु श्रीकृष्ण शान्त बैठे रहे, क्योंकि उन्होंने अपनी बुआको वचन दिया था कि वे शिशुपालके सौ अपराध क्षमा कर देंगे। जब शिशुपाल सौसे अधिक गालियाँ दे चुका, तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे उसका मस्तक काट दिया। शिशुपालके शरीरसे एक ज्योति निकली और सबके देखते-देखते श्रीकृष्णके चरणोंमें लीन हो गयी।

द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा—

दुर्योधनके कपट-जुएमें युधिष्ठिर अपना सारा राज्य, धन, अपने-आपको, भाइयोंको और अन्तमें द्रौपदीको भी दाँवपर लगाकर हार गये। दुर्योधनकी आज्ञासे उसका छोटा भाई दुःशासन द्रौपदीके केश पकड़कर घसीटता हुआ उन्हें सभामें ले आया। दुर्योधनने द्रौपदीको नंगी कर देनेकी आज्ञा दी। भीष्म, द्रोण आदि सब सिर झुकाये बैठे रहे। द्रौपदीने चारों ओर देखा; किंतु जब कोई सहायक उसे दिखायी नहीं पड़ा, तब व्याकुल होकर उसने

भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा । भगवान्ने द्रौपदीकी पुकार सुन ली । दुःशासन-की भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था; किंतु द्रौपदीकी साड़ी तो भगवान्के प्रभावसे अनन्त हो गयी थी । साड़ी खींचते-खींचते दुःशासन थक गया, वस्त्रोंका अंबार लग गया; किंतु द्रौपदीके शरीरसे थोड़ा भी वस्त्र हटा नहीं ।

दुर्वासासे पाण्डवोंकी रक्षा—

एक बार दुर्वासाजी दुर्योधनके यहाँ पधारे । दुर्योधनने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया । जाते समय प्रसन्न होकर दुर्वासाजीने उससे वरदान माँगनेको कहा । दुर्योधनने प्रार्थना की—'आप अपने सब शिष्योंके साथ वनमें उस समय पाण्डवोंके अतिथि हों, जब द्रौपदी भोजन कर चुकी हो ।' बात यह थी कि सूर्यनारायणने युधिष्ठिरको एक ऐसा बर्तन दिया था, जिसमें बनाया भोजन तबतक अक्षय रहता था, जबतक द्रौपदी भोजन न कर ले । दुर्योधनने यह सोचा था कि द्रौपदीके भोजन कर लेनेपर दुर्वासाजी वहाँ जायँगे तो पाण्डव इन्हें भोजन करा नहीं सकेंगे, इससे ये महाक्रोधी ऋषि शाप देकर उनको नष्ट कर देंगे । दुर्योधनकी बात स्वीकार करके दुर्वासाजी एक दिन वनमें पाण्डवोंके पास दस हजार शिष्योंके साथ पहुँचे और भोजन-की व्यवस्था करनेको कहकर सरोवरपर दोपहरका स्नान एवं संध्या करने चले गये । द्रौपदीजी भोजन कर चुकी थीं, वे बड़ी चिन्तामें पड़ीं । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया । स्मरण करते ही श्यामसुन्दर वहीं प्रकट हो गये और बोले—'मुझे कुछ खानेको दो । बड़ी भूख लगी है ।' द्रौपदीने जब कहा कि भोजन तो नहीं है, तब श्रीकृष्णने वह सूर्यका दिया बर्तन माँगा और बर्तन लेकर उसमें कहीं चिपका शाकका एक पत्ता ढूँढ़ लिया । 'यह पत्ता मुझ विश्वरूपको तृप्त कर दे' यह कहकर श्रीकृष्णचन्द्रने पत्तेको खाकर डकार ले ली । उसी क्षण सरोवरमें स्नान करते दुर्वासा मुनि और उनके शिष्योंका पेट अपने-आप भर गया और बार-बार उन्हें डकारें आने लगीं । दुर्वासाजीने शिष्योंसे कहा—'मैं एक बार अम्बरीषसे उलझकर भोग चुका हूँ । पाण्डव भी भगवान्के भक्त हैं । उनका भोजन नष्ट होगा तो वे क्रोधमें आकर पता नहीं क्या करेंगे । अब यहाँसे चुपचाप भाग चलना ही ठीक है ।' दुर्वासाजी शिष्योंके साथ वहाँसे भाग ही गये ।

नृग-उद्धार--

राजा नृग महान् दानी थे। वे प्रतिदिन हजारों गायें दान करते थे। किसी ब्राह्मणकी गाय एक दिन भागकर उनकी गायोंके झुंडमें मिल गयी। अनजानमें ही दूसरी गायोंके साथ राजाने उसे भी एक ब्राह्मणको दान कर दिया। जब वह गाय लेकर घर जा रहा था, तब गायका स्वामी उसे मार्गमें मिला। दोनों गायपर अपना अधिकार मानते थे, वे राजाके पास आये। राजाने दोनोंसे प्रार्थना की कि उस गायके बदले और अनेक गायें वे ले लें, किंतु दोमेंसे किसी ब्राह्मणने गौ-विक्रय स्वीकार नहीं किया वे गायको राजाके पास छोड़कर चले गये। उसी समय राजाकी मृत्यु हो गयी। भूलसे ब्राह्मणकी गाय ले लेनेके पापसे उन्हें गिरगिट होना पड़ा। द्वारकाके पास एक जलहीन कुएँमें वे विशाल गिरगिट बने पड़े थे। द्वारकाके बालक खेलते हुए उस कुएँके पास पहुँचे। दयावश उन्होंने गिरगिटको कुएँमें पड़ा देख निकालनेका प्रयत्न किया और जब स्वयं सफल नहीं हुए, तब श्रीकृष्णचन्द्रके पास दौड़ गये। भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ आकर सहज ही कुएँसे गिरगिटको निकाल दिया। भगवान्का स्पर्श होते ही नृगकी गिरगिट देह छूट गयी। देवस्वरूप पाकर वे स्वर्ग चले गये।

सुदामा—

जब श्रीकृष्णचन्द्र उज्जैनमें सांदीपनि मुनिके यहाँ अध्ययन करने गये, तब सुदामा नामके ब्राह्मण-कुमार भी वहीं विद्याध्ययन करते थे। श्रीकृष्णसे उनकी मित्रता हो गयी थी। पीछे गुरुकुलसे लौटकर सुदामा गृहस्थ बने। वे बहुत ही कंगाल, किंतु संतोषी थे। निरन्तर उपवाससे दुखी होकर उनकी पत्नी बार-बार आग्रह करती थी कि एक बार अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास सुदामा द्वारका जायँ। पत्नीके आग्रहके कारण अपने मित्रको देनेके लिये चार मुट्ठी चिउड़े एक पुराने कपड़ेमें बाँधकर सुदामा द्वारका चल पड़े। द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्रको जैसे ही पता लगा कि सुदामा आये हैं, भगवान् उनसे मिलने दौड़ पड़े। सुदामाको श्रीकृष्णने गले लगाया, अपने भवनमें ले आकर उनके चरण धोये, उनका स्वागत-सत्कार किया। श्रीकृष्णने अन्तमें पूछा—'आप मेरे लिये क्या उपहार लाये

हैं ?' संकोचके मारे सुदामा चिउड़ोंकी बात कह नहीं सके। उन्हें गठरी छिपाते देख श्यामसुन्दरने 'यह क्या है ?' कहकर उसे खींच लिया। पुराना कपड़ा फट गया। चिउड़े बिखर गये। बड़े प्रेमसे उन्हें समेटकर त्रिलोकीनाथने एक मुट्ठी खा ली; जब दूसरी मुट्ठी भरी, तब श्रीरुक्मिणीजीने प्रभुका हाथ पकड़ लिया। द्वारकासे सुदामाजी जब विदा हुए, तब प्रत्यक्ष उन्हें कुछ नहीं मिला था! लेकिन वे श्रीकृष्णके प्रेममें विभोर थे। अपने नगरमें पहुँचनेपर पता लगा कि श्यामसुन्दरने विश्वकर्माको आज्ञा देकर उनकी नगरीको द्वारकाके समान ही ऐश्वर्यमयी बनवा दिया है। सुदामाके घरमें इतना वैभव श्रीकृष्णने दे दिया था कि वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ था।

विदुरके घर शाक और केलेके छिलके खाना--

'पाण्डवोंके संधिदूत बनकर स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर आ रहे हैं' यह समाचार पाकर धृतराष्ट्रने उनके स्वागत-सत्कारकी खूब तैयारी की थी, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रने दुर्योधनके यहाँ ठहरना स्वीकार नहीं किया! वे तो विदुरजीके यहाँ ठहरे और उन्हींके घरका शाक (रूखा-सूखा भोजन) ही उन्होंने स्वीकार किया। कौरव-सभामें दुर्योधनको समझानेका प्रयत्न करके अन्तमें जब वे सभासे निकले, तब भी दुर्योधनने उनसे अपने यहाँ भोजन करनेकी प्रार्थना की। उसने श्रीकृष्णचन्द्रको भोजन करानेके लिये बहुत बड़ी तैयारी की थी; किंतु श्रीकृष्णने उसके यहाँ भोजन करना स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। वे विदुरजीके घर पहुँचे। विदुरजी पीछे ही रह गये थे और विदुर-पत्नी स्नान कर रही थीं। श्यामसुन्दरने उन्हें जैसे ही पुकारा, प्रेम-विभोर होकर वे दौड़ पड़ीं। घरमें पहुँचकर श्रीकृष्णने कहा--'चाची! मुझे भूख लगी है।' विदुर-पत्नी कुछ केले ले आयीं और श्यामसुन्दरके सामने बैठकर छील-छीलकर उन्हें खिलाने लगीं। किंतु प्रेमकी अधिकताके कारण उन्हें अपने शरीर और कार्यका ज्ञान ही नहीं था। केलेका गूदा वे फेंकती जा रही थीं और छिलके श्रीकृष्णचन्द्रको देती जाती थीं। बड़े स्वादसे श्रीकृष्ण वे छिलके खा रहे थे। इतनेमें विदुरजी आ गये। पत्नीको उन्होंने डाँटा और स्वयं छीलकर केलेका गूदा श्रीकृष्णचन्द्र-

को दिया । किंतु श्रीकृष्णचन्द्रने गूदेको थोड़ा खाकर कह दिया—'चाचाजी ! छिलकों-जितना स्वाद इसमें नहीं है ।'

भीष्मके प्रणकी रक्षा—

महाभारतके युद्धमें दुर्योधनके द्वारा उत्तेजित किये जानेपर भीष्म-पितामहने एक दिन प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं कल श्रीकृष्णचन्द्रको शस्त्र उठानेपर विवश कर दूँगा ।' भगवान् श्रीकृष्णने महाभारतके युद्धमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा प्रारम्भमें ही की थी । किंतु अपने भक्त भीष्मपिता-महकी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी । दूसरे दिन युद्धमें जब भीष्मके बाणोंकी चोटसे अर्जुन मूर्च्छित हो गये, तब श्रीकृष्ण-चन्द्र रथसे कूद पड़े और चक्र उठाकर भीष्मकी ओर दौड़ पड़े । इतनेमें अर्जुनकी मूर्छा दूर हो गयी । दौड़कर उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रको पकड़ लिया । श्यामसुन्दरको तो केवल भीष्मकी प्रतिज्ञा सत्य करनी थी । अतः अर्जुनके कहनेसे वे लौट आये ।

गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा—

अश्वत्थामाने पाण्डवोंके कुलका ही नाश कर देनेका संकल्प करके ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मास्त्रसे पाण्डवोंकी रक्षा कर दी; किंतु वह अमोघ अस्त्र अभिमन्युकी पत्नी उत्तराके गर्भको नष्ट करने चला । उत्तरा व्याकुल होकर श्रीकृष्णकी शरणमें आयी । अत्यन्त सूक्ष्मरूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्र उत्तराके गर्भमें प्रविष्ट हो गये । चतुर्भुज रूपसे वे दस महीनेतक उत्तराके गर्भमें स्थित बालककी ब्रह्मास्त्रके तेजसे रक्षा करते रहे । उत्तराके गर्भसे उत्पन्न वही बालक परीक्षित् नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

ब्राह्मणके मरे पुत्र लाना—

द्वारकामें एक ब्राह्मणके घर जैसे ही पुत्र उत्पन्न होता था, मर जाता था । ब्राह्मण उस मृतक पुत्रकी देह राजद्वारपर रख जाता और बहुत कड़ी बातें महाराज उग्रसेनको कहता था । एक बार यह घटना तब हुई, जब अर्जुन द्वारकामें थे । अर्जुनने ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा की कि उसके अगले पुत्रकी या तो वे रक्षा करेंगे या अग्निमें जल

जायँगे । अगली बार जब ब्राह्मणकी पत्नीको संतान होनेका समय आया, तब सूचना पाकर अर्जुन वहाँ गये और उन्होंने बाणोंसे प्रसूतिकागारको इस प्रकार ढँक दिया कि उसमें वायु भी न जा सके। किंतु ब्राह्मणकी पत्नीको जो पुत्र हुआ उसका शरीर भी इस बार अदृश्य हो गया । योगविद्याका आश्रय लेकर अर्जुन यमलोक, इन्द्रलोक आदि सभी देवलोकोंमें घूम आये; परंतु उन्हें कहीं भी ब्राह्मणके पुत्र नहीं मिले । द्वारका लौटकर वे अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यत हुए; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें आश्वासन दिया और साथ लेकर क्षीरसागरमें भूमापुरुष भगवान् नारायणके पास गये । वहाँसे ब्राह्मणके सभी पुत्रोंको ले आकर उन्होंने ब्राह्मणको दे दिया !

व्याधका उद्धार—

परमधाम गमनके समय भगवान् श्रीकृष्ण प्रभासक्षेत्रमें एकान्तमें एक पीपलके वृक्षके नीचे एक चरण ऊपर किये बैठे थे। उनके चरणके लाल-लाल तलवेको देखकर एक व्याधने समझा कि कोई मृग है। उसने भगवान्‌के चरणमें बाण मार दिया, किंतु पास आनेपर श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर भयके मारे उनके चरणोंमें गिर पड़ा । भगवान्‌ने उसका अपराध तो क्षमा कर ही दिया, उसे सशरीर विमानमें बैठाकर स्वर्ग भेज दिया ।

श्वपच—

मूक चाण्डाल नामक एक श्वपच माता-पिताका अत्यन्त भक्त था । वह माता-पिताको ही भगवान् मानकर बड़ी भक्तिसे उनका पूजन करता था । उसकी माता-पिताकी भक्तिके प्रभावसे उसका मकान बिना आधारके आकाशमें स्थिर रहता था और भगवान् एक ब्राह्मणका रूप धारण करके उसके घरमें सदा निवास करते थे । भगवान् उस मूक चाण्डालको उसके परिवारके साथ अपने धाम ले गये ।

अजामिल—

अजामिल ब्राह्मण था और पहले सदाचारी, भगवद्भक्त तथा माता-पिताका सेवक था । किंतु एक दिन वनसे फल-कुश आदि लेकर लौटते समय उसने एक शूद्रको एक व्यभिचारिणी स्त्रीके साथ निर्लज्ज

हास-परिहास करते देखा। क्षणभरके इस कुसङ्गसे उसकी वासनाएँ जाग उठीं। उसी स्त्रीको उसने रख लिया और नाना प्रकारके अनुचित कर्मोंसे उसको ही संतुष्ट करता रहा। उस स्त्रीसे अजामिलके कई पुत्र हुए। छोटे पुत्रका नाम उसने नारायण रखा था। मृत्युके समय जब अजामिलको लेने यमदूत आये और बलपूर्वक उसके प्राण देहसे निकालने लगे, तब व्याकुल होकर उसने अपने पुत्र नारायणको पुकारा। पुत्रके वहाँ आते समय उसके मुखसे 'नारायण' नाम निकला, इसलिये भगवान्‌के पार्षद वहाँ तुरंत आ गये और उन्होंने अजामिलको यमदूतोंसे छुड़ा दिया। भगवान्‌की कृपासे अजामिलको कुछ और आयु मिल गयी। वह घर छोड़कर हरद्वार चला गया और वहाँ भजन करने लगा। अन्तमें मरनेपर वह भगवान्‌के धाम गया।

गणिकाका उद्धार—

एक वेश्याने तोता पाल रखा था। वह तोतेको 'सीताराम' पढ़नेको कहा करती थी। एक दिन वह तोतेको 'सीताराम, सीताराम' पढ़ा रही थी कि उसकी मृत्यु हो गयी। भगवन्नाम लेते हुए मरनेके कारण भगवान्‌के पार्षद उसे वैकुण्ठ ले गये।

नामदेवका छप्पर छाना—

भक्तश्रेष्ठ नामदेवजी एक फूसकी झोपड़ीमें रहते थे। वर्षा ऋतुके प्रारम्भमें झोपड़ीमें आग लग गयी और आधी झोपड़ी जलने लगी। नामदेवजी तो सर्वत्र भगवान्‌को देखते थे, वे कहने लगे—'प्रभो! आप यह लाल-लाल लपटोंका रूप धारण करके भले पधारे। किंतु आधी झोपड़ीने क्या अपराध किया है कि उसे आप छोड़ रहे हैं? उसे भी स्वीकार कीजिये।' झोपड़ी जल गयी, किंतु नामदेवजीको कोई चिन्ता नहीं थी। भगवान् ही मजदूरका रूप धारण करके आये और उन्होंने नामदेवजीका छप्पर पुनः छा दिया।